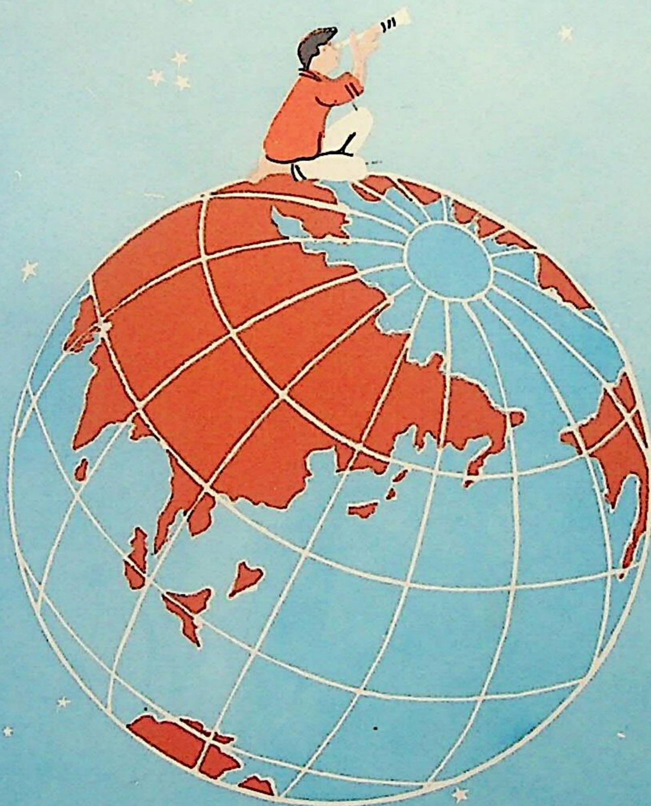
ज्योतिर्गणितकौमुदी



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन

ज्योतिर्गणितकौमुदी



अर्थात्-

शुद्ध ग्रह-गणितका अपूर्व ग्रन्थ ।

ज्यौतिषाचार्य विद्यानिधि

श्रीरजनीकान्तशास्त्री, बी. ए. बी. एल्.

साहित्य-सरस्वती, ज्योतिर्भूषण कृत ।

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,

बम्बई-४

संस्करण : दिसंबर २०१८, संवत् २०७५

मूल्य : २२० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

भूमिका ।



प्राच्य किम्वा पाश्चात्य, भूमण्डलके सभी विद्वानोंने हिन्दुओंके इस दावेको एक स्वरसे स्वीकार कर लिया है कि उनके आदि धर्म-ग्रन्थ वेद संसारके प्राचीनतम ग्रन्थ हैं और चूँकि उनका ज्योतिःशास्त्र उनके वेद-विहित धार्मिक कृत्योंके साथ एक अभेद्य सम्बन्ध रखता है, उनका ज्यौतिषिक ज्ञान भी, किसी अन्य जातिके ज्यौतिषिक ज्ञान की तुलनामें, उनके वेदोंकी ही तरह प्राचीनतम है । इससे यह फल निकला कि इस शास्त्रका ज्ञान पहले पहल हिन्दुओंको ही हुआ और अन्य जातियोंने इसे हिन्दुओंसेही सीखा;-वे इस ज्ञानके लिये किसी विदेशीय जातिके ऋणी न थे और वे दूसरोंके ऋणी हो भी कैसे सकते थे ? क्योंकि जिस सुदूर अतीत कालमें जब संसारकी अन्य जातियां अज्ञान-तिमिरके एक निबिड़ पटलसे आच्छन्न होरही थीं हिन्दुओंके वैदिक ऋषियोंको उसी समय अपने धार्मिक कृत्योंके यथाविधि सम्पादनार्थ शुभ मुहूर्त्तोंकी खोज करनेकी आवश्यकता पड़ी जो उनके विश्वासानुसार अभीष्ट-फल-प्रद और सूर्य-चन्द्रादि गगनचारी पिण्डोंकी गत्यादि पर अवलम्बित थे । इसके अतिरिक्त जिन विदेशियोंको वैदिक ऋषिगण म्लेच्छ, दस्यु, दानव, असुर आदि घृणाव्यञ्जक नामोंसे पुकारा करते थे तथा जिन्हें वे अपने धर्मके कट्टर शत्रु मानते थे उन्हींके वे अपने धर्म-कृत्योंके सम्पादनार्थ चेले बनें यह कब माननेकी बात है ? इस विद्याको विदेशियोंने हिन्दुओंसेही सीखा, इसका प्रबल प्रमाण हमें सूर्य-सिद्धान्तसे मिलता है । मय नामक असुरने, जिसका असुर शब्दसे असीरियादेशवासी (Assyrian) होना सिद्ध होता है, अपनी घोर तपस्यासे सूर्य देवको प्रसन्न किया । तब उन्होंने अपने अंशसे एक पुरुषको उत्पन्न किया और उस अंश-पुरुषको मयको ज्योतिर्विद्या सिखा देनेका आदेश देकर स्वयं अन्तर्हित होगये । इस आख्यायिका परसे पौराणिक पर्दा हटा लेनेसे हमें साफ मालूम होजाता है कि, ये सूर्य कोई वैदिक ऋषि थे और उनका अंश-पुरुष कोई उनका शिष्य था जिसने मयको अपने गुरुकी आज्ञासे ज्योतिर्विद्या पढ़ाई ।

हिन्दू ज्योतिषकी प्राचीन-तमता और अतः उसकी स्वतंत्रोत्पत्ति इस प्रकार दिखाकर अब उसके महत्त्व पर विचार किया जाता है । वेदोंके ६ अङ्गों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष) में ज्योतिषको ही सर्वश्रेष्ठ और इसीसे इसे वेदोंका नेत्र कहा गया है । वैदिक साहित्यके अनुशीलनसे पता चलता है कि सर्व-प्रथम आचार्य लगधने, जो एक वैदिक

ऋषि थे, वेदाङ्ग-ज्यौतिषकी रचना की और इसी नींव पर धीरे-धीरे अन्य आचार्योंने ज्योतिःशास्त्रकी जगमगाती हुई कतिपय बड़ी बड़ी अटालिकाओंका निर्माण कर डाला जिन्हें देख आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंकी अक्ल चकरा जाती है। आज जो हिन्दू ज्योतिष नाना फल-फूल-समन्वित एक प्रकाण्ड वृक्षके रूपमें देख पड़ता है वह लगधके उर्वर मस्तिष्कमें उपजे हुए वेदाङ्ग-ज्यौतिषरूपी उक्त अङ्कुरके ऋषियों द्वारा अपने विमल-विवेक-जलसे सहस्रों वर्षतक अनवरत सींचे जानेका फल है । सुदूर प्राचीन कालसे लेकर अर्वाचीन कालतक जिन महाविद्वानोंने इस परम रहस्यमय शास्त्रपर अपनी शुभ लेखनी उठाई है उन्हें हम दो श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं—१ली श्रेणी तो उनकी है जिन्हें हम ऋषि-पदसे विभूषित करते हैं और जिनका समय-निरूपण टेढ़ी खीर है और २ री श्रेणीमें उन्हें रखते हैं जो ऋषि-पदके अधिकारी न होते हुए भी स्वग्रन्थ-निर्माणमें ऋषियोंसे कम प्रतिभावान् नहीं देखपड़ते और जिन्होंने भारतके ऐतिहासिक रङ्गमञ्चपर अपना अभिनय दिखा उसकी मुखश्रीको समुज्ज्वल कर दिया है। उदाहरणार्थ सूर्य, ब्रह्मा, वसिष्ठ आदि १८ ऋषि गण प्रथम श्रेणी तथा आर्यभट, वराह मिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि विद्वद्गण द्वितीय श्रेणीके सदस्य हैं जिनकी संख्या निश्चित नहीं है।

अब इस महाशास्त्रके प्रचारपरभी प्रसङ्गवश विचार करना अनुचित न होगा। हिन्दुओंके अन्य सभी ग्रन्थोंकी तरह उनके ज्योतिषग्रन्थ भी संस्कृतमें ही लिखे गए जिसका फल यह हुआ कि जनतामें सामूहिक रूपसे संस्कृत-शिक्षाका प्रचार न होनेके कारण उनका पठन-पाठन एक जनसमुदाय विशेषमें सीमित रह गया और सर्व साधारण उनसे वञ्चित रहगए। पर समयने पलटा खाया। वर्त्तमान कालमें मुद्रण-यन्त्रों और विद्यालयोंके सर्वत्र खुलजानेके कारण विद्योपार्ज्जनकी सुविधाएँ प्राचीन कालकी अपेक्षा अधिक सुलभ होगईं जिसका फल यह हुआ कि चिर-कालकी लालायित जनता विद्या प्राप्तिकी ओर झुकी और उनकी ज्ञान-पिपासाकी शान्त्यर्थ भारतकी प्राचीन विद्याओंके भांडार-भूत प्रायः सभी संस्कृत ग्रंथ हिन्दी आदि बोल-चालकी भाषाओं (Vernaculars) में अनूदित और प्रकाशित होने लगे । इस समय ज्योतिःशास्त्रके प्रायः सभी संस्कृत ग्रन्थ हिन्दीमें अनूदित होकर छपगए हैं; पर उनके द्वारा ज्योतिःशास्त्र जैसे गहन शास्त्रके उन जिज्ञासुओंकी ज्ञान-पिपासा, जो विचारे

संस्कृत भाषाके अनभिज्ञ हैं, यथेष्ट रूपसे परितृप्त नहीं होती । इसके कई कारण हैं । अनुवाद करते समय किसी अनुवादक महाशयने हिन्दीकी गला घोंटी तो किसीने श्लोकोंका अर्थ स्वयं न समझकर उनका अनर्थ ही कर अपनेको धन्य माना; अथवा समझा भी तो हिन्दीपर प्रभुता नहीं रहनेके कारण वे अपने भावोंको पूर्ण-रूपसे प्रगट न कर सके । किसीने भावोंको ठीक तरहसे प्रकट किया भी तो ज्यौतिपिक नियमोंको उनकी उपपत्ति, चित्रों तथा उदाहरणोंके द्वारा भलीभाँति समझाया नहीं, जिसका फल यह होताहै कि जिज्ञासु जन अपने ज्यौतिपिक अध्ययनसें सुगमता-पूर्वक अग्रसर न होकर अपने विकट मार्गमें पद—पद पर रोड़े-स्वरूप पडे हुए इस शास्त्रके दुरूह नियमोंकी ठोकरें खाकर हताश होजाते हैं । इन्हीं सब कारणोंसे भारतकी राष्ट्र-भाषा (Lingua Franca) हिन्दीमें एक ऐसे ज्यौतिष-ग्रन्थकी रचनाकी आवश्यकता दीख पड़ी जो पूर्वोक्त दूषणोंसे रहित होकर कठिनसे भी कठिन विषयोंकी भी व्याख्या सरल तथा मुहावरेदार हिन्दीमें कर उन्हें थोड़े लिखे पढ़े ज्यौतिषके प्रेमियोंको भी हृदयङ्गम करा सके और इसी उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिए इस ग्रन्थकी रचना हुई ।

यह ग्रन्थ ज्यौतिष ग्रन्थोंके किस वर्गका है, इसे भी जान लेना चाहिए । वस्तुतः यह एक करण-ग्रन्थ है और करण कुतूहल, ग्रह-लाघव आदि प्राचीन करण-ग्रन्थोंकी अपेक्षा कई बातोंमें विशेषता रखता है जिसका दिग्दर्शन पाठकोंको करा देना परमावश्यक है । उक्त प्राचीन करण-ग्रन्थोंको बने हुए आज कई शताब्दियां बीतगईं; अतः उनके ग्रह-क्षेपकों परसे लाए हुए वर्त्तमान कालीन ग्रहोंको राशि-चक्रमें अपने-अपने गणितागत स्थानोंपर देखनेकी आशा करना व्यर्थ है । कितने पुराने लकीरके फकीर महाशयोंका मत है कि प्राचीन ग्रह-क्षेपकों परसे ही लाए हुए ग्रहोंके योग, युति, उदयास्तादि आकाशमें दृश्य न होनेपर भी धर्म-कर्मानुष्ठानके लिए उपयुक्त हैं; पर उनका यह मत केवल भ्रम-मात्र है; क्योंकि यदि ऐसा होने लगे तो गुरु और शुक्रके आकाशमें दृश्य न होनेपर भी वे विवाहादि शुभकार्य, जिनका उक्त ग्रहोंके अस्त-कालमें करना निषिद्ध है, केवल प्राचीन परिपाटीके पंचाङ्गोंमें लिखे हुए अशुद्ध उदय-कालके बलपर होते रहने चाहिए । पर यह मत कितना अमाननीय है, यह तो विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं । अतः ग्रहोंकी गणितागत और दृश्य स्थितियोंमें सदैव एकता होनी चाहिए और यह एकता प्राचीन क्षेपकोंके द्वारा नहीं साधी जा सकती । इसका कारण स्पष्ट है । ग्रहोंकी दैनिक

गतिका मध्यम मान कोई इयत्तया ठीकठीक निश्चित राशि नहीं है जिसे किसी विशालसे भी विशाल अहर्गणसे गुणने और गुणन-फलको उनके क्षेपकोंमें जोड़ वा घटा देनेसे ही योगफल उनकी वर्त्तमान स्थितिके ठीक-ठीक तुल्य होजाए। उदाहरणार्थ सूर्य-गतिकोही लीजिए । इसका मध्यम मान कलादि ५९ । ८ । १० । १० है । चार अवयवों तक निकालने पर भी इसका कुछ भाग अवश्य ही छूट जाता है जो अत्यल्प होता हुआ भी कालान्तरमें उक्त ग्रहकी गणितागत मध्यम स्थिति और राशि-चक्रमें उसकी वास्तविक मध्यम स्थितिमें घोर अन्तर उत्पन्न कर देता है । इसके अतिरिक्त ग्रहोंके अन्योन्याकर्षणके कारण भी कालान्तरमें उनकी गणितागत और वास्तविक स्थितियोंमें विशाल अन्तर हो जाया करता है । यही कारण था कि पूर्वाचार्यगण समय समयपर वेधादि द्वारा ग्रह-गतिमें बीज नियतकर और ग्रहोंको उक्त बीजोंसे संस्कृत कर उन्हें दृक् तुल्य बना लिया करते थे । पर इधर कई शताब्दियोंसे भारतमें किसीने वेधका नाम तक न लिया और पुराने ढर्रे पर ही तिथिपत्र बनते रह गए जिसका फल यह हुआ कि, काशी जैसे प्राचीन विद्या-पीठके बने पञ्चाङ्गभी ग्रहोंके उदयास्तादि तथा ग्रहणोंके स्पर्शादि कालको ठीक-ठीक बतलानेमें असमर्थ होगए । ग्रह-गणितकी ऐसी दुर्गति देख और उसके पुनरुद्धारकी शुभ कामनासे प्रेरित होकर मैंने केपलर, न्यूटन, ली-वेरियर, हरशेल आदि जगद्विख्यात यूरोपीय ज्योतिर्विदोंके द्वारा आविष्कृत जिन नए-नए बीजोंका आश्रय लेकर निखिल ज्योतिःशास्त्रके धुरन्धर विद्वान् स्व. श्रीपं. बापूदेवशास्त्री तथा स्वर्गीय श्रीपण्डित सुधाकर द्विवेदी ग्रह-गणितको शोधा करतेथे उन्हीं बीजोंका संस्कार सूर्य-सिद्धान्तीय मध्यम ग्रहों एवं उनके उच्चों और पातोंमें देकर उन्हें काशीमें १ ली जनवरी, ईसवीं सन् १९०० (तदनुसार विक्रमीय सम्वत् १९५६ शकाब्द १८२१ पौषकृष्ण-पक्ष अमावस्या), सोमवार, मध्यम काल (Mean Time) से ६ बजे प्रातःकालके लिए लाकर इस ग्रन्थमें लिख दिए हैं और सरलताके लिए उक्त तारीखसेही किसी इष्ट तारीख तक ग्रेगरीय जंत्रीके वर्ष, मास और तारीखोंके द्वारा अहर्गण लानेके लिए युक्ति भी बतलादी है ।

इस करण-ग्रन्थमें किन-किन विषयोंका समावेश हुआ है उन्हें भी पाठकोंको संक्षेपतः बतला देना जरूरी है । यों तो इसमें उन सभी विषयोंका, जैसे अहर्गणानयन, मध्यम ग्रह, मन्द स्पष्ट ग्रह, शीघ्र स्पष्ट ग्रह, तिथ्यादि पञ्चाङ्ग, पलभा, चर-खण्ड, अक्षांश, पल (अक्ष) कर्ण, ग्रहोंका मार्गित्व, वक्रत्व,

अस्त, उदय, युत्यादि, दिन-मान, रात्रि-मान, सूर्य-चन्द्रोदयास्त-काल, लग्न, इष्टकाल, सूर्य-चन्द्र-ग्रहण, ग्रहण-परिलेख, चन्द्र-दर्शन, शुक्ल-मान, चन्द्र-शृंगोन्नति, शृंगोन्नति-परिलेख, चन्द्रादिग्रह-शर, क्रान्ति, विषुवांश आदिका समावेश किया गया है जो प्रायः अन्य करण-ग्रन्थोंमें पाए जाते हैं और इन सभी विषयोंको उनकी परिभाषा, उपपत्ति, चित्र, उदाहरण आदिके द्वारा भलीभाँति समझाया भी गया है। इसके अतिरिक्त जो गणित शास्त्रके साधारण ज्ञाता हैं उनके लिये तो केवल जोड़, घटाव, गुणा, भाग आदिके द्वारा ज्यौतिषिक-फल निकाल लेनेके लिये विविध सरल विधियाँ बत लाई गई हैं; पर जो समतल और गोलीय त्रिकोणमिति (Plane & Spherical Trigonometry), भूमिति(Geometry) तथा क्षेत्र-मिति (Mensuration) आदि उच्च गणितमें प्रवीण हैं उनके लिये ज्या (Sine) कोटिज्या (Cosine) स्पर्श-रेखा (Tangent), कोटिच्छेदन रेखा (Cosecant), छेदन रेखा (Secant), कोटिस्पर्श रेखा (Cotangent) उत्क्रमज्या (Versed Sine) आदि त्रैकोणमितिक निष्पत्तियों (Ratios) के प्रयोग-द्वारा उक्त फलोंकी साधनविधिपर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। पर इन सभी विशेषताओंसे बढ़कर एक यह भी विशेषता है कि इस ग्रन्थमें रोमीय-जंत्री, जूलीय-जंत्री, ग्रेगरीय-जंत्री, विक्रमीय संवत्, शकाब्द, हिजरी सन्, यहूदीसन्, पारसीसन्, आदि सनों और अब्दोंकी उत्पत्तिपर गंभीर ऐतिहासिक गवेषणपूर्ण यथेष्ट प्रकाश डाला गया है और उनके अन्योन्य परिवर्त्तन, महीनों, तारीखों और वारोंको मालूम कर लेनेके लिये सरल युक्तियाँ भी बतलाई गई हैं जो अन्य करण ग्रन्थोंके लिये दुर्लभ हैं। इन सब पर तुर्रा यह कि प्रत्येक पारिभाषिक संज्ञाका अंगरेजी प्रतिशब्द तथा अनेक चक्र देकर सोनेमें सुगन्धवाली कहावतको चरितार्थकर दिखला दिया गया है। सारांश यह कि इस ग्रन्थको सर्वाङ्ग-परिपूर्ण बनानेमें कोई कसर नहीं रखी गयी है।

इस पुस्तकमें ग्रहस्पष्टीकरणार्थ तीन प्रकारकी क्रियाएं और प्रत्येक प्रकारकी क्रियाके अन्तर्गत दो-दो उपभेद बतलाए गये हैं—

(१) पुस्तकीय क्रिया; जिसमें ग्रहोंके मन्दोच्च (पृ० २३ तथा ५६) तो यूरोपीय वेधोपलब्ध है, पर उनके मन्द, शीघ्र तथा गति फल भारतीय हैं। इसके प्रथम उपभेदमें उक्त फलोंको इष्ट-ग्रह-संबन्धी चक्र(पृ० ३०) वा सारिणी (पृ० ६४) से, तथा इसके दूसरे उपभेदमें उक्त फलोंको त्रिकोण-मिति

(पृ० ७०) से निकालते हैं। जहाँ किसी क्रिया विशेषका उल्लेख न हो व उसका पता न चले, वहाँ इसी क्रियाका अनुमान करना चाहिये।

(२) शुद्ध भारतीय क्रिया; जिसमें ग्रहोंके केवल मन्दोच्चोंको सूर्यसिद्धान्तानुसार (पृ० ८२) निकाल, इसके भी प्रथम उपभेदमें मन्दादि फलोंको पूर्वोक्तवत् चक्र (पृ० ३०) वा सारणी (पृ० ६४) से और इसके दूसरे उपभेदमें त्रिकोण-मिति (पृ० ७०) से निकालते हैं। (१) और (२) में केवल मन्दोच्चोंका भेद है।

(३) शुद्ध यूरोपीय क्रिया, जिसमें ग्रहोंके यूरोपीय वेधोपलब्ध मन्दोच्चों (पृ० २३ तथा ५६) तथा त्रिकोण-मितिसे उनके मन्दादि फलोंको निकालते हैं। इसके प्रथम उपभेदमें उक्त फलोंको किञ्चित् स्थूल मन्दकर्ण (पृ० ८७) के तथा दूसरे उपभेदमें सूक्ष्म मन्द कर्ण (पृ० ९०) के द्वारा निकालते हैं। (१) और (३) में केवल फलोंका भेद है।

नोट—सूक्ष्मगणितार्थी किसी भी क्रियाके दूसरे उपभेदका ही आश्रय लेवें।

अन्तमें ज्योतिःशास्त्रके जिन भारतीय किम्वा अभारतीय दिग्-गज-विद्वानोंके ग्रन्थ-रत्नोंके अध्ययनके बलपर मेरे जैसे एक अल्प-बुद्धि व्यक्तिने भी ऐसे गहन तथा दुरूह विषयपर अपनी लेखनी उठा भारतकी राष्ट्र भाषामें लिखी हुई किसी भी मौलिक करण ग्रन्थके अद्यावधि अभाव-रूपी महात्रुटिको पूरी करनेका सत्प्रयास किया है उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता विना प्रकट किये इस भूमिकाको समाप्त नहीं करसकता।



बक्सर (शाहाबाद)
ता० १ एप्रिल ईसवी सन् १९३६
चैत्र शु. १० बुधवार संवत् १९९२

श्रीरजनी कान्त शास्त्री·

आधार-ग्रन्थ सूची (Bibliography)

(१) सूर्य-सिद्धान्त
(२) सिद्धान्त-शिरोमणि (भास्कराचार्य)
(३) आर्यभटीय ज्योतिःशास्त्र (आर्यभट)
(४) ग्रहलाघव (गणेश दैवज्ञ)
(५) करण कुतूहल (भास्कराचार्य)
(६) प्राचीन ज्यौतिषाचार्याशय वर्णन (पं. बापूदेवशास्त्री)
(७) मकरन्द सारणी सोदाहरण
(८) गोलप्रकाशस्य गोलीयरेखागणित-चापीयंत्रिकोणगणिते (पंडित-नीलाम्बरझा)
(९) भगोल चित्र (कालीनाथमुख्योपाध्याय)
(१०) द्युचर-चार (पं. सुधाकर द्विवेदी)
(११) भारतीय ज्यौतिष यंत्रालय (पं. गोकुलचन्द्र भावन)
(१२) करण-लाघव (पं. गङ्गाशंकर पंचौली)
(13) Nautical Almanac, 1916.
(14) Whitekar's Almanac, 1936.
(15) Elements of Astronomy (G. W. Parker)
(16) Atlas of Popular Astronomy (Thomas Heath)
(17) The Modern Cyclopedia (C. Annandale)
(18) Pear's Cyclopedia (Herbert C. Barret)
(19) The Nutall Encyclopædia (Christ & Haydon)
(20) Jack's Referedce Book (T. C. & E. C. Jack Ltd)
(21) History of the Saracens (Ameer Ali)
(22) Civilization in Ancient India (R. C. Dutt)

॥ श्रीः ॥

ज्योतिर्गणित कौमुदीकी-विषयानुक्रमणिका।



(७) परिलेखाधिकार ।

इति विषयानुक्रमणिका।



|| श्रीः ||

ज्योतिर्गणित-कौमुदी ।

प्रथम परिच्छेद ।

परिभाषाधिकार ।

इस ग्रन्थमें की हुई गणित-क्रियाओंको भली भांति समझनेके लिये गणकोंको निम्न-लिखित कुछ ज्यौतिष-संज्ञाओंकी परिभाषा जान-लेनी चाहिये—

(१) गोल (Sphere) उस ठोस आकार (Solid Figure) का नाम है, जो किसी वृत्तको उसके किसी एक व्यासपर नचानेसे बनता है।

(२) भूगोल । हमारी पृथ्वी एक विशाल गोल है, जो अपने दक्षिणोत्तर व्यासपर सर्वदा पश्चिमसे पूर्वकी ओर नाचती रहती है। यही व्यास पृथ्वीका अक्ष (Axis) वा धूरी है और इस अक्षके उत्तर और दक्षिण छोर भू-पृष्ठको जिन दो बिन्दुओंपर स्पर्श करते हैं वे क्रमशः पृथ्वीके उत्तर और दक्षिण ध्रुव (Poles) हैं।

(३) खगोल (Celestial Sphere) । किसी चौड़े मैदानमें जाकर आकाशकी ओर देखनेसे वह भी एक बड़े भारी गोलसा प्रतीत होता है, जो पृथ्वीके आक्षिक आवर्त्तनके कारण उसकी विपरीत दिशामें अर्थात् पूर्वसे पश्चिमकी ओर घूमता हुआ जान पड़ता है। यदि पृथ्वीके अक्षको उत्तर और दक्षिण दोनों तरफ सीधे बढ़ाते चले जायँ तो वह उक्त खगोलको जिन दो कल्पित बिन्दुओंपर स्पर्श करेगा वे क्रमशः उसके उत्तर और दक्षिण ध्रुव (Celestial-Poles) होंगे और पृथ्वीकी इस प्रकार बढ़ाई हुई धूरी खगोलकी धूरी (Celestial Axis) बन जायगी।

(४) पृथ्वीकी वार्षिक गतिके कारण सूर्य जिस प्रतीयमान (Apparent) वृत्ताकार पथसे नक्षत्र गणोंके बीच धीरे-धीरे पश्चिमसे पूर्वकी ओर हटता हुआ पृथ्वीकी वार्षिक परिक्रमा करतासा जान पड़ता है, उसे क्रान्ति वृत्त (Ecliptic) कहते हैं।

(५) नाडी-वृत्त वा नाडी-मण्डल (Celestial Equator)। यह उस कल्पित पूर्वापर वृत्तका नाम है जो खगोलको उत्तर और दक्षिण दो गोलार्द्धोंमें विभक्त करता हुआ उसके दोनों ध्रुवोंके बीचमें उसके चारों ओर खींचा जाता है। यही खगोलकी विषुवत् रेखा है।

(६) अंश, कला और विकला । यदि किसी वृत्तकी परिधिको ३६० तुल्य भागोंमें विभक्त करें, तो प्रत्येक भागको अंश (Degree) कहते हैं। अंशके साठवें भागका नाम कला (Minute) और कलाके साठवें भागका नाम विकला (Second) है।

(७) क्रान्ति-पात (Equinox)। क्रान्ति--वृत्त और नाडी-वृत्त दोनों एक धरातल (Plane) में न होकर एक दूसरेको अंशादि २३।२८ के कोणपर स्पर्श करते हैं, जिससे क्रांति-वृत्तका अर्द्ध भाग नाडी-वृत्तसे उत्तर और अर्द्धभाग उससे दक्षिण पड़ता है। ये स्पर्श बिन्दु दो हैं—(१) वासन्त-क्रांतिपात (Vernal Equinox) जिसके द्वारा सूर्य दक्षिण गोलार्द्धसे उत्तर गोलार्द्धमें तथा (२) शारद क्रांति-पात (Autumnal Equinox) जिसके द्वारा सूर्य उत्तर गोलार्द्धसे दक्षिण गोलार्द्धमें प्रवेश करता है। ये घटनायें प्रतिवर्ष क्रमशः २१ मार्च और २३ सितम्बरको हुआ करती हैं और इन दो तारीखों-को पृथ्वी भरमें दिन-रात बराबर होते हैं।

(८) दिन (Day)। इस शब्दके दो अर्थ हैं—(१) अहोरात्र और (२) सूर्योदयसे सूर्यास्त तकका समय । समय-मापनमें दिन शब्दसे पहलाही अर्थ ग्रहण करना चाहिये और वह भी मध्यम सावन मानसे।

(९) जितने समयमें पृथ्वी अपने अक्षपर नक्षत्रोंके सम्बन्धमें एकबार नाच जाती है, उतने समयको नाक्षत्र दिन (Sidereal

Day) कहते हैं । इसका मान २३ घण्टे ५६ मि. ४ से॰ है और यह मान सदा एकरूप (Constant) रहता है ।

(१०) सूर्योदयसे लेकर सूर्योदय तकके समयको, अर्थात् जितने समयमें पृथ्वी सूर्यके सम्बन्धमें अपने अक्षपर एकबार घूम जाती है, उतने समयको स्पष्ट सावन दिन (Apparent Solar Day) कहते हैं । सावन दिन नाक्षत्र दिनसे लग-भग ४ मिनिट अधिक होता है, कारण कि, जितनी देरमें पृथ्वीका एक आवर्त्तन पूरा होता है, उतनी देरमें सूर्य लग-भग १ अंश क्रांति-वृत्तमें पूर्वकी ओर आगे बढ जाता है, जिससे उसको पूर्व क्षितिजपर आनेमें प्रतिदिन ४ मि. की देर हो जाती है । इसके अतिरिक्त सावन दिनका मान भी सदा एकरूप न रहकर प्रतिदिन कुछ न कुछ न्यूनाधिक हुआ करता है। सावन दिनका मध्यम मान २४ घण्टे है जिसके अनुसार घडियाँ बनती हैं । इसका पूरा विवरण जाननेके लिये त्रिप्रश्नाधिकारमें काल-समीकरण (Equation of Time) का प्रकरण पढ़िये ।

(११) घटी, पल और विपल । ऊपर लिख आये हैं कि, मध्यम सावन दिन (Mean Solar Day) २४ घंटोंका होता है, जो भारतीय ज्योतिर्विदोंके ६० सावन घटियों (दण्डों) के तुल्य होता है। घटीके ६० वें भागको पल और पलके साठवें भागको विपल कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि घण्टादि कालको २½ से गुणनेपर घट्यादि काल और घट्यादि कालमें २½ का भाग देनेसे घण्टादि काल निकलता है ।

(१२) अहोरात्रका प्रारम्भ काल । हिन्दुओंका दिन सूर्योदयसे, मुसलमानोंका सूर्यास्तसे तथा क्रिस्तानोंका आधी रातसे प्रारंभ होता है ।

(१३) जितने समयमें सूर्य पृथ्वीकी एक परिक्रमा कर स्थिर नक्षत्रोंके सम्बन्धमें पुनः उसी स्थानपर लौट आता है-जहाँसे चलाथा, उतने समयको एक नाक्षत्र सौर वर्ष (Sidereal Solar Year)

कहते हैं । इसका मान दिनादि ३६५ । १५ । ३१ । ३० है । दिनादि शब्दसे, जहाँ अन्य कुछ न लिखा हो तो, सर्वत्र क्रमशः दिन, घटी, पल तथा विपल समझना चाहिये । हिन्दुओंका यही आदर्श (Standard) वर्ष है ।

(१४) पूर्वोक्त क्रान्ति-पात बिन्दु स्थिर नहीं हैं; वे दोनों ही धीरे-धीरे क्रान्ति-वृत्तपर पूर्वसे पश्चिमकी ओर हट रहे हैं । उनकी इस गतिको अयन-गति (Equinoctial Precession) कहते हैं।

(१५) जितने समयमें सूर्य किसी एक क्रान्ति-पातसे चलकर पुनः उसी क्रान्ति-पातपर लौट आता है, उतने समयको एक क्रान्ति-पातिक सौर वर्ष (Tropical Solar Year) कहते हैं । इसका मान दिनादि ३६५ । १४ । ३१ । ५४ है, यह नाक्षत्र सौर वर्षसे पलादि ५९ । ३६ कम होता है; कारण कि, प्रतिवर्ष क्रान्ति-पात बिन्दु अयन-गतिके कारण स्वस्थानसे हटकर सूर्यसे जा मिलता है, जिससे सूर्यको उक्त समय (पलादि ५९ । ३६) की बचत हो जाती है । क्रिस्तानोंके यहां यही वर्ष आदर्श (Standard) माना जाता है ।

(१६) चन्द्रको स्थिर नक्षत्रोंके सम्बन्धमें पृथ्वीकी एक परिक्रमा पूरी करनेमें जितना समय लगता है, उतने समयको चन्द्रमाका भगण-काल (Sidereal Period) कहते हैं । इसका मान दिनादि २७ । १९ । १७ । ५८ है । इतने समयमें चन्द्रमा सत्ताइसों नक्षत्रोंको भोग लेता है ।

(१७) चन्द्रको सूर्यके सम्बन्धमें पृथ्वीकी एक परिक्रमा पूरी करनेमें जितना समय लगता है, उतने समयको एक चान्द्रमास (Lunation or Synodic Period) कहते हैं । इसका मान दिनादि २९ । ३१ । ५० । ७ है । हिन्दुओंके यहां दो प्रकारका चान्द्रमास माना जाता है-(१) अमान्त, जिसके अनुसार अमावस्याकी तिथि ३० लिखी जाती है और (२) पूर्णिमान्त; जैसे-चैत्रका शुक्लपक्ष और वैशाखका कृष्णपक्ष दोनों मिलकर अमान्त वैशाखमास हुआ;

पर वैशाखके कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षोंको एक साथ लेनेसे पूर्णिमान्त वैशाखमास हुआ । अन्य मासोंको भी इसी प्रकार जानना चाहिये। मुसलमानोंके यहां अमावस्याके बाद जिस दिन पहले-पहले चन्द्र-दर्शन होता है, उस दिनके दूसरे दिनसे उनका महीना प्रारम्भ होता है और जबतक दूसरी अमावस्याके बाद प्रथम चन्द्रदर्शन नहीं होता तबतक वही महीना चलता है ।

(१८) चान्द्र-वर्ष (Lunar Year)। बारह चान्द्र-मासोंका एक चान्द्र-वर्ष होता है । इसका मान दिनादि ३५४ । २२ । १ । २४ है । यही मुसलमानोंका स्वीकृत वर्ष है । यह सौर-वर्षसे ११ दिन कम है अतः उनका प्रत्येक त्योहार प्रति-सौरवर्ष ११ दिन पहलेही आ जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि, लग-भग ३२½ महीनोंमें उनके सभी पर्व एक महीने पूर्व पडने लगते हैं और लगभग ३२½ वर्षोंमें वे सभी ऋतुओंमें घूम आते हैं। पर हिन्दू शास्त्रकारोंने अपने चान्द्र पर्वदिनोंको उक्त ऋतु-व्यतिक्रमसे बचानेके लिये अधिमासकी युक्ति सोच निकाली है। इसमें पर्वोंकी ऋतुविषयक रक्षा तो हो जाती है; पर फिर भी उनकी अङ्गरेजी तारीखें १९ सौर वर्षोंतक प्रति-वर्ष एक निश्चित क्रमसे भिन्न-भिन्न होती हैं जो उतने वर्षोंके पश्चात् पुनः लग-भग पूर्व क्रमको पकड लेती है । लग-भग इस कारण कहा कि, पूर्वक्रम ठीक-ठीक नहीं रहता ।

(१९) राशि-चक्र (Zodiac) । यह उस कल्पित मेखला (Belt) का नाम है जो क्रान्ति-वृत्तके दोनों तरफ प्रायः आठ अंशोंतक फैली हुई उसीके साथ-साथ खगोलके चारों ओर दौड गई है । चन्द्र, सूर्य तथा ग्रह-गण अपनी-अपनी कक्षाओंमें भ्रमण करते हुए इसी मेखलाके अन्तर्गत दीख पडते हैं ।

(२०) राशि (Sign of Zodiac)। राशि-चक्रको तुल्य १२ भागोंमें विभक्त करनेसे प्रत्येक भागका नाम राशि पडता है, जो ३० अंशोंकी होती है । प्राचीनोंने प्रत्येक राशिका नाम उस जन्तुके अनु-

सार रखा है, जिसकी आकृतिकी कल्पना वे तत्रस्थ तारा-पुञ्जके विन्यास-क्रममें करते थे; जैसे—मेष,(भेड), वृष (बैल) इत्यादि ।

(२१) सौर मास (Solar month)। सूर्यको जितना समय किसी एक राशिको भोगनेमें लगता है, उतने समयका एक सौर मास होता है । चूँकि सूर्यकी गति सदा एकसी नहीं रहती, अतः सभी सौर मासोंका भोग-काल एकही नहीं रहता । इनका मध्यम मान दिनादि ३० । २६ । १७ । ३७ । ३० है । सौर मास भी सौर वर्षकी तरह दो प्रकारके होते हैं-(१) नाक्षत्र और (२) क्रान्ति-पातिक । पूर्वोक्त मध्यम मान नाक्षत्र सौर मासका है । क्रान्ति-पातिक सौर मासका मध्यम मान उससे पलादि ४ । ५८ कम है। क्रान्ति-पातिक सौर मासोंके प्रारंभ होनेकी अंगरेजी तारीखें प्रायः निश्चित (Fixed) हैं। नवम परिच्छेदका नियम १६ देखिये ।

(२२) अमावस्याके पश्चात् चन्द्रको सूर्यसे प्रत्येक १२ अंशोंकी दूरीको पार करनेमें जितना समय लगता है, उतने समयकी एक चान्द्र तिथि (Phase of the Moon) होती है। इस प्रकार ३६० अंशोंमें ३० तिथियाँ होती हैं, तिथिका मध्यम मान घटचादि ५९ । ३ । ४० । १४ है।

(२३) सूर्यको एक अंश चलनेमें जितना समय लगता है, उतनेकी एक सौर तिथि होती है । नाक्षत्र सौर तिथिका मध्यम मान दिनादि १ । ०।५२ । ३५ । १५ है । क्रान्ति-पातिक सौर-तिथि इससे विपलादि ९ । ५६ कम है।

(२४) ३६० अंशोंमें २७ नक्षत्र होते हैं । अतः प्रत्येक नक्षत्रमें अंशादि १३ । २० अर्थात् ८०० कलायें हुई। चन्द्र सूर्य वा किसी ग्रहको मेषारंभसे प्रत्येक ८०० कलाओंकी दूरी पार करनेमें जितना समय लगता है, उतने समयका सम्बन्धित ग्रह वा सूर्य, चन्द्रका एक एक नक्षत्र होता है।इन गगन-चारी पिण्डोंकी गति भिन्न-भिन्न होनेके कारण उनके नक्षत्र-भोग-काल भी भिन्न-भिन्न होते हैं । प्रत्येक चान्द्र

नक्षत्रका मध्यम भोग-काल दिनादि १।०।४२।९३ है। इसी प्रकार प्रत्येक सौर नक्षत्रका दिनादि १३ ।२१।४१। १० है। यह नाक्षत्रमानसे है। क्रान्ति-पातिक मानसे पलादि २।१२।२७ कम होता है। ये सभी मान मध्यम है। इनके स्पष्ट मानमें न्यौनाधिक्य हुआ करता है।

(२५) हिन्दू चान्द्रमासोंके नाम-करण। पूर्णिमाके चान्द्र नक्षत्रके आधारपर सम्बन्धित चान्द्रमासका नाम-करण होता है; जैसे जिस चान्द्रमासकी पूर्णिमाको चित्रा नक्षत्र आता है उसका नाम चैत्र पड़ा। इसी प्रकार विशाखासे वैशाख, ज्येष्ठासे ज्येष्ठ इत्यादि।

(२६) सौर मासोंकी प्रवृत्ति और नाम-करण। सौर मासोंकी प्रवृत्ति संक्रान्तिसे, अर्थात् सूर्य जिस समय किसी राशिमें प्रवेश करताहै, उससमयसे होतीहै और जिस अमान्त चान्द्रमासमें संक्रान्ति होती है, उसी चान्द्रमासके आधारपर सम्बन्धित संक्रान्तिजन्य सौर मासका नाम–करण होता है;. जैसे चैत्र शुक्लपक्षके प्रारम्भसे वैशाख कृष्ण पक्षकी अमावस्यातक अमान्त चान्द्रमास वैशाख है और इसी अवधिके बीचमें मेषकी संक्रान्ति होती है, अतः मेष-संक्रान्तिजन्य सौर मासका नाम वैशाख हुआ। इसीप्रकार वृष (ज्येष्ठ), मिथुन (आषाढ़), कर्क (श्रावण), सिंह (भाद्रपद), कन्या (आश्विन), तुला (कार्तिक), वृश्चिक (मार्गशीर्ष), धनु (पौष), मकर (माघ), कुंभ (फाल्गुन) और मीन (चैत्र) हुआ।

(२७) हिन्दू ज्यौतिषमें नाक्षत्र सौरवर्षका प्रारम्भ मेषकी संक्रान्तिसे तथा क्रान्ति-पातिक सौरवर्षका वासन्त क्रान्तिपात (२१ मार्च) से होताहै। इसीप्रकार चान्द्रवर्षका प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदसे होता है।

(२८) मुसल्मानी महीनोंके नाम ये हैं–(१) मुहर्रम, (२) सफर, (३) रवि-उल-औवल, (४) रवि-उस-सानी,

(५) जमादी-उल- औवल, (६) जमादी-उस्-सानी, (७) रजब, (८) शाबान, (९) रमजान, (१०) शव्वाल, (११) जिल्काद और (१२) जिलहिज्ज ।

(२९) क्रिस्तानी वर्षका आधार यद्यपि क्रान्ति-पातिक सौर वर्ष है, तथापि वह किसी भी क्रान्ति-पातसे आरम्भ न होकर वासन्त क्रान्ति-पातसे लग-भग पौने तीन महीने पूर्व (१ ली जनवरीको) प्रारम्भ होता है । इसके १२ महीनोंके नाम तथा दिनसंख्या इस प्रकार है—जनवरी ३१ । फरवरी २८ तथा २९ । मार्च ३१ । एप्रिल ३० । मई ३१ । जून ३० । जुलाई ३१ । अगस्त ३१ । सितम्बर ३० । अक्तूबर ३१ । नवंबर ३० और दिसम्बर ३१ ।

(३०) पूर्व्वोक्त विविध विवरणोंसे स्पष्ट है कि हिन्दुओंके वर्ष और मास पूर्णतः वैज्ञानिक युक्तिसे युक्त हैं, पर मुसल्मानों तथा क्रिस्तानोंके वैसे नहीं हैं । मुसल्मानोंके कुछ-कुछ हैं भी तो क्रिस्तानोंके एक-दम अवैज्ञानिक हैं । इसका इतिहास भी जो ग्रन्थके दूसरे परिच्छेदमें बताया गयाहै विचित्र है ।

इति श्रीरजनीकान्तशास्त्रिकृतौ ज्योतिर्गणित-कौमुद्यां परिभाषा-धिकारो नाम प्रथमः परिच्छेदः ।

द्वितीय परिच्छेद ।

क्रिस्तानी जंत्री (Christian Calendar) ।

(१) संक्षिप्त इतिहास । रोमवालोंके प्रागैतिहासकालिक पूर्वजोंमें एक जंत्री प्रचलित थी जिसे अलबन जंत्री (Alban Calendar) कहतेथे यही अलबन जंत्री क्रिस्तानी जंत्रीका मूलस्रोत है । इसी जंत्रीने धीरे धीरे कई हजार वर्षोंमें विकसित होकर वर्तमान युगमें विश्वव्यापिनी ग्रेगरीय जंत्रीका रूप धारण करालिया है । अलबन जंत्रीमें १० महीनोंकाही वर्ष होता था और वर्षमें केवल ३०४ ही दिन होते थे । वर्षारम्भ मार्च और वर्षान्त दिसम्बर (Decem=१०) के साथ होता था । सितम्बर (Septem=७) अक्टूबर (Octo=८) और नवम्बर (Novem=९) जैसा कि इनके नामसे स्पष्ट है, वर्षके क्रमशः ७ वां ८ वां और ९ वां महीने थे । इसीप्रकार वर्षका पांचवाँ महीना क्विंटिलिस् (Quintilis, L Quinque =Five) और छठाँ महीना सेक्सटिलिस (Sextilis L. Sex=six) नामसे प्रसिद्ध थे । ई. पू. ७५३ में रोमनगरके निर्माता और उसके प्रथम राजा रोम्यूलस (Romulus) ने अलबनजंत्रीके कतिपय महीनोंकी दिनसंख्याओंको घटा बढाकर और उसी जंत्रीके आधार पर उक्त नगरकी स्थापनाके उपलक्षमें २१ वीं एप्रिलको रोमीय जंत्री (Roman Calendar) का प्रवर्तन किया । पर इस जंत्रीमें भी वर्षकी माससंख्या १० और दिन संख्या ३०४ही पूर्ववत् बनी रही । तत्पश्चात् रोमके दूसरे राजा न्यूमा पम्पिलियस्ने (Numa Pompilius) ई. पू. ७१३ में वर्षमें जनवरी और फरवरी दो नये महीने जोडकर उसे १२ महीनोंमें बाँटा और यूनानी जंत्री (Greek Calendar) की देखादेखी उसे ३५४ दिनोंका चान्द्र वर्ष बनाया । पुनः ई. पू. ४५२ में वर्षका आदर्श सौर वर्ष माना गया और उसे ३५५ दिनोंका कर ऋतुओं और महीनोंमें सामंजस्य रखनेके लिये अधिमास (Intercalary Month) घुसेड़नेकी प्रथा चलाई

गई । यहाँपर यह भी बता देना आवश्यक है कि न्यूमाके समयसे वर्षान्त दिसम्बरके बदले फरवरी माना जाने लगाथा । ई. पू. ४५२ में रोमीय जंत्रीका उक्त सुधार होनेपरभी रोमके पश्चात्कालीन धर्माचार्य सङ्घ (College of Pontiffs) जिसके ऊपर जंत्री बनानेका भार रहता था, राजनीतिक उद्देश्यसे वर्षको घटा बढा दिया करताथा । इसका परिणाम यह हुआ कि ई. पू. ४६ में रोम सम्राट् जूलियस सीजरने देखा कि रोमीय जंत्रीका वर्ष वास्तविक वर्षसे ३ महीने पीछे है जिससे ऋतुओंके निर्धारित समयमें घोर उलटफेर होगया है। अतः उसने अपने ज्योतिषी सोसीजेनिस (Sosigenes) की सलाहसे तत्कालीन रोमीय वर्षमें ९० दिन जोड़ उसे ३५५+९० = ४४५ दिनोंका कर पूरा किया और भविष्यमें ऐसी गलतीसे बचनेके लिये वर्षको ३६५ दिन ६ घंटेका, जो सूर्यके प्रतीयमान वार्षिक भूकेन्द्रक परिभ्रमणकालके प्रायः तुल्यहै मानना निश्चित किया और ३ वर्षोंतक प्रत्येक वार केवल ३६५ दिन लेकर चौथे वर्ष ६×४ = २४ घंटे =१ दिन कमीकी पूर्त्तिके लिये ३६६ दिन लेनेकी व्यवस्था की । ऐसे ३६६ दिनवाले वर्षको अधिकाहवर्ष (Leep year) कहा जानेलगा और उस वर्षका फरवरी २९ दिनोंका होने लगा । जूलियससीजर द्वारा इस प्रकार संशोधित जंत्रीका नाम जुलीय जंत्री (Julian Calendar) पड़ा । इसको प्राचीन प्रथा (Old Style) भी कहते हैं । जूलियससीजर पाँचवें महीने (Quintilis) की १२ वींको पैदा हुआ था, अतः उसने उसका नाम स्वनामानुसार जुलाई रखा। इसीप्रकार रोम सम्राट् अगस्टस छठे महीने (Sextilis) को अपने लिये शुभ मानता था, अतः उसने उसका नाम स्वनामानुसार अगस्त रख दिया । इसके अलावे रोम्युलससे लेकर अगस्टसतक सभी सुधारकोंने कतिपय महीनोंकी दिनसंख्यामें काट छाँट भी की थी पर अगस्टस्के बाद आजतक महीनोंके नाम वा दिनसंख्यामें कोई परिवर्तन नहीं हुआ ।

लोगोंका अनुमान होगा कि जूलीय जंत्रीके प्रवर्त्तनसे ४६ वर्षोंके बाद ही ईसवी सन्का प्रादुर्भाव हुआ। पर ऐसा न हुआ। ईसा जन्मे, अपने धर्मका प्रचार कर अपनी इह-लीलाका भी संवरण कर गये और कई शताब्दियोंतक रोमके पोपों द्वारा ईसाई धर्मका प्रचार भी होता रहा; पर ईसवी सन्का कहीं भी पता नहीं। अन्ततः ईसाके जन्मसे ५०० वर्षोंके बाद अर्थात् छठी शताब्दीमें डायोनीसियस् एक्सिग्यूअस् (Dionysius Exiguus) नामक एक रोमी पादड़ीने तत्कालीन इतिहास-ग्रन्थों तथा अन्य उपलब्ध सामग्रियोंकी सहायतासे गणित कर ईसाके जन्मदिनसे गणित करनेके समयतक बीते हुए कालका मान निकाल ईसवी सन्का जन्म-दाता बना। डायोनिसियस्ने ईसवी सन्की स्थापना तो की पर ईसाई जगत्में आठवीं शताब्दीतक उसका सार्वत्रिक प्रचार न हुआ। विद्वानोंका कथन है कि डायोनीसियस्ने ईसाकी जन्म-तिथि निकालनेमें ४ वर्षोंकी भूल की थी ईसाका जन्म वस्तुतः ४ ई० पू० में ४ एप्रिलको हुआ ठीक माना जाता है। इस प्रकार आविष्कृत किये हुए ईसवी सन्में भी जूलीय जंत्रीकी ही तरह साधारण वर्ष ३६५ दिनोंका तथा अधिकाह वर्ष ३६६ दिनोंका माना जाने लगा।

ऊपर लिख आये हैं कि जूलीय जंत्रीमें ३६५ दिन ६ घंटेका वर्ष मानते हैं; किन्तु ऐसा करनेसे प्रतिवर्ष क्रान्ति-पातिक सौर वर्षसे ६ घं-घंटादि ५।४८।४६ अर्थात् ११ मि. १४ से. अधिक लेते हैं। यह आधिक्य ४०० वर्षोंमें कुछ अधिक ३ दिन हो जाता है। इस भूलपर पहले पहले रोमके पोप १३ वें ग्रेगरीने सूक्ष्मता-पूर्वक विचार किया। उन्होंने ईसवी सन् १५८२ में हिसाब लगाकर देखा कि नाइस नगरके धर्म-सम्मेलनके समयसे, जो ई० स० ३२५ में हुआ था, पूर्वोक्त आधिक्य १० दिन होगया है, जिसको गणनामें नहीं लेनेके कारण लोगोंको जिसे १५ वीं अक्टूबर कहना चाहिये था, उसे अभी ५ वीं ही अक्टूबर कह रहे हैं। इस विचारसे उन्होंने नेपुलस्के ज्योतिषी

(Aloysius Lilius) एलाय सियस् लिलियस्के परामर्शसे ५वीं अक्टूबरको १५ वीं अक्टूबर निश्चित किया और तबसे यह नियम निकाला कि जिन शताब्दियोंमें ४०० का भाग निश्शेष नहीं जाये, उनको अधिकाह वर्ष नहीं किया जाये—यद्यपि वे जूलीय मतसे अधिकाह वर्ष क्यों न हो। ऐसा करनेसे ४०० वर्षोंका पूर्वोक्त ३ दिनका आधिक्य नष्ट हो जाता है, क्योंकि इससे ४०० वर्षोंमें १०० जगह केवल ९७ ही अधिकाह लेते हैं। इस प्रकार पोपग्रेगरी द्वारा संशोधित जंत्रीको ग्रेगरीय जंत्री (Gregorial Calendar) तथा (New Style) नवीन प्रथा कहते हैं। इस नवीन प्रथाको इटली, फ्रान्स, स्पेन और पुर्त्तगालने ई० स० १५८२ में; प्रशिया, जर्मनीके रोमन कैथोलिक प्रदेश स्वीजरलैंड, हौलैंड और फ्लैंडर्सने ई० स० १५८३ में; पोलेंडने ई० स० १५८६ में; हंगेरीने ई० स० १५८७ में; जर्मनी और नेदरलैंडके प्रोटेस्टैंट प्रदेश तथा डेनमार्कने ई० स० १७०० में; बृटिश साम्राज्यने ई० स० १७५२ में; जापानने ई० स० १८७२ में; चीनने ई० स० १९१२ में; बलगेरियाने ई० स० १९१५ में; टर्की और सोवियट् रूसने ई० स० १९१७ में एवं यूगोस्लेविया और रुमानियाने ई० स० १९१९ में अपनाया।

अब यहाँपर यह भी बतला देना जरूरी है कि, ईसवी सन्‌का प्रारंभिक दिन (New Year's Day) पहले कौन था और उसमें किस प्रकार परिवर्त्तन होते होते अब वह १ ली जनवरी होगया है। पहले लिखा जा चुका है कि, रोमीय जंत्रीमें वर्षका प्रारम्भ मार्चके साथ होताथा और कई शताब्दियोंतक यही नियम रहा। पर धीरे-धीरे देश और कालके भेदसे सुविधा-वश वर्षके प्रारंभिक दिनमें भिन्नता आगई। इंगलैंडमें ७ वीं शताब्दीसे लेकर १३ वीं शताब्दीतक बड़े दिनसे, अर्थात् २५ दिसंबरसे, वर्षारंभ माना जाताथा। पुनः १४ वीं शताब्दीसे लेकर ई० स० १७५१ तक २५ मार्च ही वर्षारंभ माना गया। अन्तमें ई० स० १७५२ से जब नवीन प्रथाका प्रचार हुआ, तो वर्षका आरंभ

१ जनवरीसे किया जाने लगा। स्काटलैंडने ई० स० १६०० से वेनिसने ई० स० १६२२ से, जर्मनीने ई० स० १६४४ से, स्पेन, पुर्त्तगाल तथा रोमन कैथोलिक नेदरलैंडने ई० स० १६६६ से, प्रशिया, स्वीडन और डेनमार्कने ई० स० १६५९ से, फ्रान्सने ई० स० १५६४ से, लौरेनने ई० स० १५७९ से, प्रोटेस्टैंट नेदरलैंडने ई० स० १५८३ से, रूसने ई० स० १७२५ तथा टस्कैनीने ई० स० १७५१ से १ जनवरी-को वर्षारंभ मानना शुरू किया है।

इस प्रकार आज कल प्रायः सभी देशोंमें ग्रेगरीय जंत्रीका प्रचार होगया है और वर्षका प्रारंभ १ ली जनवरी माना जाता है। पर एक समय ऐसा भी आवेगा कि इसका भी संशोधन करना पडेगा। क्रान्ति-पातिक सौर वर्ष दशमलवके रूपमें ३६५. २४२२१८ दिनोंका होता है; अतः हमें ४०० वर्षोंमें ४००×२४२२१८ अर्थात् ९६.८८७२ दिन अधिक लेना चाहिये; पर लेते हैं हम ९७ दिन। इससे यह फल निकला कि हम ४०० वर्षोंमें ९७–९६.८८७२='११२८ दिन नियमसे अधिक लेते हैं, जो ३५४६ वर्षोंमें १ दिन हो जायगा। बाइसका धर्म-सम्मेलन ई० स० ३२५ में हुआथा; अतः ई० स० ३२५+३५४६=३८७१ में हमें १ दिन छोडना पडेगा।

(२) तारीखान्तर और उसकी वृद्धि। ई०स० १५८२ में पोपग्रेगरीने ५ वीं अक्टूबरकी जगह १५ वीं अक्टूबर की थी; अतः उस समय दोनों प्रथाओंके तारीखोंका अन्तर १० हुआ। पोपसाहब यदि ईसवी सन्के प्रारम्भसे हिसाब किये होते तो यह अन्तर १२ होता पर चूँ कि, उन्होंने ई० स० ३२५ से हिसाब किया था; इस कारण अन्तर १० ही आया और यही अन्तर चलते–चलते ई० स० १७०० के फरवरीकी २८ वीं तारीखतक रहा। यह सन् प्राचीन प्रथानुसार अधिकाह था; पर नवीन-प्रथानुसार वैसा न था। अतः जब प्राचीन प्रथामें फरवरीके अन्त (२९ वीं) होनेमें १ दिनकी देर हुई तो नवीन प्रथामें १०+१=११ वीं मार्च हुई, जिससे तारीखान्तरमें १ दिनकी वृद्धि होगई। इससे यह सिद्ध हुआ कि तारीखान्तरकी वृद्धि

केवल १७००, १८००, १९०० आदि जैसे उन्हीं शताब्दियोंकी फरवरीकी २८ वींसे होती है, जो केवल प्राचीन प्रथामें ही अधिकाह हैं, नवीनमें नहीं, क्योंकि, यदि दोनों प्रथाओंमें वे अधिकाह होते तो फरवरी दोनों प्रथाओंमें एकही साथ समाप्त होता जिससे तारीखान्तरमें कुछ भी परिवर्त्तन न होता।

(३) तात्कालिक तारीखान्तर। किसी निर्दिष्ट ई० सन्, महीने और तारीखमें दोनों प्रथाओंके तारीखान्तरको तात्कालिक तारीखान्तर कहतेहैं। निर्दिष्ट ई० सन्‌मेंसे १ घटा शेषकी शताब्दि-संख्यामें ४ का भाग दे लब्धिमें २ जोड, योग-फलको पूर्वोक्त शताब्दि-संख्यामेंसे घटानेसे दोनों प्रथाओंका तात्कालिक तारीखान्तर निकलता है। लब्धिमें २ जोडकर घटानेका अभिप्राय ई० स० ३२५ से तारीखान्तर निकालनेसे है। यदि केवल लब्धि घटाई जाय तो तारीखान्तर ई० सन्‌के प्रारम्भसे निकलेगा। नियम (२) देखिये। १७०० के सरीखे ई० सनोंमें दो तारीखान्तर निकलते हैं-एक जूलीय फरवरीके २८ वींतक चलताहै और दूसरा, जो पहलेमें १ मिलानेसे निकलता है, उसी महीनेके २९ वींसे चलताहै। पुनः नियम (२) देखिये। (४) ग्रेगरीय जंत्रीके तारीखादिमें तात्कालिक तारीखान्तरको घटानेसे जूलीय जंत्रीके तारीखादि निकलते हैं।

नोट—१७०० के सरीखे ई० सनोंमें पूर्वोक्त तारीखान्तरको ग्रेगरीय फरवरीकी २८ वीं तारीखमें जोडनेसे जो तारीखादि मिलें उतने तारीखादितक उसी तारीखान्तरका और उनके दूसरे दिनसे उस तारीखान्तरमें १ जोड उस योगफलका संस्कार करना होगा। शून्य तारीख जूलीय फरवरीका अन्त है। जबतक तारीखान्तर नहीं बढे तबतक २८ वींको और तारीखान्तर–वृद्धि–दिनसे २९ वींको जूलीय फरवरीका अन्त समझना चाहिये।

उदाहरण। ग्रेगरीय जंत्रीकी ११ वीं, १२ वीं, १३ वीं तथा १४ वीं मार्च सन् १९०० को जूलीय तारीखादिमें बदलना है तो

१९००-१= शेष १८९९ । १८÷४= लब्धि ४ । १८-(४+२) =तारीखान्तर १२ । ईष्ट सन् १७०० के सरीखा है--अतः ग्रेगरीय २८ वीं फरवरी +१२=१२ वीं मार्च । अब १२ वीं मार्च तक १२को और १३ वीं मार्चसे १३ को घटावेंगे । ऐसा करनेसे १२ वीं मार्च तक २८ वींको और १३ वीं मार्चसे २९ वींको जूलीय फरवरीका अन्त समझना चाहिये । इस रीतिसे हिसाब किया तो ग्रेगरीय ११ वीं मार्च=११-१२=-१=२८-१=जूलीय २७ वीं फरवरी ग्रेगरीय १२ वीं मार्च=१२-१२=०= जूलीय २८ वीं फरवरी ग्रेगरीय १३ मार्च=१३-१३=०= जूलीय २९ वीं फरवरी । ग्रेगरीय १४ वीं मार्च=१४-१३= जूलीय १ ली मार्च । इसके बाद बराबर १३ घटाया जायगा, जबतक तारीखान्तरमें पुनः १ दिनकी वृद्धि न होगी । आज कल तारीखान्तर १३ चल रहा है और यह ग्रेगरीय १३ मार्च सन् २१०० तक चलता रहेगा ।

(९) जूलीय तारीखादिमें तात्कालिक तारीखान्तरको जोडनेसे ग्रेगरीय तारीखादि मालूम होते हैं ।

नोट-१७०० के सरीखे ई० सनोंमें पूर्वोक्त तारीखान्तरको जूलीय २८ वीं फरवरी तक और उसके बादसे अर्थात् २९ वीं फरवरीसे उस तारीखान्तरमें १ जोड उस योग फलको जोडना चाहिये । यहाँ भी शून्यका अभिप्राय और जूलीय फरवरीका अन्त नियम (४) वत् समझना चाहिये ।

उदाहरण । जूलीय जंत्रीकी २७ वीं, २८ वीं, २९ वीं फरवरी और १ ली मार्च सन् १९०० को ग्रेगरीय तारीखादिमें बदलना है तो पूर्ववत् तारीखान्तर १२ आया । ईष्ट सन् १७०० के सरीखा है, अतः जूलीय २७ वीं फरवरी=२७+१२=३९=३९-२८=११ वीं ग्रेगरीय मार्च । जूलीय २८ वीं फरवरी =२८+१२=०=१२ वीं ग्रेगरीय मार्च । जूलीय २९ फरवरी=२९+१३=०+१३=१३ वीं ग्रेगरीय मार्च । जुलीय १ ली मार्च=१ +१३ =१४ वीं ग्रेगरीय मार्च इत्यादि ।

इङ्गलैंडने ई० स० १७५२ में ग्रेगरीय जंत्रीको अपनाया था ।

उक्त सन्का तारीखान्तर निकालते हैं—१७५२-१=शेष १७५१ । १७÷४= लब्धि ४ । १७-(४+२)=तारीखान्तर ११। इसीकारण पार्लियामेंटने उक्त सन्की ३ री सितम्बरको ३+११=१४ वीं सितम्बर माननेकी आज्ञा दी ।

(६) लगातार भाग देना । किसी एक ही भाज्यमें दो वा दोसे अधिक भाजकोंके लगातार भाग देनेका यह अभिप्राय है कि भाज्यमें पहले सबसे बडे भाजकका भाग दो, जो शेष आवे—उसमें द्वितीय सबसे बडे भाजकका भाग दो, फिर शेष जो आवे उसमें तृतीय सबसे बडे भाजकका भाग दो, बस इसी प्रकार भाग देते चले जाओ, जबतक सबसे छोटे भाजकका भाग पड जाये । यदि किसी भाजकका भाग मूल भाज्य वा किसी शेषमें न जा सके तो उस भाजकके बाद-वाले भाजकोंका भाग देना चाहिये ।

(७) इसवी सन्, महीना और तारीख जान कर वार जानना—

(क) ग्रेगरीय जंत्री । इष्ट ईसवी सन्में ४००, १००, २८ और ४ का लगातार भाग दो । १००और ४ की लब्धियोंको जोड योग फलको ५ से गुणा, गुणन फलमें अन्तिम शेषको जोडनेसे साधारण वर्षोंमें इष्ट इसवी सन्का प्रारंभिक अर्थात् पहली जनवरीका वाराङ्क होगा । यदि इष्ट सन् कोई अधिकाह वर्ष हो तो उक्त प्रारंभिक वाराङ्कमेंसे १ घटाकर शेषकोही प्रारंभिक वाराङ्क समझना चाहिये । पहली जनवरीके वाराङ्कमें निम्नलिखित वार चक्रमें इष्ट महीनेके नीचे लिखे हुए अङ्कको जोडनेसे इष्ट महीनेका प्रारंभिक वाराङ्क होगा । फिर इष्ट मासके प्रारंभिक वाराङ्कमें इष्ट तारीख जोड, योगफलमेंसे १ घटानेसे शेष इष्ट तारीखका वाराङ्क होगा । वाराङ्कके ७ से अधिक होनेपर उसमें ७ का भाग दे शेषको ही वाराङ्क मानना चाहिये । जितना वाराङ्क हो उतना ही वार सोमवारसे गिननेपर इष्ट वार मिलेगा ।

उदाहरण। ईसवी सन् १५८२ में १५ अक्तूबरका वार निकालना है तो १५८२ में ४००, १००, २८ और ४ का भाग दिया तो १०० की लब्धि ३ और ४ की लब्धि ६ हुआ। अब ३+६=९। ९×५=४५। ४५+ अन्तिम शेष २=४७। ४७+ चक्रस्थ अक्तूबरका वाराङ्क ०=४७। ४७+ इष्ट तारीख १५=६२। ६२-१=६१। यह सातसे अधिक है; अतः ६१÷७= शेष ५। सोमवारसे ५ वार गिने तो शुक्रवार आया। यदि ७ का भाग देनेपर ० शेष मिले तो वहाँपर ७ ही शेष मानना चाहिये।

(ख) जूलीय जंत्री। इष्ट ईसवी सन्में २८ और ४ का लगातार भाग दो। ४ की लब्धिको ५ से गुण, गुणन-फलमें अन्तिम शेषको जोडनेसे साधारण वर्षोंमें इष्ट सन्का प्रारंभिक वाराङ्क आता है; पर अधिकाह वर्षोंका प्रारंभिक वाराङ्क इसमेंसे १ घटानेसे ही निकलता है, जैसा ग्रेगरीय जंत्रीमें किया जाता है। तत्पश्चात् शेष क्रिया ग्रेगरीय जंत्रीकी ही तरह करनी चाहिये; पर वारोंको शनिवारसे गिनना चाहिये।

उदाहरण। जूलीय ईसवी सन् १५८२ में ४ थी अक्तूबरका वार निकालना है तो १५८२ में २८ और ४ का लगातार भाग दिया, जिससे ४ की लब्धि ३ हुआ। अब ३×५=१५। १५+ अन्तिम शेष २=१७। १७+ चक्रस्थ अक्तूबरका वाराङ्क ०=१७। १७+४=२१। २१-१=२०। २०÷७ शेष ६। शनिवारसे ६ वार गिननेपर गुरुवार आया, जो ठीक ही है; क्योंकि, जब ४ थी अक्तूबरको गुरुवार था तभी उसके दूसरे दिन ५ वीं अक्तूबरको, जिसे पोपग्रेगरीने १५ वीं अक्तूबर माना था, शुक्रवार आया है। (क) का उदाहरण देखो।

॥ वार-चक्र ॥

	जनवरी	फरवरी	मार्च	एप्रिल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितंबर	अक्तूबर	नवंबर	दिसंबर
साधा० वर्ष	०	३	३	६	१	४	६	२	५	०	३	५
अधि० वर्ष	०	३	४	०	२	५	०	३	६	१	४	६

(८) इष्ट ईसवी सन्, महीना और वार जानकर उस वारको आनेवाली तारीखोंको जानना ।

पूर्वोक्त रीतियोंके द्वारा इष्ट ईसवी सन्के इष्ट महीनेका प्रारंभिक वाराङ्क निकाल उसे इष्ट वारके अङ्कमेंसे घटा शेषमें १ जोडनेसे प्रथम सप्ताहमें इष्ट वारकी तारीख निकलेगी । फिर इस तारीखमें ७, १४, २१ और २८ को अलग-अलग जोडनेसे क्रमशः दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें सप्ताहमें उसी वारको आनेवाली तारीखें निकलेंगी । इष्ट वारका अङ्क मालूम करनेके लिये ग्रेगरीय मतमें सोमवारसे तथा जूलीय मतमें शनिवारसे गिनना चाहिये, यदि इष्ट महीनेका प्रारंभिक वाराङ्क इष्ट वारके अङ्कमेंसे न घंटे तो इसमें ७ और जोडकर घटाना चाहिये ।

उदाहरण । ग्रेगरीय ईसवी सन् १८८१ के जुलाईमें शुक्रवारकी तारीखें निकालनी हैं तो जुलाईके प्रारंभिक वाराङ्क ५ हुआ और दिये हुए शुक्रवारका अङ्क भी सोमवारसे गिननेपर ५ ही आया । अब हिसाब किया ५-५ =० । ०+१=१ हुआ जिससे प्रथम सप्ताहमें शुक्रवारको १ ली तारीख निकली । इसमें ७, १४, २१ और २८ को अलग-अलग जोडनेसे दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें सप्ताहमें उसी (शुक्र) वारको आनेवाली तारीखें क्रमशः ८, १५, २२ और २९ हुईं ।

(९) वर्षके भीतर किसी इष्ट महीनेकी किसी इष्ट तारीखतक वर्षारंभसे बीती हुई दिनसंख्या मालूम करनेके लिये निम्नलिखित चक्रमेंसे गत मासके नीचेकी दिनसंख्यामें इष्ट तारीखको जोडना चाहिये । इस प्रकार प्राप्त गत दिनसंख्याको वर्षकी पूर्ण दिन-संख्या (३६५ वा ३६६ जो हो उस) मेंसे घटानेपर भोग्य दिन-संख्या निकलती है ।

॥ वर्षान्तर्गत दिन संख्याचक्र ॥

	जनवरी	फरवरी	मार्च	एप्रिल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितंबर	अक्टूबर	नवंबर	दिसंबर
साधा-वर्ष	३१	५९	९०	१२०	१५१	१८१	२१२	२४३	२७३	३०४	३३४	३६५
अधि-वर्ष	३१	६०	९१	१२१	१५२	१८२	२१३	२४४	२७४	३०५	३३५	३६६

उदाहरण। ईसवी सन् १८९९ में २० वीं दिसंबरतक बीती हुई दिन-संख्या निकालनेके लिये गत मास नवंबरके नीचेकी दिनसंख्या ३३४ में इष्ट तारीख २० जोडी तो वर्षारंभसे गत दिनोंकी संख्या ३५४ और भोग्य दिन-संख्या ३६५-३५४= ११ हुई।

(१०) ग्रेगरीय ईसवी सन्, महीना और तारीख जानकर ईसवी सन्के प्रारम्भसे इष्ट तारीखतक बीती हुई दिन-संख्याका निकालना। दिये हुए सन् आदिमें तात्कालिक तारीखान्तरका संस्कार कर उसे जूलीय सन् आदिमें परिणत करो। इस प्रकार प्राप्त जूलीय सन्मेंसे १ घटा शेषको दो जगह रखो। एक जगह शेषको ३६५ से गुण, गुणन-फलमें, दूसरी जगह शेषमें ४ का भाग दे लब्धिको जोड दो। फिर इस योग-फलमें प्राप्त जूलीय सन्के प्रारंभसे उसके प्राप्त महीनेकी प्राप्त तारीखतक गत दिन-संख्याको नियम (९) के द्वारा निकालकर जोड देनेसे ईसवी सन्के प्रारंभसे लेकर इष्ट अवधितक बीती हुई दिन-संख्या निकलती है।

उदाहरण। ग्रेगरीय ईसवी सन् १९०० की १ ली जनवरीतक ईसवी सन्के प्रारंभसे बीती हुई दिन-संख्या निकालनी है तो इसमें तात्कालिक तारीखान्तर १२ घटानेसे जूलीय ई० स० १८९९ के दिसम्बरकी २० वीं तारीख हुई। अब हिसाब किया--१८९९-१= शेष १८९८। १८९८×३६५=६९२७७०। १८९८÷४=लब्धि ४७४। ६९२७७०+४७४=६९३२४४। इस संख्यामें प्राप्त जूलीय ई० सन् १८९९ की २० वीं दिसम्बरतक बीती हुई दिन-संख्या ३५४ (नियम ९) को मिलाया तो ईसवी सन्के प्रारंभसे लेकर इष्ट अवधितक बीती हुई दिन-संख्या ६९३२४४+३५४=६९३५९८ मिली।

(११) ईसवी सन्‌का प्रारंभिक वार अर्थात् वह सन् किस वारको प्रारंभ हुआ था, यह जाननेके लिये उक्त सन्‌के प्रारंभसे किसी भी इष्टावधितक बीती हुई दिन-संख्यामें ७ का भाग दे शेष तुल्य इष्टावधिके वारसे उलटा गिनो ।

उदाहरण । नियम (१०) के अनुसार प्राप्त दिन-संख्या ६९३६९८ में ७ का भाग दिया तो शेष ३ आया । इष्टावधिका वार दोनों प्रथाओंसे एकही आना चाहिये सो सोमवार आया । सोमवारसे ३ वार पीछे हटा तो शनिवार आया । यही ईसवी सन्‌के प्रारंभका वार है ।

नोट—विद्वानोंने गणित करके इस बातका भी पता लगा लिया है कि, ईसवी सन्‌का प्रारंभ रौद्र-संवत्सर कलियुगाब्द ३१०२में माघ कृष्ण ३ को हुआ था । उस वर्ष मार्गशीर्ष (अग्रहायण) और पौषके परस्परमें लीन होजानेके कारण जो लुप्तमास (क्षयमास) हुआ था, उस मासके कृष्ण पक्षकी अमावस्या (३०) भौमवारको लङ्कामें सूर्योदयसे ३७ घटीपर मकरकी संक्रान्ति हुई थी । यह मकर-संक्रान्ति ई० पू० १ की १४वीं दिसंबरको हुई थी । १५ वीं तारीखसे उक्त क्षयमासका शुक्ल पक्ष शुरू हुआ । २९ वीं दिसंबरको पूर्णिमा हुई । ईसवी सन् १ की १ ली जनवरीको माघ कृष्ण ३ हुई, इस प्रकार समझना चाहिये । और जब १४ वीं दिसंबरको भौमवार था, तो २८ वीं दिसंबरको भी भौमवारही हुआ जिससे १ ली जनवरीको शनिवार आया जो ठीक ही है ।

२००० वर्षोंका जन्त्रीचक्र ॥

(१२) नीचे दिये हुए जंत्री-चक्रके द्वारा ग्रेगरीय ईसवी सन् १६०० से लेकर ग्रेगरीय ईसवी सन् ३५०० तक किसी भी सन्, महीना और तारीखका वार निकाल सकते हैं ।

शताब्दी संख्या							
१९	१८	१७	१६				
२३	२२	२१	२०				
२७	२६	२५	२४	ऊर्ध्वांक			
३१	३०	२९	२८				
३५	३४	३३	३२				
७	५	३	१	८४	५६	२८	०
६	४	२	७	८५	५७	२९	१
५	३	१	६	८६	५८	३०	२
४	२	७	५	८७	५९	३१	३
२	७	५	३	८८	६०	३२	४
१	६	४	२	८९	६१	३३	५
७	५	३	१	९०	६२	३४	६
६	४	२	७	९१	६३	३५	७
४	२	७	५	९२	६४	३६	८
३	१	६	४	९३	६५	३७	९
२	७	५	३	९४	६६	३८	१०
१	६	४	२	९५	६७	३९	११
६	४	२	७	९६	६८	४०	१२
५	३	१	६	९७	६९	४१	१३
४	२	७	५	९८	७०	४२	१४
३	१	६	४	९९	७१	४३	१५
१	६	४	२	०	७२	४४	१६
७	५	३	१	०	७३	४५	१७
६	४	२	७	०	७४	४६	१८
५	३	१	६	०	७५	४७	१९
३	१	६	४	०	७६	४८	२०
२	७	५	३	०	७७	४९	२१
१	६	४	२	०	७८	५०	२२
७	५	३	१	०	७९	५१	२३
५	३	१	६	०	८०	५२	२४
४	२	७	५	०	८१	५३	२५
३	१	६	४	०	८२	५४	२६
२	७	५	३	०	८३	५५	२७

मासाङ्क
१ । १०
५
२ अ । ८
२ । ३ । ११
६
९ । १२
१ अ । ४ । ७

वाराङ्क						
१	२	३	४	५	६	७
२	३	४	५	६	७	१
३	४	५	६	७	१	२
४	५	६	७	१	२	३
५	६	७	१	२	३	४
६	७	१	२	३	४	५
७	१	२	३	४	५	६

तारीख						
१	२	३	४	५	६	७
८	९	१०	११	१२	१३	१४
१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१
२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
२९	३०	३१				

व्याख्या

१ अ=जनवरी (अधिकाह वर्ष)

२ अ=फरवरी (अधिकाह वर्ष)

नियम । जन्त्री-चक्रमें इष्ट सन्‌की शताब्दि-संख्याके नीचे और ऊर्ध्वाङ्क (शताब्दीके ऊपरकी संख्या) के बायें जो अङ्क मिले उसे इष्ट 'मासाङ्क' के बायें और 'वाराङ्क' के नीचे खोजो । 'वारांक' के जिस पंक्तिमें वह अंक मिले उसी पंक्तिके द्वारा 'तारीख' में उतरकर इष्ट तारीखमेंसे घट सकनेवाली सबसे बडी संख्या लो और उसे इष्ट तारीखमेंसे घटाकर शेष तुल्य सोमवारसे गिनो तो इष्ट वार मिलेगा ।

घटने योग्य संख्याके अभावमें ' तारीख ' की प्राप्त पंक्तिस्थ न्यूनतम संख्यासे इष्ट तारीख तक रव्यादि वार उल्टा गिनिए ।

उदाहरण । ईसवी सन्‌ १९३५, १३ वीं एप्रिलका वार मालूम करना है तो जन्त्री चक्रमें १९ के नीचे और ३५ के बायें ६ मिला । इष्ट मासांक ४ के बायें और 'वारांक' के नीचे जिस पंक्तिमें ६ लिखा है, उसी पंक्तिके द्वारा 'तारीख' में उतरनेसे इष्ट तारीखमेंसे घट सकनेवाली सबसे बडी संख्या ७ मिला जिसे १३ मेंसे घटाकर शेष ६ तुल्य सोमवारसे गिना तो इष्ट वार शनि आया । शून्य शेषको ७ समझना चाहिये ।

इति श्रीरजनीकान्तशास्त्रिकृतौ ज्योतिर्गणित-कौमुद्यां "क्रिस्तानी-जन्त्री" नाम द्वितीयः परिच्छेदः ॥



तृतीय परिच्छेद ।

हिन्दू पञ्चाङ्ग (Hindu Calendar) ।

(१) तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण ये पांच अङ्ग अर्थात् अवयव हैं जिस लेख्य-पत्र (Record) के उसे पञ्चाङ्ग वा तिथि-पत्र कहते हैं ।

(२) ईसवी सन् १९०० की १ ली जनवरीसे किसी इष्ट ईसवी सन् महीने और तारीखतक बीती हुई दिन-संख्याका नाम अहर्गण है । यदि इष्ट ईसवी सन् १९०० से अधिक है तो यह अहर्गण धन होगा और यदि वह कम है तो अहर्गण ऋण होगा । जहाँ ऋण शब्दका विशेष-रूपसे प्रयोग न किया गया हो वहाँ केवल अहर्गण शब्दसे धन अहर्गण समझना चाहिये ।

(३) किसी निर्दिष्ट कालमें वेध-द्वारा उपलब्ध सूर्यादिकोंके राशि-चक्रमें मध्यम स्थान (Mean Position) क्रमशः उनके क्षेपक कहे जाते हैं । निम्न-लिखित चक्रमें जो ग्रह-क्षेपक दिये गये हैं वे काशीमें १ ली जनवरी, ई० स० १९००, सोमवार, मध्यम काल (घडी) से ६ बजे प्रातःकालके हैं—

॥ ग्रह क्षेपक चक्र ॥

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	चन्द्रोच्च	राहु
क्षेपक	रा. ८।१७।४३।१३	रा. ८।१४।४८।२६	रा. ४।११।५३।३९	रा. ७।२६।४१।१२
मध्यम गति	क. ५९ । ८	क. ७९०।३४।५२	क. ६।४०।५५	क. ३।१०।४७
सूर्य-मन्दोच्च=रा. २ । १८ । ४३ । ५ चक्रगति + ३१ विकला				

नोट—काशी-भिन्न देशोंके लिये देशान्तर-गुणित तथा षष्टि-भाजित ग्रह-मध्यमगतिको ग्रह-क्षेपकमें पूर्वमें ऋण तथा पश्चिममें धन, पर राहुमें इसके विपरीत करनेसे इष्ट देशके ग्रह क्षेपक आते हैं ।

(४) सूर्य-कक्षा (क्रांति-वृत्त) का जो बिन्दु पृथ्वीसे दूरतम है वह सूर्यका मन्दोच्च (Aphelion) और जो बिन्दु पृथ्वीसे निकटतम है वह सूर्यका मन्दनीच (Perihelion) कहलाता है । दोनों बिन्दुओंमें ६ राशिका अन्तर है और दोनों गतिशील हैं, पर इनकी गति अत्यन्त धीमी है; अतः उसका उल्लेख नहीं किया। जिन्हें सूक्ष्म गणित करना हो वे ३१ विकलाको चक्र-संख्या (नियम ८) से गुण, गुणन-फलको सूर्यके पूर्वोक्त मन्दोच्चमें जोड देवें।

(५) इसी प्रकार चन्द्र-कक्षाके पृथ्वीसे दूरतम बिन्दुको चन्द्रोच्च (Apogee) और निकटतम बिन्दुको चन्द्रनीच (Perigee) कहते हैं। चन्द्रोच्चकी गति ऊपरके चक्रमें लिख आये हैं। यह धन है।

(६) क्रान्ति-वृत्त और चन्द्र-कक्षा एक दूसरेको अंशादि ५ । ९ के कोणपर जिन दो बिन्दुओंपर स्पर्श करते हैं उनमेंसे एकको राहु (Ascending Node) और दूसरेको केतु (Descending Node) कहते हैं। राहु वह है जिसके द्वारा चन्द्र क्रान्तिवृत्तके दक्षिणसे उत्तरकी ओर और केतु वह है जिसके द्वारा वह क्रान्ति-वृत्तके उत्तरसे दक्षिणकी ओर जाता है । राहुकी गति भी उसी चक्रमें लिख आये हैं। यह सदा ऋण रहती है।

(७) **अहर्गणका लाना।** इष्ट ईसवी सन्‌मेंसे १९०० को घटाकर शेषको ३६५ से गुण दो । गुणन-फलमें दोनों सनोंके मध्य-वर्त्ती अधिकाह वर्षोंकी संख्या और इष्ट ईसवी सन्‌के इष्ट तारीख-तककी दिन-संख्याको एकोन कर मिलानेसे अहर्गण निकलता है। मध्य-वर्त्ती अधिकाह वर्षोंसे उन अधिकाह वर्षोंका अभिप्राय है जो ई० स० १९०० के प्रारंभके पश्चात् और इष्ट ई० स० के प्रारंभके पूर्व आये हों। अहर्गणकी शुद्धता जाँच करनेके लिये उक्त इष्ट तारीखका वार, जहाँतक अहर्गण निकालना है, द्वितीय परिच्छेदके नियम (१२) में दिये हुऐ जंत्री-चक्रके द्वारा निकालो । पुनः अहर्गणमें

७ का भाग दे शेष तुल्य भौम वारसे गिनो। यदि दोनों प्रकारसे एक ही वार आवे तो अहर्गणको शुद्ध समझो । और यदि भिन्न वार आवें तो उसे अशुद्ध समझ, गणितक्रियाको ध्यान-पूर्वक फिरसे दुहराओ ।

उदाहरण। ई० स० १९३६ की ८ वीं जनवरीतकका अहर्गण निकालना है तो १९३६-१९००=शेष ३६। दोनों सनोंके मध्य-वर्त्ती अधिकाह वर्षोंकी संख्या है ८। और इष्ट ई० स० की इष्ट तारीख-तककी दिनसंख्या ८ को एकोन करनेपर ७ आया । अतः अहर्गण हुआ ३६५×३६+८+७= १३१५५। इसकी शुद्धता जाँचनेके लिये ई० स० १९३६ की ८ वीं जनवरीका वार उक्त जंत्री-चक्रसे निकाला तो बुधवार आया और उक्त अहर्गणमें ७ का भाग दे शेष २ तुल्य भौमवारसे गिना तो बुधवार ही आया। अतः अह-र्गण शुद्ध है।

(८) चक्र और द्युगण। अहर्गणमें ४०१६ का भाग देनेसे लब्धितुल्य चक्र और शेषतुल्य द्युगण आता है; जैसे पूर्वानीत अहर्गण १३१५५ में ४०१६ का भाग दिया तो चक्र ३ और द्युगण ११०७ आया। चतुर्थ परिच्छेदमें नियम (६) पढ़िये।

॥ ग्रह-ध्रुवांक-चक्र ॥

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	चन्द्रोच्च	राहु
ध्रुवांक	रा. ०।१।४९।११	रा. ०।३।४६।९	रा. ९।२।४६।५१	रा. ७।२।५०।०
बीज	०'। ०"	+ ०'। २"	− १'। ५१"	०'। ०"

नोट-सूक्ष्मगणितार्थी बीज-संस्कृत-ध्रुवांकोंसे काम लेवें; यथा चन्द्र ध्रुवांक=०। ३। ४६। ११।

(९) चक्र-गति। ग्रहोंके ध्रुवाङ्कोंको चक्र-संख्यासे गुणदेनेपर उनकी चक्र-गति निकलतीहै; जैसे सूर्यके ध्रुवाङ्क राश्यादि ०। १।

४९ । ११ को ३ से गुणा किया तो उसकी चक्र-गति राश्यादि ० । ९ । २७ । ३३ हुई । इसी प्रकार चन्द्रकी रा. ० । ११ । १८ । २७ चन्द्रोच्चकी रा. ३ । ८ । २० । ३३ और राहुकी रा. ९ । ८ । ३० । ० चक्र-गति हुई । यह सदा ऋण होती है ।

(१०) द्युगण-गति ।

(क) सूर्य । द्युगणमें ७० का भाग देनेसे जो अंशादि लब्धि मिले उसे द्युगणमें घटावे; जो शेष बचे उसकी कलादिमें, द्युगणमें १५० का भाग देनेसे जो कलादि फल मिले उसे ऊन करनेसे सूर्यकी द्युगण-गति निकलती है । अंशोंमें ३० का भाग देनेसे लब्धि राशि होती है । यदि राशि १२ से अधिक हो तो उसमें १२ का भाग दे शेषको ग्रहण करे । द्युगण ११०७ में ७० का भाग दिया तो लब्धि अंशादि १५ । ४८ । ५१ मिली । इसे द्युगण ११०७ में घटाया तो शेष अंशादि १०९१ । ३ । ४६ बचा । फिर द्युगण ११०७ में १५० का भाग दिया तो कलादि फल ७ । २३ लब्ध हुआ । इसे उक्त शेषमें घटाया तो सूर्यकी द्युगण गति अंशादि १०९१ । ३ । ४६ मिली जिसका राश्यादि ० । ११ ।३ । ४६ हुआ ।

(ख) चन्द्र । द्युगणको १४ से गुण, गुणनफलको अंश माने । फिर इसमेंसे इसके १७ वें भागको अंशादि मानकर घटा दे । जो शेष बचे, उसमेंसे द्युगणके १४० वें भागको कलादि मानकर निकाल देनेसे चन्द्रकी द्युगणगति मिलती है । द्युगण ११०७ को १४से गुणा किया तो अंश १५४९८ हुये । इसमेंसे इसके १७ वें भाग अंशादि ९११ । ३८ । ४९ को घटाया तो शेष अंशादि १४५८६ । २१ । ११ हुआ । इस शेषमेंसे द्युगण ११०७ के १४० वें भाग कलादि ७ । ५१ निकाल दिया तो चन्द्रकी द्युगण-गति अंशादि १४५८६ । १३ । २०=राश्यादि ६ । ६ । १३ । २० हुई ।

(ग) चन्द्रोच्च । द्युगणमें ९ का भाग देनेसे जो अंशादि मिले उसमें द्युगणमें ७० का भाग देनेसे जो कलादि लब्ध हो उसे जोड

देनेसे चन्द्रोच्चकी द्युगण-गति निकलती है। द्युगण ११०७ में ९ का भाग दिया तो अंशादि १२३। ०। ० मिला। इसमें ११०७ में ७० का भाग देनेसे लब्ध कलादि १५। ४९ जोडा तो चन्द्रोच्चकी द्युगण-गति अंशादि १२३। १५। ४९=रा. ४। ३।१५। ४९ आई।

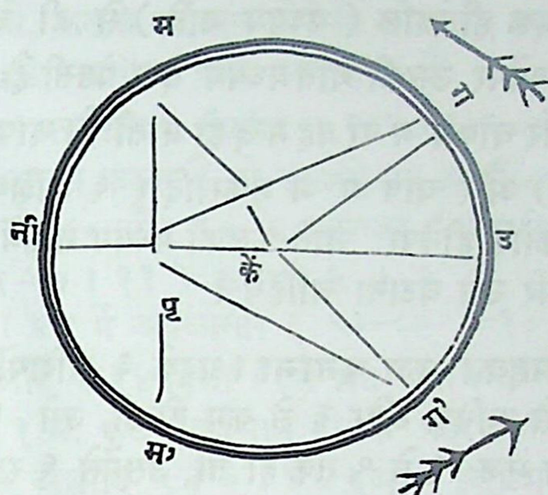
(घ) राहु। द्युगणमें १९ का भाग देनेसे जो अंशादि मिलें उनमें द्युगणमें ४५ का भाग देनेसे जो कलादि लब्ध हों उन्हें जोड-कर योग-फलको १२ राशियोंमेंसे घटानेपर राहुकी द्युगण-गति आती है। द्युगण ११०७ में १९ का भाग दिया तो अंशादि ५८। १५।४७ लब्ध हुए। इनमें द्युगण ११०७ में ४५ का भाग देनेसे लब्ध कलादि २४। ३६ को जोडा तो योग-फल अंशादि ५८। ४०। २३=रा. १। २८। ४०। २३ हुआ। इसे १२ राशियोंमेंसे घटाया तो राहुकी द्युगण-गति राश्यादि १०। १। १९। ३७ आई।

(११) अहर्गण-गति। ग्रहोंकी द्युगण-गतिमेंसे उनकी चक्रगति निकाल देनेसे उनकी अहर्गण-गति आती है। सूर्यकी द्युगण-गति राश्यादि ०। ११। ३। ४६ मेंसे उसकी चक्र-गति राश्यादि ०। ५। २७। ३३ को निकाल दिया तो उसकी अहर्गण-गति राश्यादि ०।५। ३६। १३ आई, इसी प्रकार चन्द्रकी रा. ९। २४। ५४। ५३; चन्द्रोच्चकी रा. ०।२४।५५। १६; तथा राहुकी रा. ०। २२। ४९। ३७ अहर्गण-गति आई।

(१२) मध्यम ग्रह। ग्रहोंकी अहर्गण-गतिको उनके क्षेपकमें जोड देनेसे वे मध्यम बनते हैं। सूर्यकी अहर्गण-गति रा. ०। ५। ३६। १३ को उसके क्षेपक रा. ८। १७। ४३। १३ में जोडा तो मध्यम सूर्य रा. ८। २३। १९। २६ हुआ; इसी प्रकार मध्यम चन्द्र रा. २।९।४२। ४९; मध्यम चन्द्रोच्च राश्यादि ५। ६। ४८।५५; तथा मध्यम राहु रा. ८। १९।३०। ४९ हुआ। चन्द्रोच्च और राहु मध्यम बननेसे ही स्पष्ट हो जाते हैं; इनमें कोई अन्य संस्कार नहीं करना पडता। राहुमें ६ राशियोंको जोडनेसे केतु आता है।

नोट-मध्यम राहु दूसरे प्रकारसे भी लाया जा सकता है । राहुकी चक्रगतिमें उसके नियम (१० । घ) के अनुसार निकाले हुए द्युगण फलको, विना उसे १२ राशियोंसे घटाये हुए, जोडकर योग-फलको राहुके क्षेपकमेंसे घटा देनेपर वह मध्यम बन जाता है । जैसे राहुकी चक्र-गति रा. ९ । ८ । ३० । ० में उसके द्युगणफल रा. १ । २८ । ४० । २३ को जोड, योगफल रा. ११ । ७ । १० । २३ को उसके क्षेपक रा. ७ । २६ । ४१ । १२ मेंसे घटाया तो मध्यम राहु रा. ८ । १९ । ३० । ४९ आया ।

(१३) मन्द-फल । पहले बतला आये हैं कि सूर्य और चन्द्रकी कक्षाओंमें एक बिन्दु पृथिवीसे दूरतम और दूसरा उससे निकट-तम है । इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वी उक्त कक्षाओंके ठीक केन्द्रमें न होकर उससे कुछ अलग हटकर है । वस्तुतः चन्द्र-सूर्यकी कक्षाएँ अण्डाकार वृत्त (Ellipse) हैं जिनकी एक नाभि (Focus) में पृथ्वी है । इसी प्रकार भौमादि पंचताराओंकी कक्षाएँ भी अण्डाकार वृत्त हैं जिनकी एक नाभिमें सूर्य है । इसका यह परिणाम होता है कि पृथ्वी और कक्षा केन्द्र इन दोनों स्थानोंसे युगपत् देखनेपर भी ग्रह, यदि वह मन्दोच्च वा मन्द-नीचपर न हो तो, स्व-कक्षामें भिन्न स्थानों-पर देख पडता है । इन स्थानोंके प्रतीयमान अन्तरका नाम मन्द-फल है । मध्यम ग्रहमेंसे उसका मन्दोच्च घटानेसे मन्द-केन्द्र आता है । मन्द-केन्द्र यदि मेषादि (६ राशियों तक) हो तो मन्दफल ऋण होता है क्योंकि, ग्रह इस दशामें भू-वासियोंको स्वस्थानसे पीछे दीख पडता है और यदि केन्द्र तुलादि (६ से ऊपर पर १२ राशियोंके भीतर), हो तो वह स्वस्थानसे आगे देख पडता है जिससे मन्द-फल धन होता है ।



इस चित्रमें नी=मन्द-नीच पृ=पृथ्वी, कें=कक्षा-केन्द्र, उ=मन्दोच्च, ग=मन्दोच्चसे ६ राशियोंके भीतर ग्रह-स्थान और ग'=६ से ऊपर पर १२ राशियोंके भीतर ग्रह-स्थान; [पृगकें=ग का मन्द-फल ऋण और [पृग'कें=ग' का मन्द-फल धन है। ग्रह बाणकी दिशामें घूम रहा है। पृसे देखनेपर ग बाणकी पूँछकी ओर पर ग' उसके मुखकी ओर स्वस्थानसे विचलित मालूम होगा, अतः ऋण मन्द-फलको मध्यम ग्रहमें घटाना और धन मन्द-फलको उसमें जोडना चाहिये। नी और उपर मन्द-फलका अभाव होगा, कारण कि पृ और कें दोनों स्थानोंसे ग्रह एकही सीधमें देख पडेगा। जब ग्रह नी उ रेखापर लम्ब-भूत पृमके म बिन्दुपर पहुँचेगा तो उसका परम मन्द-फल होगा। म बिन्दुपर मन्द केन्द्र कुछ अधिक ९० अंश रहता है जो चन्द्र-सूर्यके लिये सुखार्थ ९० अंशही मान लिया जाता है।

(१४) गति-फल। ग्रह जब उपर रहता है तो भूवासियोंको उसकी गति मन्दतम; पर नी पर उसके रहनेसे वह शीघ्रतम मालूम पडती है। इसका कारण केवल दूरीकी भिन्नता है; अन्यथा ग्रह तो सर्वदा व-

स्तुतः अपनी एक ही चाल (मध्यम गति) से ही चलता है । म और म' बिन्दुओंपर उसकी गति मध्यम देख पडती है; पर चाप म म' पर वह शीघ्र और चाप म' म पर वह मन्द हो जाती है। चाप मम'को कर्कादि (६ राशियां) और चाप म' म मकरादि (६ राशियां)कहते हैं। मं. केन्द्रके कर्कादि होनेपर गति-फलको मध्यम गतिमें जोडना और मकरादि होनेपर उसे घटाना चाहिये ।

(१५) ग्रहका भुज बनाना । ग्रहके ३ राशियोंसे कम होनेपर वही भुज; ३ से अधिक और ६ से कम हो तो, उसे ६ राशियोंमेंसे घटाने पर शेष भुज; ६ से ९ तक हो तो, उसमेंसे ६ राशियां निकाल देनेसे शेष भुज और ९ से अधिक हो तो उसे १२ मेंसे घटाने पर शेष भुज होता है । भुजांशोंको ९० अंशोंमेंसे घटा देने पर कोटचंश आते हैं।

॥ सूर्य-चन्द्र-फल-चक्र ॥

मन्द केन्द्र	सूर्यमध्यमगति ५९ । ८		मन्दकेन्द्र	चन्द्रमध्यमगति ७९० । ३५	
भुजांश	कलादिमन्द फल	कलादिगति फल	भुजांश	अंशादिमन्द फल	कलादिगति-फल
०	०। ०	२।१८	०	०। ०।	६९ । २८
१०	२३। ५	२ । १२	१०	० । ५२ । ५४	६६ । ५५
२०	४५ । १३	२। ५	२०	१ । ४३ । ४८	६३ । १५
३०	६५ । ४९	१ । ५४	३०	२ । ३१ । २४	५७ । ५८
४०	८४ । २२	१ । ४०	४०	३ । १४ । २०	५१ । १७
५०	१०० । २०	१ । २३	५०	३ । ५१ । ३५	४३ । १०
६०	११३ । १८	१। ४	६०	४ । २१ । ४०	३४ । ०
७०	१२२ । ५०	० । ४५	७०	४ । ४३ । ५२	२३ । ३५
८०	१२८ । ३७	० । २३	८०	४ । ५७ । ११	१२ । ४
९०	१३० । ३९	०। ०	९०	५। २ । १३	०। ०

(१६) दो अवधियोंका फल मालूम होनेपर उनके अन्तः-पाती किसी अन्य अवधिका फल मालूम करना। इष्ट अवधिमेंसे गत अवधिको निकाल, शेषको गत और गम्य अवधियोंके फलान्तरसे गुण, गुणन-फलमें अवध्यन्तरका भाग देवे । जो लब्धि मिले उसे गत

अवधिके फलमें, फलके वर्द्धमान होनेपर जोडनेसे, पर क्षीयमाण होनेपर घटानेसे, इष्ट अवधिका फल निकलता है ।

उदाहरण। चन्द्रकेन्द्रके भुजांश रा. २।२७।६।६=अंशादि ८७।६।६ का मन्द-फल मालूम करना है तो उसमेंसे गत अवधि८० को घटा, शेष ७ । ६ । ६ को ८० और ९० के फलान्तर (अंशादि ५ ।२। १२-अंशादि ४ ।५७। ११)=कलादि ५ । २ से गुण, गुणन-फल कलादि ३५ । ४४ में अवध्यन्तर (९०-८०)=१० का भाग दिया तो लब्धि कलादि ३।३४ मिली । इसे गत अवधि ८० के फल अंशादि ४ । ५७। ११ में, फलके वर्द्धमान होनेके कारण, जोडा तो इष्ट अवधिका फल अंशादि ५ । ० ।४५ हुआ । इसी प्रकार दो अवधियोंके अन्तःपाती किसी भी इष्ट अवधिका इष्ट फल, जैसे शीघ्र-फल, शीघ्र-गति-फल, काल-समीकरण-फल, विषुवांश-फल, क्रान्ति, शर, लम्बन आदि निकाले जाते हैं ।

(१७) सूर्य-चन्द्रकी स्पष्टी-करण-विधि। मध्यम ग्रहमेंसे उसका मन्दोच्च निकाल, मन्द-केन्द्रके भुजांश-परिमित, पूर्वोक्त चक्रसे नियम १६ के अनुसार मन्द-फल और गति-फल लावे । फिर इन दोनों फलोंका संस्कार क्रमशः मध्यमग्रह और उनकी मध्यम-गतिमें करे तो ग्रह और उसकी गति स्पष्ट होती है । फल-संस्कार नियम १३ और १४ के अनुसार होता है ।

(१७ क) सूर्य और उसकी गतिका स्पष्टी-करण। मध्यम सूर्य रा.८।२३।१९। २६ मेंसे उसका मन्दोच्च घटाया तो उसका मन्द-केन्द्र राश्यादि ६ ।४।३६। २१ हुआ । यह ६ राशियोंसे अधिक है; अतः इसमेंसे ६ राशियोंको घटाया तो मन्द-केन्द्रका भुज रा. ०। ४ । ३६। २१ हुआ । नियम (१६) के अनुसार मन्द-फल कलादि १०। ३८ और गति-फल कलादि २ । १५ हुआ । मन्द-केन्द्र तुलादि है; अतः उक्त मन्द-फलको मध्यम सूर्यमें जोडा तो स्पष्ट सूर्य रा. ८। २३ । ३० । ४ हुआ । पुनः मन्द-केन्द्र कर्कादि है; अतः उक्त गति-फलको सूर्यके मध्यम गतिमें जोडा तो उसकी स्पष्ट गति क. ६१ । २३ हुई ।

(१८) चन्द्र और उसकी गतिका स्पष्टी-करण । मध्यम चन्द्र २ । ९ । ४२ । ४८ मेंसे उसका मन्दोच्च घटाया तो उसका मंद केन्द्र रा. ९ । २ । ५३ । ५४ हुआ । यह ९ राशियोंसे अधिक है; अतः इसे १२ राशियोंमेंसे घटाया तो चन्द्र-मन्द-केन्द्रका भुज रा. २ । २७ । ६ । ६=अंशादि ८७ । ६ । ६ हुआ । मन्द-फल अंशादि ५ । ० । ४५ और गतिफल कलादि ३ । ३० हुआ । मन्द-केन्द्र तुलादि है; अतः उक्त मन्द-फलको मध्यम चन्द्रमें जोडा तो स्पष्ट चन्द्र रा. २ । १४ । ४३ । ३४ हुआ । पुनः मन्द केन्द्र मकरादि है; अतः उक्त गति फलको चन्द्रकी मध्यम गतिमेंसे घटाया तो चन्द्रकी स्पष्टगति कलादि ७८७ । ५० हुई ।

(१९) तिथि-साधन । स्पष्ट चन्द्रमेंसे स्पष्ट सूर्यको निकालकर शेषको अंशादि बनालेवे । इस अंशादिमें १२ का भाग देनेसे लब्धि-तुल्य गत तिथि होती है और जो शेष बचे वह वर्त्तमान तिथिका भुक्त भाग होता है । इस भुक्त भागको १२ अंशोंमेंसे घटानेपर वर्त्त-मान तिथिका भोग्य भाग मालूम होता है । इस भोग्य भागको ६० से गुण, उसमें चन्द्र-सूर्यके गत्यन्तरका भाग देनेसे वर्त्तमान तिथिके भोग्य घटीपल निकलते हैं । स्पष्ट चन्द्र रा. २ । १४ । ४३ । ३४ । मेंसे स्पष्ट सूर्य रा. ८ । २३ । ३० । ४ घटाया तो शेष रा. ५ । २१ । १३ । ३०=अंशादि १७१ । १३ । ३० बचा । इसमें १२ का भाग दिया तो लब्धि-तुल्य १४ (चतुर्दशी) गत तिथि हुई । शेष अंशादि ३ । १३ । ३० वर्त्तमान तिथि पूर्णिमाका भुक्त भाग हुआ । इसे १२ अंशोंमेंसे घटाया तो पूर्णिमाका भोग्य भाग अंशादि ८ । ४६ । ३०=विकला ३१५९० हुआ । चन्द्र-गति कलादि ७८७ । ५ मेंसे सूर्य-गति ६१ । २३ घटाया तो गत्यन्तर कलादि ७२५।४२=विकला ४३५४२ हुआ । अब त्रैराशिक किया कि ६० घटियोंमें चन्द्रकी आपेक्षिक गति ४३५४२ विकला है तो कितनी

घटियोंमें उसकी आपेक्षिक गति ३१९९० विकला होगी; अतः $\frac{३१९९० \times ६०}{४३९८२}$=घट्यादि ४३ । ३२ मिले ।

(२०) चान्द्र (दैनिक) नक्षत्र साधन । स्पष्ट चन्द्रको कलादि बना उसमें ८०० का भाग देनेसे लब्धि गत नक्षत्रकी संख्या होगी और शेष वर्त्तमान नक्षत्रका भुक्तभाग होगा। उसे ८०० मेंसे घटानेपर वर्त्तमान नक्षत्रका भोग्य भाग मिलेगा । इस भोग्य भागको ६० से गुण, उसमें चन्द्रगतिका भाग देनेसे वर्त्तमान नक्षत्रके भोग्य घटी-पल निकलते हैं । स्पष्ट चन्द्र रा. २।१४।४३।४४ को कलादि बनाया तो कलादि ४४८३।४४ हुआ । इसमें आठसौका भाग दिया तो लब्धि ५ तुल्य मृगशिरा गत नक्षत्र हुआ और शेष कलादि ४८३। ४४ आर्द्राका भुक्त भाग हुआ । इसको ८००में घटादिया तो शेष कलादि ३१६।१६ आर्द्राका भोग्य भाग आया । इसे ६० से गुण दिया तो १८९७६ गुणन-फल हुआ । इसमें चन्द्रगति ७८७ । ९ का भाग दिया तो आर्द्रा नक्षत्रके भोग्य घटीपल २४। ७ आये ।

(२१) योग-साधन । चन्द्र और सूर्यको जोडकर योगफल-को कलादि बनावे; फिर उसमें ८०० का भाग देनेसे जो लब्धि मिले वह गत योगकी संख्या होगी और शेष वर्त्तमान योगका भुक्त भाग होगा । इस भुक्त भागको ८०० मेंसे घटानेपर वर्त्तमान योगका भोग्य भाग मिलेगा जिसे ६० से गुण उसमें चन्द्र और सूर्यकी गतियोंके योग-फलका भाग देनेसे वर्त्तमान योगके घटी-पल प्राप्त होते हैं । स्पष्ट सूर्य रा. ८ । २३ । ३० । ४ और स्पष्ट चन्द्र रा. २ । १४ । ४३ । ३४ है । दोनोंका योग-फल रा. ११ । ८ । १३ । ३८ = कलादि २०२९३ । ३८ हुआ । इसमें ८०० का भाग दिया तो लब्धि २५ तुल्य गत योग ब्रह्म हुआ । शेष २९३ । ३८ वर्त्तमान ऐन्द्रयोगका भुक्त भाग हुआ । इसे ८००में घटाया तो शेष ५०६ । २२ ऐन्द्रका भोग्य भाग हुआ । इसे ६० से गुण, गुणन-फल

३०३८२ में चन्द्र और सूर्यकी गतियोंके योग ७८७।५+६१।२३= ८४८।२८का भाग दिया तो ऐन्द्र योगके भोग्य घटीपल ३५।४८आये।

योगोंके—नाम क्रमशः ये हैं—१ विष्कंभ। २ प्रीति ।३आयुष्मान्। ४ सौभाग्य। ५ शोभन । ६ अतिगण्ड । ७ सुकर्म्मा। ८ धृति। ९ शूल।१० गण्ड। ११ वृद्धि। १२ ध्रुव।१३ व्याघात। १४ हर्षण। १५ वज्र। १६ सिद्धि। १७ व्यतीपात। १८ वरीयान्। १९ परिघ। २० शिव। २१ सिद्ध । २२ साध्य । २३ शुभ । २४ शुक्ल । २५ ब्रह्म। २६ ऐन्द्र। २७ वैधृति ।

(२२) करण। करण दो प्रकारके होते हैं-(१) स्थिर और (२) चर। (१) स्थिर करणोंके नाम तथा भोग काल क्रमशः ये हैं-शकुनी (कृष्ण १४ का उत्तरार्द्ध) चतुष्पद् (अमावस्याका पूर्वार्द्ध) नाग (अमावस्याका उत्तरार्द्ध) और किंस्तुघ्न (शुक्ल प्रतिपद्का पूर्वार्द्ध)। शेष तिथियों वा तिथ्यर्द्धोंमें जो करण भोग करते हैं उन्हें चर करण कहते हैं । ये सात हैं—१बव। २ बालव । ३ कौलव। ४ तैतिल। ५ गर । ६ वणिज् और ७ भद्रा जिसे विष्टी और कल्याणी भी कहते हैं ।

चर करणोंके निकालनेकी यह रीत्ति है कि शुक्ल पक्षमें गत तिथिको, तथा कृष्ण पक्षमें गत तिथिमें १५ जोड, योगफलको २ से गुण, गुणन-फलमें ७ का भाग देवें। जो शेष बचे वही इष्ट तिथिके पूर्वार्द्धकी करण-संख्या होती है। उसमें १ मिलानेसे इष्ट तिथिके उत्तरार्द्धकी करण-संख्या आती है । जैसे यहाँ शुक्ल १५ के करण मालूम करने हैं तो गत तिथि १४×२=२८ । २८÷७=शेष ०= विष्टि पूर्वार्द्ध—करण और बव उत्तरार्द्ध करण हुए । दूसरा उदाहरण कृष्ण पक्षकी १० का लीजिये। यहाँ ९ में १५ जोडा तो २४ तिथि हुई । २४×२=४८ । ४८ ÷ ७=शेष ६=वणिज् (पूर्वार्द्ध) तथा विष्टी (उत्तरार्द्ध) करण हुए ।

अब इष्ट तिथि शुक्ल १५ (पूर्णिमा) के दोनों करणोंका भोगकाल निकालना बतलाया जाता है। पूर्णिमाका भुक्त भाग अंशादि ३।१३।३० = विकला ११६१० है। भोग्यकाल साधनकी रीति इसे ६० से गुण, गुणन-फल ६९६६०० में चन्द्र-सूर्यके गत्यन्तर विकला ४३५४२ का भाग दिया तो पूर्णिमाका भुक्तकाल घट्यादि १६।० हुआ इसे भोग्य-काल घट्यादि ४३।३२ में जोडा तो सर्व तिथि घट्यादि ५९।३२ हुई। इसका आधा किया तो तिथ्यर्द्ध घट्यादि २९।४६ हुआ। इसमेंसे भुक्तकाल घट्यादि १६।० को निकाल दिया तो शेष घट्यादि १३।४६ विष्टिका भोग्य-काल हुआ। तत्पश्चात् घट्यादि ४३। ३२ (पूर्णिमाकी समाप्ति) तक बवकरण रहा। नियम यह है कि किसी भी तिथिके करण जाननेके लिये उसके आधेमेंसे उसका भुक्त-काल निकाल देनेसे पूर्वार्द्ध-करणका भोग्य-काल मालूम होता है। तत्पश्चात् तिथिकी समाप्तितक उत्तरार्द्ध-करण भोग करता है।

नोट—तिथि, नक्षत्र, योग और करण निकाल चुके। ई. स. १९०० की १ली जनवरीका वार द्वितीय परिच्छेदमें दिये हुए नियमोंके द्वारा निकाला तो सोमवार आया। इस प्रकार पञ्चाङ्ग-साधन पूरा हुआ।

(२३) ऊपर जो तिथ्यादिकोंके भोग्य-काल निकाले गये हैं वे काशीमें ई० स० १९३६ की ८ वीं जनवरीके दिन मध्यम काल (Mean Time) अर्थात् घडीसे ६ बजेके लिये हैं। यदि उन्हें इष्ट अवधिके दिन काशीमें सूर्योदयके लिये निकालना हो तो त्रिप्रश्नाधिकारमें बताये हुए नियमोंके द्वारा उक्त अवधिके सूर्योदयका- स्पष्ट काल (Apparent Time) निकाल, उसमें तात्कालिक काल-समीकरण (Equation Of Time) का संस्कार दे सूर्योदयका मध्यम-काल निकाले। फिर सूर्योदयके इस मध्यम काल और ६ बजेके मिनिटात्मक अन्तरको घटी-पलमें परिणत कर, उसे, यदि ६ बजेके बाद सूर्योदय होता हो तो, तिथ्यादिकोंके उक्त भोग्य घटी-पलमें घटाने, और यदि ६ बजेके

पहले सूर्योदय होता हो तो, उक्त घटी–पलमें जोडनेसे सूर्योदयके भोग्य घटी-पल निकलते हैं । ऐसा करनेसे हमें चन्द्रादि-ग्रहोंको त्रिफल-संस्कृत करनेकी आवश्यकता नहीं पडती और मध्यम अहर्गणसे ही निःशेष काम निकल जाता है । उक्त अवधिके सूर्योदयका स्पष्ट काल घंटादि ६ । ४२।५२ हैं । इसमें काल-समीकरणका तात्कालिक धन संस्कार ६ । २३ (मिनिटादि) जोडा तो सूर्योदयका मध्यम काल घंटादि ६ । ५० । ५ हुआ । फिर सूर्योदयके इस मध्यम काल और ६ बजेके मिनिटादि अन्तर ५० । ५ को घटी-पलमें परिणत किया तो फल घट्यादि २ । ५ । १३ हुआ । सूर्योदय ६ बजेके बाद होता है; अतः उक्त फलको तिथ्यादिकोंके पूर्वानीत भोग्य-कालमें घटाया तो उनके सूर्योदयकालीन भोग्य घटी-पल इस प्रकार हुए–तिथि शुक्ल १५ घ. ४१ । २७; आर्द्रा घ. २२ । २; ऐन्द्रयोग घ. ३३ । ४३; विष्टि घ. ११ । ४१; बव घ. ४१ । २७ ।

(२४) किसी दिये हुए ईसवी सन्‌में सूर्यका अश्विन्यादि नक्षत्रों तथा मेषादि राशियोंमें संक्रमण करनेका महीना और तारीख एवं काशीके सूर्योदय–कालीन भोग्य घटी-पल निकालनेकी रीति । इष्ट ईसवी सन् और १९०० का अन्तर निकाल, उसे २०७ से गुण, गुणन-फलमें ८०० का भाग देवे । जो दिनादि उपलब्ध हों उनमेंसे मध्य-वर्त्ती अधिकाह वर्षोंकी संख्या निकाल देनेसे इष्ट चालन आता है । फिर इस चालनको आगे लिखे संक्रमण-चक्रोंमें दिये हुए नक्षत्रों और राशियोंके क्षेपकोंमें, यदि इष्ट सन् १९०० से अधिक हो तो जोडनेसे और यदि कम हो तो घटानेसे इष्ट सन्‌में सूर्यके नक्षत्रों और राशियोंमें संक्रमण करनेके अङ्गरेजी महीने, तारीख तथा भोग्य घटी पल निकलते हैं ।

---

१ यहां त्रिफल=चरान्तर, भुजान्तर और उदयान्तर फल ।

॥ नक्षत्र-संक्रमण-चक्र ॥

संख्या	नक्षत्र	महीना	तारीख घट्यादि	संख्या	नक्षत्र	महीना	तारीख घट्यादि
१	अश्विनी	एप्रिल	१२ । ३९ । ४	१४	चित्रा	अक्तूबर	९ । ५१ । ४२
२	भरणी	"	२६ । २० । १४	१५	स्वाती	"	२३ । १५ । ३१
३	कृत्तिका	मई	१० । ८ । १०	१६	विशाखा	नवंबर	५ । ३२ । ४९
४	रोहिणी	"	२४ । २ । १	१७	अनुराधा	"	१८ । ४४ । ४८
५	मृगशिरा	जून	७ । ० । ४६	१८	ज्येष्ठा	दिसंबर	१ । ५२ । २
६	आर्द्रा	"	२१ । ३ । ६	१९	मूल	"	१४ । ५५ । ५३
७	पुनर्वसु	जुलाई	५ । ७ । ९	२०	पूर्वाषाढ़	"	२७ । ५६ । ५७
८	पुष्य	"	१९ । १० । ३५	२१	उत्तराषाढ़	जनवरी	९ । ४३ । २८
९	आश्लेषा	अगस्त	२ । ११ । २०	२२	श्रवण	"	२२ । ४६ । १७
१०	मघा	"	१६ । ७ । ५०	२३	धनिष्ठा	फरवरी	४ । ५१ । ५७
११	पू० फल्गुनी	"	२९ । ५८ । ४१	२४	शतभिषा	"	१८ । १ । ४४
१२	उ० फल्गुनी	सितंबर	१२ । ४३ । २२	२५	पू० भाद्रपद	मार्च	३ । १६ । ३९
१३	हस्त	"	२६ । २१ । ३	२६	उ० भाद्रपद	"	१६ । ३७ । २३
				२७	रेवती	"	३० । ४ । ४५

॥ राशि-संक्रमण-चक्र ॥

राशि	महीना ता० घ० प०
मेष	एप्रिल १२ । ३४ । ४
वृष	मई १३ । ३३ । ५५
मिथु.	जून १४ । ८ । ३६
कर्क	जुलाई १५ । ३४ । ५४
सिंह	अगस्त १६ । ७ । ५०
कन्या	सितंबर १६ । ८ । २७
तुला	अक्टूबर १६ । ३४ । २५
वृश्चि.	नवंबर १५ । २७ । १७
धनु	दिसंबर १४ । ५५ । ५३
मकर	जनवरी १२ । ५९ । ०
कुंभ	फरवरी ११ । २६ । १७
मीन	मार्च १३ । १६ । ३७

नोट—यदि इष्ट ईसवी सन् अधिकाह वर्ष हो तो मार्चादि महीनोंमें नक्षत्रों तथा राशियोंके संक्रमणकी तारीखमेंसे १ घटा देना चाहिये।

उदाहरण। ईसवी सन् १९१६ में नक्षत्रों और राशियोंका संक्रमण काल (महीने, तारीख और भोग्य घटी-पल) निकालना है तो १९१६–१९००=१६ । १६×२०७=३३१२ । ३३१२÷८००= दिनादि ४ । ८ । २४ इसमेंसे मध्य-वर्त्ती अधिकाह वर्षोंकी संख्या

३ (नियम ७) घटाया तो इष्ट चालन दिनादि १ । ८ । २४ आया । इसे उत्तराषाढके क्षेपक जनवरी ९ । ४३ । २८ में जोड़ा तो ईसवी सन् १९१६ में उक्त नक्षत्रका संक्रमण काल जनवरी १० । ५१ । ५२ हुआ । पुष्यके क्षेपक जुलाई १९ । १० । ३५ में उक्त चालन जोडा तो योग-फल २० । १८ । ५९ हुआ । पर इष्ट ईसवी सन् अधिकाह है और पुष्यका संक्रमण-काल जुलाई (मार्चादि) महीनेमें पडता है; अतः उक्त योग-फलमेंसे १ घटा दिया तो ईसवी सन् १९१६ में पुष्यका संक्रमण-काल जुलाई १९ । १८ । ५९ आया । राशि-संक्रमण-काल भी इसी प्रकार निकालिये ।

(२५) इष्ट तारीखकी तिथिसे आगामी अमावस्याकी तारीख निकालना । इष्ट तारीखकी तिथि यदि शुक्ल पक्षकी हो तो उसे, और यदि वह कृष्ण पक्षकी हो तो उसमें १५ जोड योगफलको ३० मेंसे घटा, शेषको इष्ट तारीखमें जोडनेसे आगामी अमावस्याकी तारीख निकलती है । उस तारीखको अमावस्या उपरान्त वा यावत् अवश्य होगी । इष्ट तारीख ८ वीं जनवरी ई० सन् १९३६ की तिथि शुक्ल १५ है । इसे ३० मेंसे घटा, शेष १५ में इष्ट तारीख ८ जोडा तो आगामी अमावस्याकी तारीख २३ जनवरी हुई । औदायिक तिथिके निर्णयार्थ प्राप्त तारीखकी तिथिसाधन कर आवश्यकतावश उक्त तारीखको एकोन वा एकाधिक कर देना चाहिये । नियम (२८) का नोट पढिये ।

(२६) इष्ट तारीखकी तिथिका पक्ष और चान्द्र मास जानना । तिथि यदि १५ से अधिक न हो तो उसे शुक्ल पक्षकी, और यदि वह १५ से अधिक हो तो उसमेंसे १५ घटा शेषको कृष्ण पक्षकी जाननी चाहिये । फिर आगामी अमावस्याकी तारीख नियम (२५)के अनुसार और इस अमावस्याके पूर्वके अन्तिम राशि-संक्रमणकी तारीख नियम (२४) के अनुसार निकाल मेषादि राशियोंके क्रमसे वैशाखादि चान्द्र-मासोंका निर्णय करे । इस प्रकार संक्रान्त राशिके द्वारा इष्ट चान्द्रमासका पता लग जानेपर देखे कि इष्ट तिथि शुक्ल है

वा कृष्ण; यदि वह कृष्ण है, तो उसे इष्ट चान्द्रमासकी और यदि वह शुक्ल है तो उसे गत चान्द्रमासकी समझे । ई० सन् १९३६ की ८ वीं जनवरीकी तिथि १९ है । यह १९ से अधिक नहीं है; अतः यह शुक्ल पक्षकी है । आगामी अमावस्याकी तारीख २३ और मकर-संक्रान्तिकी तारीख १४ जनवरी है । अतः इष्ट चान्द्रमास माघ हुआ । तिथि शुक्ल है अतः वह गत चान्द्रमास पौषकी हुई ।

यदि अमावस्या और संक्रान्तिकी तारीख एकही हो तो, उस दशामें उस तारीखका सूर्य और चन्द्र स्पष्टकर नियम (१९) के द्वारा अमावस्याके भोग्य घटी-पल निकाले । यदि ये घटी-पल संक्रान्तिके घटी-पलसे अधिक,वा कमसे कम उसके तुल्य भी हों तो, वही संक्रान्ति इष्ट संक्रान्ति होगी और उसीका अनुसारी पूर्वोक्त इष्ट चान्द्रमास होगा । यदि संक्रान्तिके घटी-पल अमावास्याके घटी-पलसे अधिक हों तो अमावस्यान्त-कालतक संक्रान्तिके न होनेसे गत-संक्रान्ति-सम्बन्धित चांद्र मास अधिमास होकर दोबार आयगा और इष्ट संक्रान्ति इसकी द्वितीय आवृत्तिके शुक्लपक्षमें पडेगी । ऐसी परिस्थितिके उत्पन्न होनेपर इष्ट तिथि कृष्ण होनेपर द्वितीयावृत्तिके कृष्ण पक्षकी और शुक्ल होनेपर प्रथमावृत्तिके शुक्लपक्षकी समझनी चाहिये । प्रथमावृत्तिका शुक्ल और द्वितीयावृत्तिका कृष्ण, येही दो पक्ष अधिमासके होते हैं । जैसे सम्वत् १९९१ में वृषकी संक्रान्ति ज्येष्ठके अमावस्यान्त-कालतक न हुई, तो गत-संक्रान्ति (मेष)-संबन्धित चान्द्रमास वैशाख अधिमास होकर दो बार आया और वृष-संक्रान्ति द्वितीय वैशाखके शुक्लपक्षमें पड़ी । इस दशामें कोई भी इष्ट तिथि, सम्बन्धित अमावस्याके पूर्वकी होनेके कारण, कृष्ण होनेसे द्वितीय कृष्ण पक्षकी और शुक्ल होनेसे प्रथम शुक्ल पक्षकी होगी ।

(२७) इष्ट तारीखकी सौर तिथि तथा सौर मास जानना। इष्ट तारीखसे पूर्व बीती हुई अन्तिम संक्रान्तिकी तारीख और इष्ट तारीखमें जितने दिनोंका अन्तर हो वही दिन-संख्या सौर तिथि और उक्त अन्तिम संक्रान्तिसे आरंभ होनेवाला ही मास सौर मास होगा ।

उदाहरण। ईसवी सन् १९३६ में ८ वीं जनवरीकी सौर तिथि और सौर मास मालूम करना है तो नियम (२४) के अनुसार अन्तिम संक्रान्ति धनुकी तारीख १५ वीं गत दिसम्बर आई। १५ वीं गत दिसम्बर और ८ वीं जनवरीमें २४ दिनोंका अन्तर है, अतः सौर तिथि २४ और सौरमास धनु अर्थात् पौष हुआ। यहाँ गत दिसंबर-से ई० स० १९३५ का दिसम्बर समझना चाहिये।

(२८) इष्ट तारीखकी तिथिसे अन्तिम पूर्णिमाकी तारीख निकालना। इष्ट तारीखकी तिथि यदि कृष्ण पक्षकी हो तो उसे इष्ट तारीखमेंसे निकाल देनेसे अन्तिम पूर्णिमाकी तारीख मालूम होती है। जैसे ई०स० १९३५ की १६ वीं दिसम्बरकी तिथि पौष-कृष्ण ६ है तो इसे १६ मेंसे निकाल देनेपर मार्गशीर्षकी पूर्णिमाकी तारीख १० वीं दिसंबर हुई। और यदि इष्ट तारीखकी तिथि शुक्ल पक्षकी हो तो उसमें १५ मिला योग फलको इष्ट तारीखमेंसे घटाकर अन्तिम पूर्णिमाकी तारीख मालूम करो। जैसे ई० स० १९३५ में ३० वीं दिसम्बरकी तिथि पौष शुक्ल ५ है तो ५+१५=२०। ३०−२०=१० वीं दिसंबर आई जो पूर्ववत् मार्गशीर्षकी पूर्णिमाकी तारीख है। यदि उक्त योगफल अधिक होनेसे इष्ट तारीखमेंसे नहीं घट सके तो इष्ट तारीखमें गत मासकी दिन-संख्या जोड़, इस योगफलमेंसे उस योगफलको घटाना चाहिये। जैसे ई० स० १९३६ में ८ वीं जनवरीकी तिथि शुक्ल १५ है, तो इसके द्वारा अन्तिम पूर्णि-माकी तारीख निकालनेके लिये १५+१५=३०। ८−३०=३१ (दिसंबरकी दिन-संख्या)+८−३०=३९−३०=९ वीं दिसंबर अन्तिम पूर्णिमाकी तारीख आई।

नोट−नियम (२५) और नियम (२८) स्थूलक्रियाएं हैं। इतना तो अवश्य है कि इनके द्वारा निकाली हुई तारीखोंको आगामी अमावस्या वा अन्तिम पूर्णिमा औदयिक वा अनौदयिक अवश्य होंगी; पर यह निश्चय नहीं हो सकता कि वे क्या होंगी। अतः निश्चयात्मक रूपसे

उनकी औदयिक तारीख जाननेके लिये गणितागत तारीखकी तिथि साधन कर देखना चाहिये कि उक्त तारीखकी अमावस्या वा पूर्णिमा औदयिक है कि नहीं। यदि इष्ट तिथि अनौदयिक होकर दूसरे दिन-तक चलीजाती हो तो उक्त तारीखमें १ जोड़देनेसे औदयिक तारीख मालूम होगी; और यदि तिथि औदयिक भी न हो, और न दूसरे ही दिन तक चली जाती हो तो उस दशामें उक्त तारीखको ज्यों का त्यों छोड देना चाहिये। यदि उक्त तारीखकी तिथि स्पष्ट करनेपर कृष्ण वा शुक्ल प्रतिपद् आती हो तो उक्त तारीखमेंसे १ घटा देना चाहिये।

(२९) **इष्ट क्रिस्तानी तारीखकी फसली तारीख जानना।** इष्ट क्रिस्तानी तारीखसे पूर्वकी अन्तिम पूर्णिमाकी तारीख निकाल, दोनों तारीखोंका अन्तर लेनेसे फसली तारीख मालूम होती है। जैसे ई० स० १९३६में ८ वीं जनवरीकी फसली तारीख निकालनी है तो अन्तिम पूर्णिमाकी तारीख १० वीं दिसंबर१९३५ और ८ वीं जनवरी १९३६ का अन्तर (३१-१०)+८=२९ वीं तारीख फसली हुई।

(३०) **विक्रमीय सम्वत्की उत्पत्ति।** सर्व-साधारणमें यह विक्रमादित्य नामधारी किसी उज्जयिनी-नरेशके किसी महत्त्व-पूर्ण विजयका स्मारक माना जाता है; किन्तु भारतीय इतिहासके अध्ययनसे पता चलता है कि ५७ ई० पू० में, जिस समय विक्रमाब्दकी उत्पत्ति हुई थी, उक्त नामका कोई राजा इस देशमें हुआ ही नहीं। बल्कि जिस विक्रमादित्य महान्की राज-सभाको कालिदासादि नवरत्नोंने सुशोभित किया था, वे जैसा कि निम्न-लिखत कारणोंसे सिद्ध होता है, ईसाकी छठी शताब्दीमें हुए थे—

(क) चीनी परिव्राजक ह्यों साँगने शिलादित्य प्रथमका राजत्व-काल ५८० ई० स० में और विक्रमादित्यको शिलादित्यके ठीक पूर्वमें रखा है। सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक कल्हणने विक्रमादित्यको कुशाण-वंशीय कनिष्कके पश्चात्, जो प्रथम शताब्दीमें सिंहासनपर बैठा था, ३० राजाओंके अन्तरपर रखा है। इन दोनों प्रमाणोंसे विक्रमादित्यका छठी शताब्दीमें होना सिद्ध होता है।

(ख) यह कथा प्रसिद्ध है कि विक्रमादित्यकी सभामें वराह-मिहिरादि नव-रत्न रहते थे। वराहमिहिर ई० स० ५०५ में वर्त्तमान थे। वररुचिने अपना प्राकृत-व्याकरण ५ वीं वा छठी शताब्दीके पहले न बनाया होगा; क्योंकि प्राकृत उस समयके पूर्व साहित्यिक भाषा न थी। कालिदासके लेखोंसे पता चलता है कि वे ५ वीं वा ६ ठी शताब्दीमें अवश्य रहे होंगे, जब पौराणिक हिन्दूधर्मका प्रचार होगया था; क्योंकि कविवर हिन्दू त्रिदेवों, एवं मूर्त्तियों तथा मन्दिरोंको पूज्य दृष्टिसे देखते हैं।

(ग) भारवि, दण्डी, बाणभट्ट, सुबन्धु, भर्तृहरि, भवभूति आदि कविगण जो कालिदासके परकालीन थे और जिनकी शैली कालिदास-की शैलीके साथ बहुत कुछ समानता रखती है, ६ ठी और ८ वीं शताब्दियोंके बीचमें हुए थे। सुबन्धुने विक्रमादित्यको स्वर्ग सिधारे बहुत दिन नहीं बीते, ऐसा लिखा है। इन कवियोंके ग्रन्थावलोकनसे कोई भी नहीं इनमें और कालिदासमें ६०० वर्षोंका अन्तर मान सकता। इस प्रकार कालिदास, वराहमिहिर वररुचि आदि विद्वानोंके लेखोंसे विक्रमादित्यका ६ ठी शताब्दीमें होना प्रमाणित होता है।

यह मालूम हो जानेपर कि विक्रमादित्य ६ ठी शताब्दीमें हुए थे, इसका भी पता लगाना आवश्यक है कि, ये विक्रमादित्य किस राज-वंशके आभूषण थे और इनका लगभग ६०० वर्षोंके पूर्व आरंभ हुए सम्वत्‌के साथ कैसे सम्बन्ध होगया। विन्सेन्ट स्मिथ आदि इतिहास-विशारदोंका कथन है कि गुप्त-वंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त द्विती-यने, जिसने विक्रमादित्यकी उपाधि धारण की थी, और जिसने ई. स. ३८० से ई. स० ४१३ तक राज्य किया था, ई. स. ३९० में उज्जयिनीको जीतकर वहाँपर प्रचलित एक मालवीय संवत्‌को, जो, ई० पू० ५७ में मालव-गणोंके प्रजातंत्र-शासनकी स्थापनाके साथ साथ जारी हुआ था और जिसे संभवतः वहाँके ज्यौतिषियोंने चलाया था, अपने नामके साथ जोड़दिया। और चूँ कि विक्रमादित्यको

'शकारि' भी कहते हैं और उक्त चन्द्रगुप्तने शकोंको पछाड़ाथा यह-'अनुमान बिल्कुल ठीक जचता है कि, हो न हो यह चन्द्रगुप्तही विक्रमादित्य था और इसीकी राज-सभाको नव-रत्नोंने अलङ्कृत किया था। पर इस अनुमानका खण्डन उसका पूर्वोक्त राजत्व-कालही कर देता है जिससे यह विदित होता है कि गुप्त वंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय चौथी शताब्दीके अन्त और पाँचवीं शताब्दीके प्रारम्भमें हुआ था, नकि ६ ठी शताब्दीमें ।

दूसरोंका अनुमान है कि मालव-नरेश यशोधर्मन्‌ने, जिसने भी विक्रमादित्यकी उपाधि धारण की थी, ई० स० ५२८ में हूण-सर्दार मिहिर-कुलको मालवदेशसे मार भगाया और इस प्रकार 'शकारि' उपाधिका भी भागी बनकर अपनी इस विजयके उपलक्षमें पूर्वोक्त मालवीय संवत्‌को अपना नाम देदिया । ध्यान रहे कि भारतके प्राचीन लेखक मध्य एशियाके सभी बर्बरजातियोंको जो घाटियोंके द्वारा भारतमें आई थी 'शक' ही कहा करते थे; अतः यशोधर्मन्‌का 'शकारि' कहलाना कुछ भी अनुचित न था । उसकी विक्रमादित्य और शकारि ये दोनों उपाधियां और ६ ठी शताब्दीमें उसका होना, ये दो अखण्डनीय प्रमाण उसीको विक्रमादित्य सिद्ध करते हैं और बहुमत भी उसीके पक्षमें हैं। इसने सारे उत्तर भारतको अपने अधीन कर लिया था और अपनेको गुप्त-वंशीय सम्राटोंसे भी अधिक प्रताप-शाली मानता था । यह भी अत्यन्त विद्या-रसिक और गुण-ग्राही था ।

(३१) **शकाब्दकी उत्पत्ति ।** पहले लिख आया हूं कि भारतके प्राचीन लेखक मध्य एशियाके सभी बर्बर जातियोंको 'शक' ही कहा करते थे । इन बर्बर जातियोंमें एक जाति यूयेची (Yue-Chi) नामकी थी जिसकी एक शाखा कुशाण जाति थी । इस जातिने भी ईसाकी प्रथम शताब्दीमें पश्चिमोत्तर भारतमें अपना राज्य फैलया था । इस जातिका सबसे अधिक विख्यात राजा कनिष्क हुआ जो ई. स. ७८ में राज-सिंहासनपर बैठा । विद्वानोंका अनुमान है

कि शकाब्दका चलानेवाला यही कनिष्क था जिसने काश्मीर और पश्चिम भारतको जीतकर बौद्ध धर्मका प्रचार किया । इस प्रकार शकाब्द मूलतः बौद्धाब्द था जो बौद्ध भारतमें पहले पहल प्रचलित होकर क्रमशः तिब्बत, बर्मा, जावा, सिंहल प्रभृति बौद्ध देशोंमें भी चल निकला । हिन्दुओंने ६ ठी शताब्दीमें, अपने पुनरुत्थानके समय, इसे अपनाया और साथ-साथ एक कथा भी जोड़दी कि शकाब्द किसी बौद्ध शक राजाके राजत्व कालका स्मारक न होकर किसी हिन्दू-नरेश द्वारा शकोंके हराये जानेका स्मारक है । वराहमिहिरने इस अब्दको ' शक भूपकाल ' वा ' शकेन्द्रकाल ' के नामसे लिखा है जिसका अर्थ उनके भाष्य-कारने ' विक्रमादित्यके द्वारा शकोंके पछाडे जानेका अब्द ' कियाहै । ब्रह्म-गुप्तने इस अब्दको ' शकनृपान्ते ' के नामसे लिखा है जिसका अर्थ उनके भाष्य-कारने ' शकनामधारिणी एक बर्बर-जातिके संहारक विक्रमादित्यके राजत्व कालके पश्चात् ' किया है । किन्तु वर्त्तमान कालमें हमारे पञ्चाङ्गोंमें यह केवल शक नृपतिका ही अब्द करके, नाकि किसी हिन्दू-नरेश द्वारा शकोंका संहार होनेका अब्द करके, लिखा रहता है ।

इस विषयमें नवीन खोज भी हुई है जिसके अनुसार शकाब्दका प्रवर्त्तक कनिष्क नहीं,बलिक उसका पूर्वाधिकारी कैडफाइसेज द्वितीय था जो ई० स० ७८ में राजगद्दीपर बैठा और अपने राज्याभिषेक-का स्मारक-स्वरूप शकाब्द चलाया; कनिष्कका अभ्युदय तो ई. स. १२० में हुआ था । इन दो विरोधी कल्पनाओंकी सङ्गति इस प्रकार लगाई जासकती है कि शकाब्दका प्रवर्त्तक कैडफाइसेज द्वितीय भले ही हो; पर कनिष्कके समयमें इसने खूब जोर पकड लिया था । शका-ब्दको शालिवाहनका भी अब्द कहते हैं । मालूम होता है कि दक्षिणभारत (Deccau) में जो शातवाहन गौतमी राजा हुआ था, संभवतः उसीको लोग भ्रम-वश शालिवाहन कहते हैं और उसीने शकाब्दको अपने नामसे अपने राज्यमें चला-दिया था ।

इस राजाका पूरा नाम गौतमी–पुत्र शातकर्णि था । यह आन्ध्र-जातीय शातवाहन राज–वंशका सर्व-श्रेष्ठ राजा हुआ। इसने ईसाकी द्वितीय शताब्दीमें क्षहरात कहलानेवाले शक सर्दारोंको जड़–मूलसे उखाड़कर अपने वंशका मुख-उज्ज्वल कर दिया। कोई–कोई तो इसे ही शकारि विक्रमादित्य मानते हैं । यदि बात ऐसी है तो वराहमिहिरके भाष्य–कार द्वारा किया हुआ 'शक–भूपाल' वा 'शकेन्द्र–काल' का अर्थ, एवं ब्रह्मगुप्तके भाष्य–कार द्वारा किया हुआ 'शक नृपान्ते' का अर्थ, जिनका उल्लेख पहले हो चुका है, ठीक जचते हैं । और अजब नहीं कि गौतमी–पुत्रने शक–सर्दारोंका उच्छेद कर उनके ऊपर अपनी विजयके स्मारक–स्वरूप शकाब्दको अपने वंशका नाम शातवाहन (शालिवाहन) दे दिया ।

(३२) फसली और बङ्गला सनोंकी उत्पत्ति । ये दोनों सन् वस्तुतः एकही हैं । केवल प्रारम्भ–काल और समाप्ति–कालके भेदसे इनमें भिन्नता दीख पडती है, जो अभी बतलाया जायगा । इन दोनों सनोंका जन्म–दाता सम्राट् अकबर था । अकबर ई. स. १५५६ के प्रारम्भमें गद्दीपर बैठा, जिस समय विक्रम–संवत् १६१२ और मुसल्मानोंका हिजरी सन् ९६३ था । उसकी आज्ञानुसार उक्त संवत्-मेंसे ६४९ घटाकर उसे हिजरी सन्के तुल्य किया गया और उसका नाम फसली (खेतकी फसल काटनेका) सन् रखकर उसका भोग–काल आश्विन कृष्ण प्रतिपद्से लेकर आगामी भाद्रपदकी पूर्णिमातक माना गया । पर बङ्गालमें फसली सन्का प्रारम्भ कुछ महीनोंकी देरके बाद अर्थात् आगामी मेष–संक्रमणके दिनसे माना गया और उसका भोग–काल पूरे एक नाक्षत्रिक सौर-वर्षके तुल्य निर्द्धारित हुआ । यही कारण है कि बङ्गला–सन् फसली सन्से १ वर्ष पीछेसा जान पडता है।

(३३) किसी तारीखकी तिथि जानकर गत अमावस्याकी तारीख जानना। तिथि यदि शुक्ल हो तो उसे, और यदि कृष्ण हो तो उसमें १५ जोडकर योगफलको, उक्त तारीखमेंसे निकाल देना चाहिये । शेष इष्ट अमावस्याकी तारीख होगी ।

उदाहरण–ई. स. १९३६ में १३ वीं एप्रिलकी तिथि कृष्ण ६ है। अतः ६+१५=२१ । १३–२१=३१ (मार्चकी दिन–संख्या)+ १३–२१=४४–२१=२३ वीं मार्च गत (चैत्रकी) अमावस्याकी तारीख हुई ।

(३४) ईसवी सन् जानकर विक्रम–संवत् जानना । इष्ट ईसवी सन्में मेष–संक्रमणकी तारीखकी तिथिके द्वारा अमावस्याकी तारीख निकालो । यह जनवरीकी दृष्टिसे आगामी चैत्रकी अमावस्याकी तारीख होगी । बस, १ ली जनवरीसे लेकर आगामी चैत्रकी अमावस्याकी तारीखतक ईसवी सन्में ५६ और उसके बाद ३१ वीं दिसंबरतक ५७ जोडनेसे संवत् निकलता है । जैसे ई. स. १९३६ में १ ली जनवरीसे लेकर आगामी चैत्रकी अमावस्याकी तारीख २३ वीं मार्च (नियम ३३) तक ५६ जोडा तो विक्रम–संवत् १९९२ आया और उसके बाद ५७ जोडा तो वि. सं. १९९३ आया ।

(३५) ईसवी सन् जानकर शकाब्द जानना । १ ली जनवरीसे लेकर आगामी चैत्रमासकी अमावस्याकी तारीखतक इष्ट ईसवी सन्मेंसे ७९ और तत्पश्चात् ३१ वीं दिसंबरतक ७८ घटानेसे शकाब्द निकलता है । जैसे ई. स. १९३६ मेंसे १ ली जनवरीसे लेकर २३ वीं मार्चतक ७९ घटाया तो शकाब्द १८५७ आया। इसी प्रकार २३ वीं मार्चके बाद उक्त ई. सन्मेंसे ७८ घटाया तो शकाब्द १८५८ आया ।

(३६) ईसवी सन् जानकर फसली सन् जानना । इष्ट ईसवी सन्में कन्या–संक्रमणकी तारीखकी तिथि निकालो । यदि यह तिथि कृष्ण हो तो इसे उक्त संक्रमणकी तारीखमेंसे घटानेसे, और यदि यह तिथि शुक्ल हो तो इसे १५ मेंसे घटाय शेषको उक्त तारीखमें जोडनेसे भाद्रपदकी पूर्णिमाकी तारीख निकलती है । बस, १ ली जनवरीसे लेकर उक्त (आगामी) भाद्रपदकी पूर्णिमाकी तारीखतक इष्ट ईसवी सन्मेंसे ५९३ और उसके बाद ३१ वीं दिसम्बरतक ५९२

घटानेसे फसली सन् निकलता है। जैसे ईसवी सन् १९३५ में कन्या-संक्रमणकी तारीख १७ वीं सितम्बरकी तिथि कृष्ण ५ है। इसे १७ वीं सितम्बरमें घटाया तो १७-५=१२ वीं सितम्बर भाद्रपदकी पूर्णिमाकी तारीख आई। अब १९३५ मेंसे १ जनवरीसे लेकर १२ वीं सितम्बरतक ५९३ और तत्पश्चात् ५९२ घटाया तो क्रमशः १३४२ और १३४३ ये दो फसली सन् निकले।

(३७) ईसवी सन् जानकर बङ्गला सन् जानना। १ ली जनवरीसे लेकर आगामी मेष-संक्रमणकी तारीखतक ईसवी सन्मेंसे ५९४ और तत्पश्चात् ३१ वीं दिसम्बरतक ५९३ घटानेसे बंगला सन् मालूम होता है। जैसे ईसवी सन् १९३५ में मेष-संक्रमणकी तारीख १३ वीं एप्रिल है; अतः १९३५ मेंसे उक्तरीत्यनुसार ५९४ तथा ५९३ घटाये तो क्रमशः १३४१ और १३४२ ये दो बङ्गला सन् आये।

(३८) विक्रम-संवत् और शकाब्दका पारस्परिक परिवर्त्तन। संवत्मेंसे १३५ घटा देनेसे शकाब्द और शकाब्दमें १३५ जोड देनेसे संवत् आता है। जैसे संवत् १९९२−१३५= शकाब्द १८५७ और शकाब्द १८५७+१३५ = संवत् १९९२ ।

(३९) कलियुगाब्द। युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव द्वापर युगकी समाप्तिके दिन गुरु-वारको महाप्रस्थान कर गये और उसके दूसरे दिन अर्थात् शुक्रवारसे कलियुगका प्रारंभ हुआ। कलियुगकी भुक्त वर्ष-संख्या ही कलियुगाब्द कहलाती है। कलियुगाब्द ३०४४ में विक्रम-संवत्की तथा कलियुगाब्द ३१७९ में शकाब्दकी उत्पत्ति हुई। प्रतिवर्ष कलियुगाब्दका आरंभ और समाप्ति संवत् और शकाब्दके आरंभ और समाप्तिके ही साथ होते हैं।

(४०) ईसवी सन् जानकर कलियुगाब्द जानना। १ ली जनवरीसे लेकर आगामी चैत्रकी अमावस्याकी तारीखतक ईसवी सन्में ३१०० और तत्पश्चात् ३१०१ मिलानेसे कलियुगाब्द निकलता है। जैसे ई. स. १९३५ में उक्तरीत्यनुसार ३१०० और ३१०१ मिलानेसे क्रमशः ५०३५ और ५०३६ ये दो कलियुगाब्द आये।

(४१) संसारके प्रसिद्ध ९ अब्दों (Eras) का उत्पत्ति-काल ।

संख्या	अब्द-नाम	उत्पत्ति-काल	संख्या	अब्द-नाम	उत्पत्ति-काल
१	यहूदी-सन्	७अक्तूबर३७६१ई.पू.	५	विक्रमाब्द	२३ फरवरी ५७ ई. पू.
२	कलियुगाब्द	१८फरवरी ३१०२ई.पू.	६	शकाब्द	३ मार्च ७८ ई. स.
३	रोमी सन्	२१ एप्रिल ७५३ ई. पू.	७	आरमेनीसन्	९ जुलाई५५२ई. स.
४	आसुरी (बाबुली) सन्	२६ फरवरी ७४७ई.पू.	८	हिजरी सन्	१६ जुलाई ६२२ई. स.
			९	पारसी सन्	१० जून ६३२ ई. स.

नोट—यहूदियोंका विश्वास है कि संसारकी सृष्टि ई० पू० ३७६० में वासन्त क्रान्तिपातके दिन हुई और उनका सन् ७ वीं अक्टूबर ई. पू० ३७६१ से प्रारंभ हुआ। असुरों (Assyrians) वा बाबुलियों (Babylonians) का सन् उनके साम्राज्यकी स्थापना-कालसे चल पडा । आरमेनी (Armenian) सन् आरमेनिया निवासियोंके यूनानी गिर्जे (Greek Church) से अलग हो जानेके समयसे प्रचलित हुआ। पारसी सन् जो भारतके पारसियोंमें अबतक प्रचलित है, पारसके बादशाह यजदेजर्द तृतीय (Yazdegerd III) के राजगद्दीपर बैठनेके समयसे जारी हुआ । शेष अब्दोंके प्रचालित होनेके अवसर प्रसङ्ग वश पहलेही लिखे जा चुके हैं ।

(४२) संवत्सर। जितने समयमें गुरु अपनी मध्यम गतिसे १ राशिको भोगता है, उतने समयका एक सम्वत्सर (बार्हस्पत्य वा गौरव वर्ष होताहै । ६० सम्वत्सरोंका एक बार्हस्पत्य वा गौरव चक्र होताहै । इनके नाम और क्रम नीचेके चक्रमें दिये गये हैं—

१ प्रभव	१६ चित्रभानु	३१ हेमलम्ब	४६ परिधावी
२ विभव	१७ सुभानु	३२ विलम्ब	४७ प्रमादी
३ शुक्ल	१८ तारण	३३ विकारी	४८ आनंद
४ प्रमोद	१९ पार्थिव	३४ शर्वरी	४९ राक्षस
५ प्रजापति	२० व्यय	३५ प्लव	५० नल
६ अंगिरा	२१ सर्वजित्	३६ शुभकृत्	५१ पिङ्गल
७ श्रीमुख	२२ सर्वधारी	३७ शोभन	५२ कालयुक्त
८ भाव	२३ विरोधी	३८ क्रोधी	५३ सिद्धार्थ
९ युवा	२४ विकृत	३९ विश्वावसु	५४ रौद्र
१० धाता	२५ खर	४० पराभव	५५ दुर्मति
११ ईश्वर	२६ नन्दन	४१ प्लवङ्ग	५६ दुंदुभी
१२ बहुधान्य	२७ विजय	४२ कीलक	५७ रुधिरोद्गारी
१३ प्रमाथी	२८ जय	४३ सौम्य	५८ रक्ताक्ष
१४ विक्रम	२९ मन्मथ	४४ साधारण	५९ क्रोधन
१५ वृष	३० दुर्मुख	४५ विरोधक	६० क्षय

(४३) सम्वत्सरका लाना। इष्ट शकाब्दमेंसे १५१४ को घटा, शेषको ७ से गुण, गुणन-फलमें ६००का भाग देवे। लब्धिको राश्यादि मान, उसके राशि-स्थानमें उक्त शेषाब्दको ३४ के साथ मिला देवे। फिर शेषाब्दमें ११६ मिला, योग-फलमें १० का भाग दे, लब्धिको कलादि मान, पूर्वोक्त राश्यादि फलके कलादिमें जोड देवे। राशि-स्थानकी संख्यामें ६० का भाग देनेसे जो शेष बचे वह गत संवत्सर होगा तथा अंशादि फल वर्त्तमान संवत्सरका भुक्त भाग होगा। इस अंशादिको १२ से गुणनेपर जो दिनादि फल मिले, वह वर्त्तमान सम्वत्सरका मेषार्कसे पूर्व भुक्तकाल होगा। इसकी दिन-संख्यामें ३० का भाग देकर इसे मासादि बना लेवे। फिर इस मासादिको १२ मेंसे घटानेपर वर्त्तमान संवत्सरका भोग्य-काल निकलेगा।

उदाहरण। इष्ट शक १८५७-१५१४=३४३। ३४३×७=२४०१। २४०१÷६००=राश्यादि ४।०।३ इसे ३४+३४३ में मिलाया तो राश्यादि फल ३८१।०।३ हुआ। फिर शेषाब्द ३४३+११६= ४५९। ४५९÷१०=कलादि ४५।५४। अब राश्यादि ३८१।०।

३+ कलादि ४९ । ५४=राश्यादि ३८१ । ० । ४८ । ९४ । ३८१ में ६० का भाग दिया तो शेष २१ तुल्य गत सम्वत्सर सर्वजित् हुआ और अंशादि ० । ४८ । ९४ वर्तमान संवत्सर सर्वधारीका भुक्त-काल हुआ । इसे १२ से गुणनेपर दिनादि फल ९ । ४६ । ४८ वर्त्तमान संवत्सरका भुक्त-काल आया । इस भुक्त-कालको १२ मासोंमेंसे घटाया तो भोग्यकाल मासादि ११ । २० । १३ । १२ । आया ।

उपपत्ति । सूर्य-सिद्धान्तानुसार एक महायुगमें सूर्यके ४३२०००० और गुरुके ३६४२२० भगण होते हैं । सूर्यके एक भगणमें १ सौर वर्ष और गुरुके एक भगणमें १२ गुरु-वर्ष होते हैं जो १२ राशियोंके तुल्य हैं । अतः ४३२०००० सौर वर्ष=३६४२२०×१२ राशियां; अर्थात् १८००० सौर वर्षोंमें गुरुकी १८२११ राशियोंका भोग हो जाता है । अब त्रैराशिक किया कि १८००० सौर वर्षोंमें गुरुकी २११ राशियाँ अधिक होती हैं तो शेषाब्दमें क्या ? उत्तर आया—शेषाब्द$\times\frac{२११}{१८०००}$= शेषाब्द$\times\left(\frac{२१०}{१८०००}+\frac{१}{१८०००}\right)$=शेषाब्द$\times\left(\frac{७}{६००}\text{ राशि }+\frac{१}{१०}\text{ कला}\right)$= $\frac{\text{शेषाब्द}\times ७}{६००}$ रा. + $\frac{\text{शेषाब्द}}{१०}$ क । शकाब्द १९१४ में गुरु-वर्षका क्षेपक था राश्यादि ३४ । ० । ११ । ३६=३४ रा. + $\frac{११६}{१०}$ कला । सबोंमें शेषाब्द मिलाया तो सम्पूर्ण फल हुआ $\frac{\text{शेषाब्द}\times ७}{६००}$ रा. +३४ + $\frac{\text{शेषाब्द}+१६६}{१०}$ क. । फलके अंशादि अवयवको १२ से गुणनेपर दिनादि फल इसलिये आता है कि गुरुकी मध्यम गति कलादि ४ । ५९ (लग भग ५ कला) होनेसे वह एक अंशको १२ दिनोंमें भोगताहै ।

उक्त ग्रन्थानुसार गुरुका भगण-काल दिनादि ४३३२ । १९ । १४ । २१ है अर्थात् गुरु अपनी मध्यम गतिसे १२ राशियोंको इतने दिनादिमें भोग लेता है । इसमें १२ का भाग देनेसे गुरु-वर्षका मान दिनादि ३६१ । १ । ३६ । १२ हुआ ।

(४४) अधिमास-ज्ञान । नाक्षत्रिक सौरवर्षका मान दिनादि ३६५ । १५ । ३१ । ३० और चान्द्र वर्षका मान दिनादि ३५४ । २२ । १ । २४ है; अतः चान्द्र वर्ष की वार्षिक कमी इन दोनोंका अन्तर अर्थात् दिनादि १० । ५३ । ३० । ६ है । अब त्रैराशिक

किया कि १ वर्षमें तो इतने दिनादिकी कमी तो कितने वर्षोंमें पूरे १ चान्द्र मास अर्थात् दिनादि २९ । ३१ । ५० । ७ की कमी ? उत्तर आया वर्षादि २ । ८ । १६ । ४ इतने कालमें १ अधिमासका संभव होताहै । पर यह मध्यम मानसे है । स्पष्ट मानसे उक्त कालमें कमी वेशी हुआ करती है ।

अब यहाँपर उस ज्यौतिषिक परिस्थितिका भी बतला देना जरूरी है, जिसके वश होकर अधिमासकी उपलब्धि होती है । सौर मासोंमें कितने चान्द्रमाससे बडे और कितने छोटे होते हैं । जो सौर मास चान्द्रमाससे बडे होते हैं, उनमें कभी-कभी दो अमावस्यान्त पड जाते हैं; एक सौर मासके आरंभके साथ-साथ वा उसके कुछ ही काल पीछे और दूसरा उस सौर मासकी समाप्तिके पूर्व । अर्थात् पहले अमावस्यान्ततक तो पहली संक्रान्ति हो जाती है, पर दूसरे अमावस्यान्ततक दूसरी संक्रान्ति नहीं होती । इस दशामें एक और चान्द्रमास जोडा जाताहै, जो अधिमास कहलाता है और उसका भी नाम पहली अमावस्यावाले चान्द्रमासके समान ही रखा जाता है । कहनेका तात्पर्य यह कि एक नामके दो चान्द्रमास होते हैं । जैसे विक्रम-संवत् १९९१ में सौर वैशाख (मेष) मासमें दो अमावस्यान्त पडे, एक उसके प्रारंभके कुछ कुछ घटियोंके पश्चात् और दूसरे उसकी समाप्तिके एक दिन पूर्व; अर्थात् पहली अमावस्यातक तो पहली (मेष)-की संक्रान्ति होगई किन्तु दूसरी अमवस्यातक दूसरी (वृष) संक्रान्ति न हुई; अतः एक और चान्द्रमास जोडा जो अधिमास कहलाया और उसका भी नाम पहली अमावस्यावाले चान्द्रमासके ही समान वैशाख ही रखा ।

(४९) अधिमास जाननेकी पहली रीति । विक्रम-संवत्में २४ जोड, योगफलमें अथवा शकाब्दमेंसे १ घटा, शेषमें १६० का भाग देनेपर यदि ४९ । ६८ । ८७ । १०६ । १२५ । ३० शेष बचें तो चैत्र; ७६ । ९५ । ११४ । १३३ । १५२ । ११ शेष बचें तो वैशाख; ४६ । ५७ । ६५ । ८४ । १०३ । १२२ । १४१ । १४९ । ० । ८ ।

१९ । २७ । ३८ शेष बचें तो ज्येष्ठ; ५४ । ७३ । ९२ । १११ । १३० । १५७ । १६ । ३५ शेष बचें तो आषाढ; ४६ । ६२ । ७० । ८१ । ८९ । १०० । १०८ । ११९ । १२७ । १३८ । १४६ । ५ । २४ शेष बचें तो श्रावण; ५१ । १३ । ३२ शेष बचें तो भाद्रपद; ४० । ५९ । ७८ । ९७ । ११६ । १३५ । १४३ । १५४ । २ । २१ शेष बचें तो आश्विन अधिमास जानना । यदि और कुछ शेष बचें तो अधिमास नहीं होता ॥

उदाहरण । संवत् १९९१ में २४ जोड, योगफल २०१५ में १६० का भाग देनेसे शेष ९५ बचा जिससे वैशाख अधिमास आया ।

(४६) अधिमास जाननेकी दूसरी रीति । इष्ट विक्रमाब्द और १९६४ का अन्तर निकाल, उसे ११ से गुण, गुणन-फलमें षोडश-भक्त अन्तरकी लब्धि जोड, योगफलमें ३० का भाग दे, शेष-को ग्रहण करे । यदि इष्ट विक्रमाब्द १९६४ से अधिक हो तो यही शेष स्पष्टांक होगा और यदि कम हो तो उक्त शेषको ३० मेंसे घटा-देनेपर स्पष्टांक निकलेगा । स्पष्टांक यदि १९, २०, २१, २२, २३. २४, २५, २६, २७, २८, २९, ० हो तो इष्ट विक्रमाब्दमें अधिमास अवश्य होगा । स्पष्टांक ० को ३० समझना चाहिये । फिर स्पष्टांकको ३० मेंसे घटा, शेषमें २ का भाग दे, लब्धि तुल्य वैशाखादि अधिमास जानना चाहिये । यदि २ का भाग देनेसे १ शेष बचे, तो लब्धिमें १ और जोड़, योगफल तुल्य वैशाखादि मास गिनना चाहिये । स्पष्टांक ० होनेपर इष्ट विक्रमाब्दके आरंभमें वा गत विक्रमाब्दके अन्तमें चैत्र अधिमास समझना चाहिये ।

उदाहरण । सम्वत् १९९१−१९६४=२७ । २७×११=२९७ । २७÷१६=लब्धि १ । २७+१=२८ । यह ३० से कम है; अतः इसमें ३० का भाग नहीं दिया और यही स्पष्टांक हुआ । अब ३०−२८=२ । २÷२=१ । वैशाखसे गिननेपर वैशाखही अधिमास आया । जहाँ अधिमास सन्दिग्ध मालूम होता हो वहाँपर अमावस्या तथा संबन्धित संक्रान्तिके घटी-पलको स्पष्ट करके निर्णय करना चाहिये ।

नोट–चैत्रसे लेकर आश्विनतक इन सात चान्द्र महीनोंमें ही अधिमास हुआ करता है। कारण कि इनके सौर मास इनसे बड़े होते हैं।

(४७) क्षयमास। जैसे कितने सौर मास चान्द्रमाससे बड़े होते हैं, वैसे ही कितने सौर–मास चान्द्रमाससे छोटे हैं। इस दशामें कभी-कभी ऐसा होता है कि एकही चान्द्रमासमें दो संक्रान्तियां पड़ जाती हैं; एक सम्बन्धित चान्द्रमासके प्रारंभमें और दूसरी उसके अन्तमें। इसका कारण सूर्यकी स्पष्ट–गतिका अधिक तेज हो जाना है, जिससे उसका राशि-भोग अल्पकालमें ही समाप्त हो जाता है । यों तो सभी मासोंमें दो संक्रांतियोंका संभव हो सकता है; किन्तु जबतक सूर्यका मन्दोच्च राश्यादि २।१८ के आसन्न रहेगा, तबतक वृश्चिक आदि तीन राशियोंके वश कार्त्तिक आदि तीन मासोंमेंही दो संक्रान्तियोंके पड़नेकी संभावना मानी गई है। बस, जिस चान्द्र मासमें दो संक्रान्तियां पड़ें, वहीक्षयमास होता है; क्योंकि दो संक्रान्तियोंके कारण उस एक ही चान्द्रमासको दो चान्द्रमास मान लेते हैं और जिस वर्ष क्षय मास होता है उस वर्ष दो अधिमास होते हैं। अधिमासका संभव १४१ वर्षोंपर होताहै; कभी-कभी तो १९ वर्षोंपर ही हो जाता है।

॥ सौरमास-मानचक्र ॥

मास	वैशा.	ज्येष्ठ	आषा.	श्राव.	भाद्र.	आश्वि.	कार्ति.	मार्ग.	पौष	माघ	फाल्गु.	चैत्र
दिनादि मान	३०।५४।५१।३	३१।२७।४१।२	३१।३८।१८।३	३१।२७।५६।२	३१। ०।३७।३	३०।२५।५८।२	२९।५२।५२।३	२९।२८।३६।२	२९।१८।३८।३	२९।२७।१७।२	२९।५०।२०।३	३०।२२।२७।२

योग-फल=दिनादि३६९। १९। ३१। ३०॥

इति श्रीरजनीकान्तशास्त्रिकृतौ ज्योतिर्गणित-कौमुद्यां हिन्दूपञ्चाङ्ग-नामा तृतीयःपरिच्छेदः।

चतुर्थ परिच्छेद ।



पञ्चतारा-स्पष्टीकरण ।

(१) मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनिको पञ्च-तारा कहतेहैं । इनमें मङ्गल, बृहस्पति और शनिको तारा-त्रयी और बुध और शुक्रको तारा-द्वयी कहते हैं । तारा-द्वयीका स्पष्टीकरण तारा-त्रयीके स्पष्टी-करणसे कुछ भिन्न है; अतः उन्हें भिन्न-वर्गमें रखा गया । इस भिन्नताका मूलकारण नियम (२) में बतलाया गया है ।

(२) भौम गुरु और शनि अपनी जिस कक्षाके द्वारा सूर्यकी परिक्रमा करते हैं, उसी कक्षाके द्वारा वे पृथ्वीकी भी परिक्रमा करते हैं अर्थात् सूर्य और पृथ्वी दोनों ही उनकी कक्षाओंके अन्तर्गत हैं । पर बुध और शुक्रकी हालत इनसे भिन्न है । ये जिस कक्षाके द्वारा सूर्यकी प्रदक्षिणा करते हैं, उस कक्षाके द्वारा वे पृथ्वीकी प्रदक्षिणा नहीं करते । सच पूछिये तो पृथ्वीकी प्रदक्षिणाके लिये इनकी अपनी कोई कक्षा है ही नहीं । ये तो मानों सूर्यमें बँधे हैं और सूर्यही इन्हें अपने साथ लिये हुये पृथ्वीके चारों तरफ घुमाया करता है । यही कारण है कि ये सदा सूर्यसे थोड़े अन्तरपर उसके आगे वा पीछे केवल सन्ध्या काल वा प्रातः—कालमें ही दीख पडते हैं । तारा त्रयीकी तरह ये आजतक कभी भी नहीं पूर्व क्षितिजसे लेकर पश्चिम क्षितिजतक आकाशकी यात्रा करते हुए साधारणतः रातको दीख पडे । हाँ अलबत्ता, सूर्य-ग्रहणके समय ग्रासकी अधिकतासे यदि प्रचुर मात्रामें अन्धकार छा जाये और आकाश निर्मल हो तो ये दिनको ही सूर्यके समीप देख पडते हैं, जैसा कि २२ वीं जनवरी ई० स० १८९८ में खग्रास सूर्य ग्रहणके अवसरपर हुआ था । चूँ कि ये सूर्यके साथ ही पृथ्वीकी परिक्रमा करते हैं, अतः सूर्य-कक्षा (क्रान्ति वृत्त) ही इनकी भूकेन्द्रक कक्षा मान ली गई है और मध्यम सूर्य ही मध्यम बुध और मध्यम शुक्र कल्पित

किया गया है और जो वास्तविक मध्यम बुध और मध्यम शुक्र हैं उन्हें क्रमशः बुध-शीघ्रोच्च और शुक्र-शीघ्रोच्चकी संज्ञा दी गई है। मध्यम सूर्यसे इन दोनोंके अन्तरको क्रमशः बुध-केन्द्र और शुक्र-केन्द्र कहते हैं।

(३) ग्रह स्पष्टी करण। वस्तुतः पञ्चतारा ही ग्रह (Planets) हैं; सूर्य तो एक विशाल तारा (Star), चन्द्र पृथ्वीका एक उपग्रह (Satellite) मात्र और राहु किम्वा केतु बिन्दु (Points) मात्र हैं; पर भारतके प्राचीन ज्योतिर्विदोंने इन नवोंको ही ग्रह माना है।

ग्रह किसी निर्दिष्ट क्षणमें अपनी कक्षाके किस स्थानपर हमें दीख पडेगा, उसको गणित-द्वारा मालूम करलेना ही उसका स्पष्टी-करण है। जैसा कि पाठक-गण पूर्वमें देख आये हैं राहु और केतुके स्पष्टी-करणमें हमें एकही क्रिया (मध्यम-स्पष्टी करण) करनी पडी है। मध्यम स्पष्ट ही राहु और केतु स्पष्ट राहु और केतु है। और सूर्य तथा चन्द्रके स्पष्टी-करणमें दो क्रियायें की गई हैं-(१) मध्यम-स्पष्टी करण और (२) मन्द-स्पष्टी करण। सूर्य वा चन्द्र अपनी कक्षाके केन्द्रसे जहाँपर देख-पडे, वह उसका मध्यम स्थान तथा जहाँपर भूकेन्द्रसे देख पडे, वह उसका मन्द स्पष्ट स्थान है। सूर्य और चन्द्र मन्द-स्पष्ट होतेही स्पष्ट हो जाते हैं। पर पञ्च-ताराके स्पष्टीकरणमें हमें तीन क्रियाएं करनी पडती हैं-(१) मध्यम स्पष्टीकरण (२) मन्द स्पष्टीकरण और (३) शीघ्र स्पष्टीकरण। ग्रह स्वकक्षा-केन्द्रसे जहाँपर देख पडे, वह उसका पूर्ववत् मध्यमस्थान, जहाँपर सूर्य-केन्द्रसे देख पडे, वह उसका मन्द-स्पष्ट स्थान और जहाँपर भूकेन्द्रसे देख पडे, वह उसका शीघ्र-स्पष्ट स्थान है। शीघ्र-स्पष्ट होने पर ही भौमादि पञ्च-तारागण स्पष्ट होते हैं। प्राचीन-मतके मन्द-स्पष्ट बुध और शुक्रको उनके चक्र शुद्ध प्रथम शीघ्र केन्द्रमें युत करदेनेसे वे नवीन (पाश्चात्य) मतके मन्द-स्पष्ट हो जाते हैं। कारण कि वास्तविक बुध और शुक्र उनके उच्च ही हैं, जो उनके मन्द-स्पष्ट स्थान (सूर्य)से उनके चक्र शुद्ध प्र. शी. कें के फास-लेपर रहते हैं। पर मं. स्प. तारात्रयी दोनों मतमें एक हैं।

(४) काशीमें १ ली जनवरी ई० स० १९००, सोमवार मध्यम कालसे ६ बजे प्रातःकालमें भौमादि ग्रहोंके निम्न-लिखित क्षेपक सिद्ध हुए–

॥ भौमादि क्षेपक चक्र ॥

ग्रह	भौम	गुरु	शनि	शुक्रकेन्द्र	बुधकेन्द्र
मध्यम स्थान	रा. ९।१।३२।७	रा. ७।५।३६।२	रा. ८।४।६।२०	रा. ९।२६।३७।५	रा. ३।१०।०।२६
मध्यम गति	क. ३१।२६।२८	क. ४।५९।८	क. २।०।२३	क. ३६।५९।२९	क. १८६।२४।९
मन्दोच्च	रा. ४।११।४३।२४	रा. ५।२०।१३।७	रा. ८।८।३४।३८	रा. ९।१७।२५।२४	रा. ७।२३।२५।१०
१ चक्रकी गति	+ क. ११८	–विक. १९	+ क. २।०	–क. २।८	–विक. २९

नोट–सूक्ष्मगणितार्थी मन्दोच्चोंकी चक्रगतिको चक्र संख्यासे गुण, फलोंको उनके क्षेपकोंमें गति चिह्नानुसार धन ऋण कर लेवें । तृतीय परिच्छेदमें नियम ३ का नोट भी पढ़िये ।

(५) जैसे मध्यम ग्रहमेंसे उसका मन्दोच्च निकाल देनेसे उसका मन्द केन्द्र आता है वैसे ही मध्यम ग्रहमेंसे उसका शीघ्रोच्च निकाल देनेसे उसका शीघ्र केन्द्र आता है । चूँ कि तारा-त्रयीका शीघ्रोच्च मध्यम सूर्य है; अतः उनका शीघ्र केन्द्र लानेके लिये उनमेंसे मध्यम सूर्यको घटाना चाहिये। पर ताराद्वयीकी हालत इसके विपरीत है। जो मध्यम सूर्य है वही ताराद्वयीकल्पित किया गया है और स्वयं ताराद्वयी अपना-अपना शीघ्रोच्च माने गये है ; अतः इनका शीघ्र केन्द्र लानेके लिये मध्यम सूर्य (मध्यम ग्रह) मेंसे ताराद्वयी (शीघ्रोच्च)

घटावे । शुक्र और बुधके मन्दोच्च-मान नियम (४) के चक्रमें क्रमशः शु. कें.;बु. कें. के नीचे दिये गये हैं । इन केन्द्रोंकी गति ऋण है । शुक्र शीघ्रोच्चगति ९६ । ८ और बुध शीघ्रोच्च गति २४५ । ३३ है ।

(६) ४०१६ दिनोंमें जो ग्रहोंका मध्यम भोग होता है उसे १२ राशियोंमेंसे घटा देनेपर उनका ध्रुवाङ्क आता है । ध्रुवाङ्क सदा ऋण रहते हैं; अतः प्रत्येक चक्रमें ध्रुवाङ्क तुल्य ग्रह-भोगको घटाया जाता है और चूँ कि ध्रुवाङ्कोंका मान प्रायः अल्प रहता है; अतः गुणन-क्रियामें सरलता रहती है ।

॥ भौमादि-ध्रुवांक-चक्र ॥

ग्रह	भौम	गुरु	शनि	शुक्र-केन्द्र	बुध-केन्द्र
ध्रुवाङ्क	रा. १।२५।३०।३३	रा. ०।२६।१९।५२	रा. ७।१५।४२।६	रा. ११।४।३।०	रा. ४।३।२६।५६
बीज	+१'।२७"	−१'।५२"	−०'।६"	−९'।०"	+०'।४"

नोट—सूक्ष्म गणितार्थी बीज-संस्कृत-ध्रुवांकोंसे काम लेवें; यथा भौम ध्रुवांक=१ । २५ । ३२ । ० ।

(७) भौमादिकोंकी चक्र-गति । यहाँ भी पूर्ववत् चक्र ३ है । तृतीय परिच्छेदमें नियम (८) देखिये । अतः भौमादिकोंके उक्त ध्रुवाङ्कोंको ३ से गुणनेपर भौमकी चक्र-गति रा. ५ । १६ । ३१ । ३९; गुरुकी रा. २ । १८ । ५९ । ३६; शनिकी रा. १० । १७ । ६ । १८; शुक्र-केन्द्रकी रा. ४ । १२ । ९ । ० और बुध-केन्द्रकी रा. ० । १० । २० । ४८ हुई ।

(८) भौमादिकोंकी द्युगण-गति । यहां भी वही द्युगण ११०७ है ।

(क) भौम । द्युगणको १० से गुणकर दो जगह रखना । एक जगह उसमें १९ का भाग देनेसे जो अंशादि लब्धि मिले, उसमेंसे दूसरी जगह ७३ के भाग देनेसे प्राप्त कलादि लब्धिको निकाल देनेसे भौमकी द्युगण-गति आती है । जैसे यहां द्युगण ११०७ है तो ११०७×१०=११०७०।११०७०÷१९=अंशादि५८२।३७।५४। फिर ११०७०÷७३=कलादि [१५१ । ३९ =अंशादि २ । ३१ । ३९ । दोनों लब्धियोंका अन्तर अंशादि ५८०।६।१५=रा. ७ । १० । ६ । १५ है । यही भौमकी द्युगण-गति हुई ।

(ख) गुरु । द्युगणमें १२ का भाग देनेसे जो अंशादि फल मिले, उसमेंसे द्युगणमें ७०के भाग देनेसे प्राप्त कलादि फलको घटा देनेसे गुरुकी द्युगण-गति आती है । द्युगण ११०७÷१२=अंशादि ९२ । १५ । फिर ११०७÷७०=कलादि १५ । ४९ । दोनों लब्धियोंका अन्तर अंशादि ९१ । ५९ । ११=रा. ३ । १ । ५९ । ११=गुरुकी द्युगण-गति ।

(ग) शनि । द्युगणमें ३० का भाग देनेसे जो अंशादि फल मिले, उसमें द्युगणमें १५६ के भाग देनेसे लब्ध कलादि फलको जोड-नेसे शनिकी द्युगण-गति निकलती है । द्युगण ११०७÷३०=अंशादि ३६ । ५४ । फिर ११०७÷१५६=कलादि ७ । ५। दोनोंका योग-फल अंशादि ३७ । १।५=राश्यादि १ । ७।१ । ५=शनिकी द्युगण-गति ।

(घ) शुक्र-केन्द्र । द्युगणको ३ से गुणकर दो जगह रखे । एक जगह उसमें ५ का भाग देनेसे जो अंशादि फल मिले, उसमें दूसरी जगह १८१ के भाग देनेसे प्राप्त अंशादि फलको जोडदेनेसे शुक्र-केन्द्रकी द्युगण-गाति निकलती है । द्युगण ११०७×३ =३३२१ । ३३२१÷५=अंशादि ६६४।१२। फिर ३३२१÷१८१=अंशादि १८। २० । ५३ । दोनोंका योगफल=अं. ६८२ । ३२ । ५३=रा. १० । २२।३२।५३=शुक्र-केन्द्रकी द्युगण-गति ।

(ङ) बुध-केन्द्र। द्युगणको ३ से गुणकर दो जगह रखे। एक जगह उसमें २८ का भाग देनेसे जो अंशादि फल मिले, उसे दूसरी जगह त्रिगुणित द्युगणमें जोडदे। फिर द्युगणमें ३८ का भाग देनेसे जो कलादि फल मिले उसे उक्त योग फलमेंसे निकाल देनेपर बुध-केन्द्रकी द्युगणगति आती है। द्युगण ११०७×३=३३२१। ३३२१÷२८=अंशादि ११८। ३६। २६।। ३३२१+११८।३६।२६=३४३९। ३६। २६। फिर ११०७÷३८=कलादि २९। ८। इसे उक्त योग फलमेंसे घटाया तो अन्तर अंशादि ३४३९। ७। १८=रा. ६। १९। ७।१८=बुध-केन्द्रकी द्युगण-गति।

(९) भौमादिकोंकी अहर्गण-गति। भौमकी द्युगण-गति रा. ७। १०। ६। १९ मेंसे उसकी चक्र-गति रा. ५।१६। ३१। ३९ निकाल देनेसे उसकी अहर्गण-गति रा. १। २३। ३४। ३६ हुई। इसी प्रकार गुरुकी अहर्गण-गति रा. ०। १२। ५९। ३९, शनिकी रा. २। १९। ५४। ४७, शुक्रकेन्द्रकी रा. ६। १०। २३। ५३ और बुध-केन्द्रकी रा. ६। ८। ४६। ३० हुई।

(१०) मध्यम भौमादि। भौमकी अगर्हण-गति रा. १। २३। ३४। २६ को उसके क्षेपक रा. ९। १। ३२। ७ में जोड़ा तो मध्यम भौम रा. १०। २५। ६। ४३ हुआ। इसी प्रकार मध्यम गुरु रा. ७। १८। ३५। ३७; मध्यम शनि रा. १०। २४। १। ७; शुक्र-केन्द्र रा. ३। १६। १३। १२ और बुध-केन्द्र रा. ९। १। १३। ५६ हुआ। ध्यान रहे कि शुक्र-केन्द्र और बुध-केन्द्र, उनके क्षेपकमेंसे उनकी अहर्गण-गतिको घटानेसे बनते हैं, क्योंकि उनकी गति ऋण है। यह तृतीय परिच्छेदके नियम (१२) का अपवाद है।

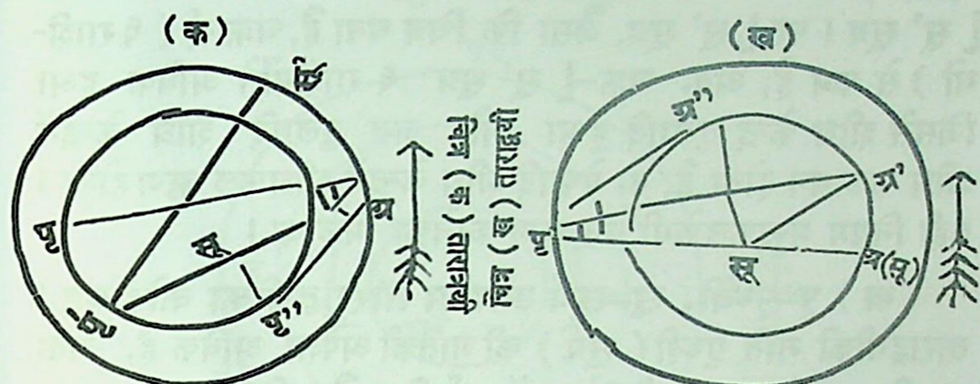
नोट-मध्यमसूर्य पूर्ववत् रा. ८। २३। १९। २६ है।

(११) मन्दोच्च और मन्द फल। तृतीय परिच्छेदके नियम (१३) में सूर्य और चन्द्रके मन्दोच्च और मन्दफल चित्र द्वारा

समझा आये हैं । यदि उस चित्रमें पृथ्वीकी जगह सूर्यकी कल्पना करलें तो वही चित्र पञ्चतारोंके भी मन्दोच्च और मन्दफलका बोधक होगा; क्योंकि पाँचों तारे सूर्यकी परिक्रमा कर रहे हैं और सूर्य ठीक उनके कक्षाकेन्द्रमें स्थित न होकर कुछ अलग हटकर है; अतः यह अवश्य है कि ग्रह-कक्षामें कोई न कोई बिन्दु सूर्यसे दूरतम है, जो उसका मन्दोच्च है । इस दशामें कक्षाकेन्द्र और सूर्यसे एकही कालमें देखे जानेपर भी ग्रह-स्थितिमें अवश्य कुछ अन्तर होगा जो उसका मन्दफल है । यहाँ भी मन्दफल सूर्य-चन्द्रवत् मेषादि मन्दकेन्द्रमें ऋण और तुलादिमें धन होता है ।

(१२) हमलोग भू-वासी हैं;अतः हमलोग ग्रह-स्पष्टीकरण अपनी दृष्टिसे अर्थात् भू-केन्द्रक करते हैं । पहले बतला आये हैं कि सूर्य और चन्द्र मंद-स्पष्ट होते ही स्पष्ट हो जाते हैं । इसका कारण यह है कि वे केवल पृथ्वीकी ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे उनमें केवल एकही संस्कार (मन्दफल) लगता है और चूँ कि उनका यह संस्कार भू-केन्द्रक है, अतः इसके लगते ही उनका भू-केन्द्रक स्पष्टीकरण हो जाता है । पर पाँचों तारे सूर्य और पृथ्वी दोनोंकी ही प्रदक्षिणा करते हैं, जिससे इनमें दो संस्कार करने पड़ते हैं-(१) मन्दफल और (२) शीघ्रफल । और चूँकि इनका मन्दफल संस्कार सूर्य-केन्द्रक हैं जैसा कि नियम (११)में बतला आये हैं-अतः इनकी मन्द-स्पष्ट स्थिति भू-केन्द्रक न होकर केवल सूर्यकेन्द्रक है । इनकी स्थितिको भू-केन्द्रक बनानेके लिये हमें इनकी मन्द स्पष्टस्थितिमें इनका शीघ्रफल नामक भूकेन्द्रक संस्कार करना पड़ता है ।

(१३) आगे (क) और (ख) दो चित्र दिये गये हैं,जिनमेंसे (क) के द्वारा तारा-त्रयीका और (ख) के द्वारा तारा-द्वयीका शीघ्रफल मालूम होगा-



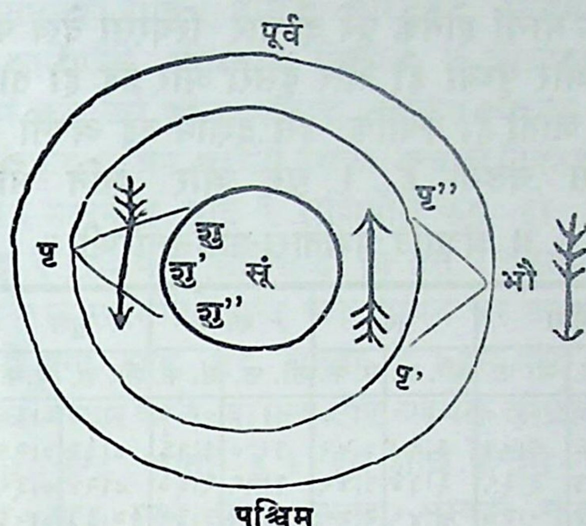
(क) पृ=पृथ्वी, सू=सूर्य और ग्र=तारात्रयीमेंसे कोई ग्रह। पृथ्वी (सूर्य) की गति तारात्रयीकी गतिकी अपेक्षा अधिक है; अतः उसकी आपेक्षिक गातिकी तुलनामें ग्रह स्थिर है। जिस समय पृ. सू. और ग्र. एक सूत्रमें हैं, उस समय शीघ्र फलका अभाव है; अतः ग्रह सूर्यतुल्य है। पर जब पृथ्वी अपनी आपेक्षिक गतिवश पृ' बिन्दुपर पहुँचती है तो सूर्य पृ' सू' की तथा ग्रह पृ' ग्र की दिशामें दीखता है; अर्थात् जब शीघ्र केन्द्रका मान ∟ पृ सू पृ' = ∟ सू' सूग्र है तो शीघ्र फलका मान ∟ सूग्रपृ' है। इतने शीघ्र फलके अनुसार ग्रह अपनी कक्षामें बाणके मुखकी ओर अर्थात् आगे (धन) दीख पडेगा। पृ'' बिन्दु-पर ग्रहका परम शीघ्र फल होगा, जब पृ'' ग्र रेखा भूकक्षाकी स्पर्शरेखा (Tangent) बनेगी। इसके बाद शी. फ. क्रमशः घटते घटते पृ के सू और ग्रके बीच आनेपर शून्य हो जायेगा। पुनः दूसरे चक्रार्द्धमें भी उसका चयापचय इसी प्रकार होगा।

शीघ्र-केन्द्र। सूर्य और ग्रहके अन्तरका नाम शीघ्र केन्द्र है। ऊपर जो कहा गया है कि ∟ सू'सूग्र शीघ्र केन्द्र है वह सूर्यमेंसे ग्रहको घटानेसे उत्पन्न होता है। पर ग्रहकी प्रधानताके कारण जैसे ग्रहमेंसे मन्दोच्चको घटानेसे मन्द केन्द्र आता है, वैसे ही शीघ्र केन्द्र लानेके लिये भी ग्रह-मेंसेही सूर्यको घटाना चाहिये। इस दशामें शीघ्रकेन्द्र=ग्रह−सूर्य=चक्र−

⌊ सू' सूग्र । पर ⌊ सू' सूग्र, जैसा कि चित्र बना है, चक्रार्द्ध (६ राशि-यों) से कम है; अतः चक्र-⌊ सू' सूग्र ६ राशियोंसे अधिक हुआ जिससे शीघ्र केन्द्र तुलादि हुआ और जब तुलादि शीघ्र केन्द्रमें शीघ्र फल धन होता है, तो मेषादि शीघ्र केन्द्रमें शीघ्रफल ऋण होगा। यही नियम मन्दफलकेभी धन ऋण करनेका मिलाथा।

(ख) पृ=पृथ्वी, सू=सूर्य और ग्र तारा द्वयीका कोई ग्रह। ताराद्वयीकी गति पृथ्वी (सूर्य) की गतिकी अपेक्षा अधिक है; अतः उसकी आपेक्षिक गतिकी तुलनामें सूर्य स्थिर है। जिस समय पृ, सू और ग्र एक सूत्रमें हैं उस समय यहाँ भी तारात्रयीकी तरह शीघ्र फलका अभाव है। पर जब ग्रह अपनी आपेक्षिक गति वश सूर्यको पृसूकी सीधमें छोडकर ग्र' बिन्दुपर पहुँचा तो वह पृथ्वीसे पृग्र' की सीधमें दीख पडने लगा; अर्थात् जब शीघ्र केन्द्र सूर्य (ग्रह)-ग्रह (उच्च)=चक्र-ग्र' सूग्र=६ राशियोंसे वेशी=तुलादि है, तो ग्रह अपनी कक्षामें शीघ्र फल ⌊ ग्र' पृ सू के तुल्य बाणकी नोककी ओर (सूर्यके आगे=धन) दीखता है। तारा-द्वयीकेभी संबन्धमें शीघ्र फलके धन ऋण करनेका वही नियम समझना चाहिये जो (क) के अन्तमें बतला आये हैं। ग्र'' बिन्दुपर परमशीघ्रफल होगा और पृग'' रेखा ग्रह-कक्षाकी स्पर्श रेखा बनेगी। इसके बाद शीघ्र फल क्रमशः घटते घटते ग्रके पृ और सूके बीचमें आनेपर शून्य होजायेगा। पुनः दूसरे चक्रार्द्धमें भी उसका इसी प्रकार चयापचय होगा।

(१३) सूर्य, चन्द्र और पञ्चताराओंकी स्वाभाविक गति स्थिर नक्षत्रोंके बीच सदा पश्चिमसे पूर्वकी ओर है। उनकी इस गतिको सीधी गति (Direct Motion) कहते हैं। सूर्य और चन्द्र तो सदा इसी गतिसे चलते हैं; पर पञ्च-ताराओंकी गतिमें कभी-कभी हम भूवासियोंको व्यतिक्रम देख पड़ता है। वे सीधी गतिसे चलते-चलते अकस्मात् स्थिर होजाते हैं और फिर पीछे हटने लगते हैं। उनके इस पीछे हटनेका नाम वक्रगति (Rotrogade Motion) है।



ऊपरके चित्रमें सू=सूर्य; शु, शु', शु''= स्वकक्षापर शुक्रके तीन स्थान; पृ, पृ, पृ,''=स्वकक्षापर पृथिवीके तीन स्थान; भौ=भौम; पृशु, पृशु''=पृथ्वीसे शुक्र-कक्षापर दो स्पर्श रेखायें (Tangents); एवं भौ पृ' भौपृ''=भौमसे भूकक्षापर दो स्पर्श रेखायें हैं। पहले शुक्रको लीजिये। जबतक वह स्व-सम्बन्धित स्पर्श रेखाओंके बाहर रहता है तबतक वह पृ (पृथ्वी) से पश्चिमसे पूर्वकी ओर जाता हुआ (मार्गी) मालूम पडता है। किन्तु जब वह उक्त स्पर्श रेखाओंके भीतर आता है तब वह पृथ्वीकी अपेक्षा तेज चलनेके कारण पृ (पृथ्वी)से पूर्वसे पश्चिमकी ओर जाता हुआ (वक्र) मालूम होता है और एक वार मार्गीसे वक्र होनेकें पूर्व तथा दूसरी वार वक्रसे पुनः मार्गी होनेके पूर्व उक्त रेखाओंके भीतर ही वह दो वार स्थिर-सा जान पडता है। यही हालत बुधकी भी है। अब भौमको लीजिये। जबतक पृथ्वी भौम-सम्बन्धित स्पर्श रेखाओंके बाहर रहती है तबतक भौम पृथ्वीसे पश्चिमसे पूर्वकी ओर जाता (मार्गी) मालूम होता है। पर जब पृथ्वी उक्त स्पर्श रेखाओंके भीतर भ्रमण करती है तब भौम, भूगतिकी आपेक्षिक शीघ्रताके कारण, भूवासियोंको पूर्वसे पश्चिमकी ओर हटता (वक्र) जान पडता है और पृथ्वीके उक्त रेखाओंके भीतर रहते ही भौम भी एक वार मार्गीसे वक्र होनेके पूर्व तथा दूसरी

वार वक्रसे पुनः मार्गी होनेके पूर्व दो वार स्थिरसा देख पडता है। जब सूर्यकी एक ओर पृथ्वी हो और दूसरी ओर ग्रह हो तो ग्रहकी गति अतिचार हो जाती है; क्योंकि इस दशामें वह अपनी और पृथ्वीकी युक्त चालसे चलता है । गुरु और शनि भौमवत् हैं ।

॥ अंशादि पञ्चतारा-फल-सारिणी ॥

केन्द्रांश	भौम		गुरु		शनि		शुक्र		बुध	
	शी. फ.	मं. फ.	शी. फ.	मं. फ.	शी. फ.	मं. फ.	शी. फ.	मं. फ.	शी. फ.	मं. फ.
०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०
१०	३।५६	१।५१	१।३७	०।५२	११ ०	१।१६	४।१२	०।२१	२।४२	०।४७
२०	७।५१	३।३९	३।१४	१।४२	१।५९	२।३०	८।२४	०।३९	५।२१	१।३२
३०	११।४४	५।२०	४।४९	२।२९	२।५२	३।३९	१२।३३	०।५६	७।५७	२।१४
४०	१५।३३	६।५४	६।१८	३।१२	३।४३	४।४२	१६।४१	१।१०	१०।२७	२।५१
५०	१९।१७	८।१८	७।४१	३।४९	४।३०	५।३८	२०।४४	१।२१	१२।४९	३।२३
६०	२२।५६	९।३०	८।५५	४।२०	५।१२	६।२५	२४।४४	१।३१	१५। २	३।५०
७०	२६।२४	१०।२७	९।५४	४।४३	५।४४	७। २	२८।३५	१।४०	१७। २	४। ९
८०	२९।४३	११। ७	१०।४१	४।५९	६। ७	७।२७	३२।१९	१।४४	१८।४५	४।२२
९०	३२।४८	११।२९	११।१६	५। ६	६।२०	७।४०	३५।५२	१।४५	२०। ७	४।२८
१००	३५।३४	११।३२	११।३१	५। ३	६।२२	७।३७	३९। ९	१।४४	२१। ५	४।२५
११०	३७।५२	११।१०	११।२४	४।५२	६।१२	७।२१	४२। ४	१।४०	२१।३१	४।१६
१२०	३९।३३	१०।२९	१०।५१	४।३१	५।४७	६।५१	४४।२७	१।३३	२१।१६	३।५८
१३०	४०।१६	९।२६	९।५४	४। ३	५।१२	६। ९	४६। २	१।२३	२०।१३	३।३३
१४०	३९।३३	८। ३	८।३२	३।२५	४।२५	५।१२	४६।२४	१।१०	१८।१३	३। २
१५०	३६।३१	६।२१	६।४६	२।४१	३।२८	४। ५	४४।१६	०।५६	१५। ६	२।२३
१६०	२९।४४	४।२५	४।४२	१।५१	२।२३	२।४९	३८। ०	०।३८	१०।५५	१।३९
१७०	१७।२९	२।१६	२।२४	०।५७	१।१२	१।२७	२३।५०	०।२०	५।४५	०।५१
१८०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०	०। ०

(१४) **तारा-स्पष्टीकरण**। भौम, गुरु और शनिका शीघ्रोच्च मध्यम सूर्य है और मध्यम सूर्यको ही मध्यम शुक्र और मध्यम बुध कल्पना कर वास्तविक मध्यम शुक्र और वास्तविक मध्यम बुध ही क्रमशः उनके शीघ्रोच्च माने गये हैं। नियम (२) देखिये। मध्यम ग्रहमेंसे शीघ्रोच्चको निकाल देनेसे उसका शीघ्र केन्द्र आता है । शीघ्र केन्द्र यदि ६ राशियोंसे न्यून हो तो उसके द्वारा, पर यदि वह ६ राशियोंसे अधिक हो तो उसे १२ राशियोंमेंसे घटाकर शेषके द्वारा,

मन्द-फल साधनकी रीति (तीसरा परिच्छेद, नियम १६) पूर्वोक्त तारा-फल सारिणीसे शीघ्रफल निकाले। शीघ्रफलार्द्धका संस्कार मध्यम ग्रहमें कर, उसे शीघ्र-फलार्द्ध संस्कृत मध्यम ग्रह बनावे। इस तरह संस्कृत मध्यम ग्रहमेंसे उसका मन्दोच्च निकाल, उसका मन्द केन्द्र बनावे। मन्दकेन्द्र यदि ६ राशियोंसे कम हो तो उसके द्वारा, पर यदि वह ६ राशियोंसे अधिक हो तो उसे १२ राशियोंमेंसे घटाकर शेषके द्वारा उक्त सारिणीसे मन्द फल साधन कर उसका संस्कार मध्य ग्रहमें करनेसे मन्द स्पष्ट ग्रह बनता है। इस मन्द फलका संस्कार पूर्वागत शीघ्र केन्द्रमें करने, वा मन्द स्पष्ट ग्रहमेंसे शीघ्रोच्चको घटा देनेसे द्वितीय शीघ्र केन्द्र आता है। इस शीघ्र केन्द्रसे पुनः शीघ्रफल साधन कर मन्द स्पष्ट ग्रहमें उसका संस्कार करनेसे स्पष्ट ग्रह सिद्ध होता है।

(१५) **इष्ट केन्द्रांशका फलान्तर निकालना।** पूर्वोक्त तारा फल-सारिणीमें दी हुई इष्ट केन्द्रांशसे गत और गम्य अवधियोंके फलान्तरमें १० का भाग देनेसे इष्ट केन्द्रांशका फलान्तर निकलता है और यह इष्ट केन्द्रांशानुसार मन्द वा शीघ्र होता है। जैसे इष्ट शीघ्र केंद्रांश १७३ का फलान्तर मालूम करना है तो गत अवधि १७०का फल अंशादि १७। २९ और गम्य अवधि १८० का फल अंशादि ०।० है। इनके अन्तर अंशादि १७।२९ में १० का भाग दिया तो इष्टकेन्द्रांशका फलान्तर अंशादि १।४५ निकला और चूँ कि इष्ट केन्द्रांश शीघ्र है तो फलान्तर भी शीघ्र हुआ। ध्यान रहे कि फल और फलान्तर दो भिन्न वस्तु हैं। जैसे १७३ अंशोंका फल अंशादि १२।१४ है; पर फलान्तर केवल अंशादि १।४५ है। दोनों अवधियोंके बीच प्रति अंशपर फल जिस क्रम (Rate) से बढ़ता वा घटता है उसका नाम फलान्तर है। यदि इष्ट केन्द्र ६ राशियोंसे अधिक हो तो उसे १२ राशियोंमेंसे घटाकर शेष केन्द्रांशपर फलान्तर लाना चाहिये।

(१६) **गति-फलका निकालना।** अद्यतन (आजके) और श्वस्तन (कलके) स्पष्ट ग्रहोंका अन्तर ही स्पष्ट गति है। पर इस स्पष्ट

ग्रहान्तरमें आज और कलके मध्यम ग्रहोंका अन्तर (जो एक दिनकी मध्यम गति है) और आज कलके ग्रह-फलोंका अन्तर है; और स्पष्ट गतिमें एक दिनकी मध्यम गति-और गति-फल है । अतः दोनों ओरसे एक दिनकी मध्यम गतिको निकाल देनेसे एकादिनोत्पन्न ग्रह-फलान्तर ही, समीकरण (Equation) के नियमानुसार, गतिफलके तुल्य रह जाता है । पर यह फलान्तर ग्रहकी एक दिनकी मध्यम गतिपर निर्भर है और नियम (१९) में जो ग्रह फलान्तर निकाला गया है, वह एक अंश (६० कलाओं) के अधीन है; अतः त्रैराशिक किया कि यदि ६० कलाओंपर इतना फलान्तर है तो गति-कलाओंपर कितना ? उत्तरार्थ फलान्तरसे गति-कलाओंको गुणकर गुणन-फलमें ६० का भाग देना चाहिये । इस प्रकार प्राप्त फल स्वकेन्द्रानुसार मन्द वा शीघ्र गति-फल होता है । शीघ्र गति-फल द्वितीय शीघ्र केन्द्रसे निकालो ।

(१७) गति-स्पष्टीकरण । मन्द गति-फलको, यदि मन्द केन्द्र कर्कादि हो तो, मध्यम गतिमें धन करनेसे और यदि मंद केंद्र मकरादि हो तो उसे मध्यम गतिमें ऋण करनेसे गति मन्द स्पष्ट होती है । फिर ग्रहकी शीघ्रोच्च गतिमेंसे उसकी मन्द स्पष्ट गतिको घटादेनेसे उसकी शीघ्र केन्द्र गति आती है । इस गतिके द्वारा ग्रहका शीघ्र गति-फल साधन कर उसे मन्दस्पष्ट गतिमें सारिणीके अग्रिम कोष्ठकानुसार धन ऋण करनेसे, अर्थात् यदि ग्रह-फल बढ रहा हो तो धन और यदि घट रहा हो तो ऋण करनेसे, गति स्पष्ट होती है । और यदि शीघ्र गति फल अधिक होनेसे मन्द स्पष्ट गतिमें नहीं घट सके तो ऋण-संस्कार विपरीत करे जिससे ग्रहकी वक्र गति आती है ।

नोट—तारा-द्वयीकी शीघ्रोच्च गतिमें उनके मन्द गति फलका विपरीत अर्थात् धनका ऋण और ऋणका धन संस्कार करनेसे उनकी नवीन मतकी मन्द स्पष्टगति आती है जिसमेंसे उनकी मध्यम गति घटादेनेसे उनकी शीघ्र केन्द्र गति मिलती है ।

(१८) भौम स्पष्टीकरण। मध्यम भौम रा. १०।२९।६। ४३मेंसे इसका शीघ्रोच्च (मध्यम सूर्य रा. ८।२३। १९।२६) घटाया तो प्रथम शीघ्र केन्द्र रा.२।१।४७।१७=अंशादि ६१।४७।१७ हुआ। इसका शीघ्र-फल अं. २३। ३३। १२ हुआ जिसका आधा अं.११। ४६। ३६है, शीघ्र केन्द्र मेषादि है; अतः शीघ्र फलार्धको मध्यम भौममेंसे घटाया तो शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत भौम रा. १०। १३। २०। ७ हुआ। इसमेंसे भौमका मन्दोच्च रा. ४। ११। ४३। २४ घटाया तो भौमका मन्द केन्द्र रा. ६। १। ३६। ४३ हुआ। ६ राशियोंसे अधिक होनेके कारण इसे १२ राशियोंमेंसे घटाया तो शेष रा. ५। २८। २३। १७=अं. १७८। २३। १७ आया, जिसका मन्द-फल कलादि २२।० हुआ। मन्द केन्द्र तुलादि है; अतः उक्त मन्द फलको मध्यम भौममें जोड़ा तो मन्द स्पष्ट भौम रा. १०। २५। २८। ४३ हुआ। फिर इस मन्द फलको प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. २। १। ४७। १७ में जोडा तो द्वितीय शीघ्र केन्द्र रा. २। २। ९। १७ हुआ। इसका शीघ्र फल अंशादि २३। ४०। ४९ हुआ। द्वितीय शीघ्र केन्द्र भी मेषादि है; अतः इस शीघ्र फलको मन्द स्पष्ट भौममें घटाया तो स्पष्ट भौम रा. १०। १। ४७। ५४ हुआ।

अब भौमकी गति स्पष्ट करते हैं। शेष मन्द केन्द्रांश १७८ का फलान्तर कलादि १३। ३६ है। इससे भौमकी मध्यम गति कलादि ३१। २६ को गुणकर गुणन-फलमें ६० का भाग दिया तो मन्द गतिफल कलादि ७। ७ आया। मन्द केन्द्र कर्कादि है, अतः इस गति फलको मध्यम गतिमें जोडा तो भौमकी मन्द स्पष्ट गति कलादि ३८। ३३ हुई। द्वितीय शीघ्र केन्द्रका फलान्तर कलादि २०। ४८ है। भौमकी शीघ्रोच्च गति ५९। ८ मेंसे उक्त मन्द स्पष्ट गतिको घटाया तो शीघ्र केन्द्र गति कलादि २०। ३५ हुई। इसको उक्त शीघ्र फलान्तर कलाद २०। ४८ से गुणकर गुणन-फलमें ६० का भाग दिया तो शीघ्र गति फल कलादि ७। ८ आया। अग्रिम कोष्ठकानुसार ग्रहका शीघ्र फल बढ़ रहा है; अतः इस शीघ्र

गति फलको भौमकी उक्त मन्द स्पष्ट गतिमें जोड़ा तो भौमकी स्पष्ट गति कलादि ४९ । ४१ हुई ।

(१९) गुरु-स्पष्टीकरण । मध्यम गुरु रा. ७ । १८ । २५ । ३७ मेंसे उसका शीघ्रोच्च (मध्यम सूर्य) रा. ८ । २३ । १९ । २६ घटाया तो गुरुका प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. १० । २५ । १६ । ११ हुआ । यह तुलादि है । इसे १२ राशियोंमेंसे घटाया तो शेष अंशादि ३४ । ४३ । ४९ हुआ । जिसका शीघ्र फल अं. ५ । ३१ । ६ है । इसके आधे अं. २ । ४५ । ३३ को उक्त मध्यम गुरुमें जोड़ा तो शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत गुरु रा. ७ । २१ । ११ । १० हुआ । इसमेंसे इसका मन्दोच्च रा. ५ । २० । १३ । ७ घटाया तो गुरुका मन्द केन्द्र रा. २ । १ । ८ । ३ हुआ जो मेषादि है । इसके मन्द फल अं. ४ । २२ । ३७ को उक्त मध्यम गुरुमेंसे घटाया तो मन्द स्पष्ट गुरु रा. ७ । १४ । १३ । ० हुआ । फिर इस मन्द फलको पूर्वोक्त प्रथम शीघ्र केन्द्र-मेंसे घटाया तो गुरुका द्वितीय शीघ्र केन्द्र रा. १० । २० । ५३ । ३४ हुआ जो भी तुलादि है । इसको १२ राशियोंमेंसे घटाया तो शेष अं. ३९ । ६ । २६ हुआ जिसका शीघ्र फल अं. ६ । १० । ३ है । इसे मन्द स्पष्ट गुरुमें जोडा तो स्पष्ट गुरु रा. ७ । २० । २३ । ३ हुआ ।

अब गुरुकी गति स्पष्ट करते हैं । मन्दकेन्द्र रा. २ । १ । ८ । ३ के फलान्तर कलादि २ । १८ को गुरुकी मध्यम गति ५ से गुण गुणन-फलमें ६० का भाग देनेसे मध्यम गति फल ११ विकला हुआ । इसे मन्द केन्द्र मकरादि होनेके कारण गुरुकी मध्यम गति क. ४ । ५९ में घटाया तो उसकी मन्द स्पष्ट गति क. ४ । ४८ हुई । इसे शीघ्रोच्चकी गति ५९ । ८ में घटाया तो शीघ्र केन्द्र गति क. ५४ । २० हुई । द्वितीय शीघ्र केन्द्र रा. १० । २० । ५३ । ३४ है । इसके शेषांशके फलान्तर ९ से शीघ्रकेन्द्र गतिको गुणकर गुणन--फलमें ६० का भाग दिया तो शीघ्र गति फल क. ८ । ९ हुआ । अग्रिम कोष्ठकानुसार इसे मन्द स्पष्ट गतिमें जोडा तो गुरुकी स्पष्ट गति कलादि १२ । ५७ हुई ।

(२०) शनि स्पष्टीकरण । मध्यम शनि रा. १० । २४ । १ । ७ ॥ शीघ्रोच्च रा. ८ । २३ । १९ । २६ । प्रथम शीघ्रकेन्द्र रा. २ । ० । ४१ । ४१ ॥ शीघ्र फलार्द्ध अं. २ । ३७ । ७ ॥ शीघ्रफलार्द्ध संस्कृत शनि रा. १० । २१ । २४ । ० ॥ मन्दोच्च रा. ८ । ८ । ३४ । ३८ ॥ मेषादि मन्दकेन्द्र रा. २ । १२ । ४९ । २२ ॥ मन्दफल अं. ७ । ९ । ३ ॥ मन्दस्पष्ट शनि १० । १६ । ५२ । ४ ॥ द्वितीय शीघ्रकेन्द्र रा. १ । २३ । ३२ । ३८ ॥ द्वितीय शीघ्रफल अं. ४ । ४४ । ५३ ॥ स्पष्ट शनि रा. १० । १२ । ७ । ११ ॥

शनि गति-साधन । मन्दफलान्तर क. २ । ३० ॥ मन्द गतिफल विकला ९ ॥ मकरादिगतिकेन्द्र ॥ मन्द स्पष्टगति कलादि १ । ५९ ॥ शीघ्रफलान्तर क. ४ । १२ ॥ शीघ्र-केन्द्र-गति । क. ५७ । १३ ॥ शीघ्र गतिफल कला ४ ॥ स्पष्टगति कलादि ९ । ५५ ॥

(२१) शुक्र स्पष्टीकरण । प्रथम शीघ्रकेन्द्र रा. ३ । १६ । १३ । १२ । शीघ्र-फलार्द्ध अं. २० । २८ । ५६ ऋण । मध्यमशुक्र (सूर्य) रा. ८ । २३ । १९ । २६ ॥ शीघ्रफलार्द्धसंस्कृत शुक्र रा. ८ । २ । ५० । ३० ॥ मन्दोच्च रा. ९ । १७ । २९ । २४ । तुलादि मन्दकेन्द्र रा. १० । १५ । २९ । ६ ॥ चक्रशुद्ध रा. १ । १४ । ३४ । ५४ ॥ मन्द फल अं. १ । १५ । २ धन ॥ मन्दस्पष्टशुक्र रा. ८ । २४ । ३४ । २८ ॥ द्वितीय शीघ्रकेन्द्र रा. ३ । १७ । २८ । १४ ॥ द्वितीय शीघ्रफल अं. ४१ । १९ । ४४=रा. १ । ११ । १९ । ४४ ऋण ॥ स्पष्ट शुक्र रा. ७ । १३ । १४ । ४४ ।

शुक्रगति-साधन । मन्दफलान्तर कलादि १ । ६ ॥ मध्यम गति क. ५९ । ८ ॥ मन्दगतिफल क. १ । ५ ऋण ॥ मन्दस्पष्टगति क. ५८ । ३ ॥ शीघ्रोच्च (शुक्र) गति क. ९६ । ८ ॥ शीघ्रकेन्द्र गति क. ३८ । ५ ॥ शीघ्रफलान्तर क. १७ । ३० ॥ शीघ्रगति फल क. ११ । ८ धन ॥ स्पष्ट गति क. ६९ । ११ ॥

(२२) बुध स्पष्टीकरण । प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. ९ । १ । १३ । ५६ ॥ चक्र शुद्ध रा. २ । २८ । ४६ । ४ ॥ शीघ्रफलार्द्ध अं. ९ । ५८ । २६ ॥ मध्यम बुध (सूर्य) रा. ८ । २३ । १९ । २६ ॥ शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत बुध रा. ९ । ३ । १७ । ५२ ॥ मन्दोच्च रा. ७ । २३ । २५ । १० ॥ मेषादि मन्दकेन्द्र रा. १ । ९ । ५२ । ४२ ॥ मन्दफल अंशादि २ । ५० । ३३ ऋण ॥ मन्दस्पष्ट बुध रा. ८ । २० । २८ । ५३ ॥ द्वितीय शीघ्रकेन्द्र रा. ८ । २८ । २३ । २३ ॥ द्वितीय शीघ्र-फल अं. २० । १६ । २० ॥ स्पष्ट बुध रा. ९ । १० । ४५ । १३ ॥

बुधगति–साधन । मन्दफलान्तर कलादि ३ । ४२ ॥ मध्यम गति क. ५९ । ८ ॥ मन्दगतिफल क. ३ । ३८ ऋण ॥ मन्दस्पष्ट गति क. ५५ । ३० शीघ्रोच्च (बुध) गति क. २४५ । ३३ ॥ शीघ्रकेन्द्रगाति क. १९० । ३ ॥ शीघ्रफलान्तर क. ९ । ४८ ॥ शीघ्र-गतिफल फलादि १८ । २२ ॥ स्पष्ट गाति क. ७३ । ५२ ॥

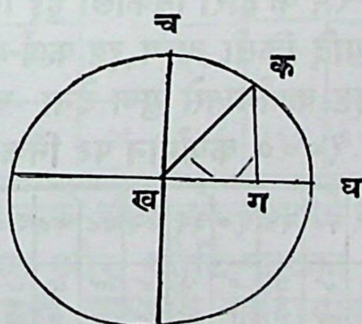
नोट-यहाँतक इस ग्रन्थमें सूर्यादिक ग्रहों तथा उनकी गतियों-का जो स्पष्टी-करण किया गया है उसके लिये मन्द शीघ्र तथा गति-फलोंको सम्बन्धित चक्रोंसे सानुपात निकाला गया है । अब आगे उन फलों-को त्रिकोण-मितिसे निकालनेकी क्रिया बतलाई जाती है ।

(२३) त्रिकोण-मिति (Trigonometry) । गणित-शास्त्रकी उस शाखाका नाम त्रिकोण-मिति है जिसके द्वारा त्रिभुजोंकी भुजाओंके विविध पारस्परिक सम्बन्ध तथा उन सम्बन्धोंसे उनकी भुजाओं और कोणोंके मान मालूम होते हैं ।

(२४) सरल (Plane) और चापीय (Spherical) त्रिभुज । त्रिभुज दो प्रकारके होते हैं–(१) सरल जिनकी भुजाएँ सीधी रेखायें होती हैं और (२) चापीय जिनकी भुजाएँ वृत्तोंके चाप होते हैं ।

(२५) कर्ण, भुज और कोटि । किसी भी समकोण त्रिभुजमें उसके समकोणके सामनेकी भुजा-कर्ण, तथा शेष दो कोणोंमेंसे किसी एकको इष्ट मानकर उसके सामनेकी भुजाको भुज, और तल्लग्नपर कर्ण-भिन्न भुजाको कोटि कहते हैं ।

(२६) त्रैकोणमितिक निष्पत्तियां (Trigonometrical Ratios) । सरल समकोण त्रिभुजमें समकोण-भिन्न किसी भी एक कोणको इष्ट मानकर उसके भुजमें कर्णका भाग देनेसे लब्धि भुजज्या (Sine) कोटिमें कर्णका भाग देनेसे लब्धि कोटिज्या (cosine) और भुजमें कोटिका भाग देनेसे लब्धि स्पर्श-रेखा (Tangent) ये तीन निष्पत्तियां उक्त इष्ट कोणकी आती हैं । यदि विपरीत क्रिया कीजाये अर्थात् उक्त भाज्यों और भाजकोंको क्रमशः भाजक और भाज्य बनाकर भाग दिया जाय तो तीन और निष्पत्तियां निकलती हैं । जो पूर्वानीत तीन निष्पत्तियोंके ठीक उलटी होती हैं । इनके नाम क्रमशः ये हैं—कोटिच्छेदन रेखा (Cosecant), छेदन-रेखा (Secant) और कोटिस्पर्श रेखा (Co-tangent) । इन ६ निष्पत्तियोंके अतिरिक्त एक सातवीं निष्पत्ति भी है जिसका नाम उत्क्रमज्या (Versed Sine) है जिसे कर्ण और कोटिके अन्तरमें कर्णका भाग देकर लाते हैं अर्थात् जो १—कोटिज्याके तुल्य होता है ।



इस चित्रमें कखग एक सरल समकोण त्रिभुज है जिसमें [ग सम

कोण और [ख इष्ट कोण है; अतः कख कर्ण, कग भुज और खग कोटि है। ख केन्द्रपर खक त्रिज्यासे एक वृत्त बनाया और खगको वृत्तस्थ घ बिन्दु तक बढा दिया। अब पूर्वोक्त त्रैकोणमितिक निष्पत्तियां इस प्रकार हुईं—

निष्पत्ति	भु. ज्या	को. ज्या	स्प. रे.	को. छे. रे.	छे. रे.	को. स्प. रे.
मान	$\frac{\text{कग}}{\text{कख}}$	$\frac{\text{खग}}{\text{कख}}$	$\frac{\text{कग}}{\text{खग}}$	$\frac{\text{कख}}{\text{कग}}$	$\frac{\text{कख}}{\text{खग}}$	$\frac{\text{खग}}{\text{कग}}$

नोट—उत्क्रमज्या$=\frac{\text{गघ}}{\text{कख}}=\frac{\text{खघ-खग}}{\text{कख}}=\frac{\text{कख-खग}}{\text{कख}}=\frac{\text{कर्ण-कोटि}}{\text{कर्ण}}=$१—कोटि ज्या।

यदि व्यासार्द्ध खघको स्थिर रखकर कर्ण-रेखा खकको केन्द्र ख पर घडीकी सूईकी प्रतिकूल दिशामें घुमावें तो इष्ट कोण [ख का मान बढेगा और उसके मानकी वृद्धिके साथ-साथ उसकी ज्या, स्पर्श-रेखा और उत्क्रमज्या बढेंगी, पर कोटिज्या घटेगी और उनकी उलटी निष्पत्तियोंकी दशा इससे उलटी होगी अर्थात् कोटिच्छेदन रेखा, और कोटि स्पर्श रेखा घटेंगी, पर छेदन रेखा बढेगी। यदि इष्ट कोणका मान ९० अंशोंसे अधिक हो जाये तो उसका भुज बनाकर ही उसकी पूर्व्वोक्त निष्पत्तियां निकालनी चाहिये॥

(२७) नियम २६ के द्वारा निकाली हुई निष्पत्तियां १ कर्ण-मान पर निकलती हैं। यदि किसी अन्य इष्ट कर्ण-मान पर उन्हें मालूम करनी हों तो उन्हें इष्ट कर्णमानसे गुण देना चाहिये। निम्न-लिखित चक्रकी निष्पत्तियां १००० कर्णमान पर निकाली गई हैं—

भुजांश	६	१२	१८	२४	३०	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२	७८	८४	९०
ज्या	१०४	२०८	३०९	४०७	५००	५८८	६६९	७४३	८०९	८६६	९१४	९५१	९७८	९९५	१०००
स्प. रे.	१०५	२१३	३२५	४४५	५७७	७२७	९००	११११	१३७६	१७३२	२२४६	३०७८	४७०५	९५१४	∞

नोट—स्पर्श रेखा= $\frac{\text{ज्या}}{\text{कोज्या}}$ ×१००० । इस सूत्रका प्रयोग करो तो सूक्ष्म स्प. रे. मिले । ९० अंशोंकी स्पर्श रेखा अनन्त है जिसका चिह्न ∞ है ।

(२८) ऊपर लिखे चक्रसे यदि किसी कोणकी कोटिज्या वा कोटि स्पर्श रेखा निकालनी हो तो उसे ९० अंशोंमेंसे घटाकर शेषांशोंकी ज्या वा स्पर्श-रेखा निकाललेनी चाहिये। शेषांशोंकी ज्या वा स्पर्श रेखा ही इष्टकोणकी कोटिज्या वा कोटिस्पर्श रेखा होगी । जैसे ६ अंशोंकी कोटिज्या ९०-६=८४ अंशोंकी ज्या ९९४ हुई । इसी प्रकार उक्त अंशोंकी कोटिस्पर्श रेखा ९५१२ हुई । नियम ४४ भी देखिये ।

(२९) चापीय त्रिभुजोंकी भुजाएँ चाप होनेके कारण स्वतुल्य अंशोंके कोण स्वसम्बन्धित वृत्त-केन्द्रपर बनाती हैं; अतः उन भुजाओंकी भी पूर्वोक्त सभी निष्पत्तियां होती हैं ।

(३०) मन्दान्त्यफलज्या और शीघ्रान्त्य-फलज्या । ग्रहोंके परम मन्दफलकी ज्याको मन्दान्त्य-फलज्या और उनके परम शीघ्रफलकी ज्याको शीघ्रान्त्य-फलज्या कहते हैं । निम्न-लिखित चक्रसे ग्रहोंके मन्द और शीघ्र दोनों अन्त्य-फल ज्याएँ मालूम होती हैं—

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मन्दां. फ. ज्या	३८	८८	२००	७८	८९	३०	१३३
शीघ्रां. फ. ज्या	×	×	६४६	३६६	१९९	७२४	११०

नोट—सूर्य और चन्द्रको शीघ्रोच्चके अभावसे शीघ्र-फल नहीं होता ।

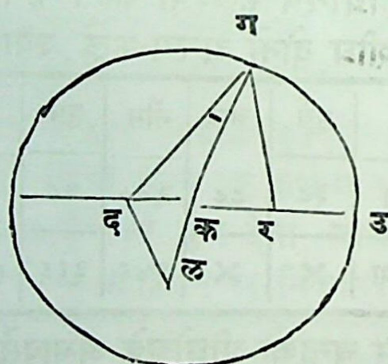
(३१) भुज-फल और कोटि-फलका लाना । ग्रहके मन्द वा शीघ्रकेन्द्रके भुजांशकी ज्या और कोटिज्याको सम्बन्धित अन्त्यफलज्यासे गुणकर गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे क्रमशः भुज-फल और कोटि-फल आते हैं ।

(३२) स्पष्ट कोटि । अन्त्यफलज्याको भुजांशकी कोटिज्यामें, केन्द्र मकरादि हो तो जोडनेसे, और कर्कादि हो तो घटानेसे स्पष्ट कोटि होती है । यदि अं. फ. ज्या को. ज्यासे अधिक हो तो अं. फ. ज्यामेंसे ही को. ज्या घटानी चाहिये ।

(३३) स्पष्ट कर्ण । स्पष्ट कोटिके वर्गमें भुजांश-ज्याके वर्गको जोड़कर योग फलका वर्ग-मूल लेनेसे स्पष्ट कर्ण आता है ।

(३४) ग्रहोंका मन्द वा शीघ्र फल । ग्रहके भुज-फलको १००० से गुणकर गुणन-फलमें स्वसम्बन्धित स्पष्ट कर्णका भाग देनेसे फलकी ज्या आती है; अथवा केवल अन्त्य फल ज्याको भुजज्यासे गुणकर गुणन-फलमें स्पष्ट कर्णसे भाग देनेपरभी फलकी ज्या निकल आती है; दोनों क्रियायें वस्तुतः एक ही हैं यथा—

$\text{फलज्या} = \frac{\text{भुफ} \times १०००}{\text{कर्ण}} = \frac{\text{भुज्या} \times \text{अंफज्या} \times १०००}{१००० \times \text{कर्ण}} = \frac{\text{भुज्या} \times \text{अंफज्या}}{\text{कर्ण}}$ । फलज्या-का धनु (चाप) ही फल है । यदि मन्द क्रिया की गई है तो यह मन्द-फल होगा और यदि शीघ्र क्रिया की गई है तो यह शीघ्र फल होगा । ये सब बातें निम्न लिखित चित्रमें स्पष्ट हैं ।



इस चित्रमें द=द्रष्टाका स्थान; क=कक्षा-केन्द्र; दक=अन्त्यफलज्या; उ=उच्च; उग=मन्द वा शीघ्र केंद्रके भुजांश; ग=ग्रह; गर=भुजज्या; कर=कोटिज्या; रद= स्पष्ट कोटि; दग=स्पष्टकर्ण; दल= बढाये हुए मध्यम

कर्ण ग क पर लम्ब। यह लम्ब मकरादि-केन्द्रमें ग द क त्रिभुजके बाहर गिरेगा, पर कर्कादि केन्द्रमें उसके भीतर। यहां मकरादि केन्द्र है, अतः लम्ब उक्त त्रिभुजके बाहर गिरा है। कोण द ग ल फल है। ज्या ∟ द ग ल $=\frac{\text{द ल}}{\text{द ग}}=\frac{\text{भु फ}}{\text{कर्ण}}$; यह १ कर्ण-मानपर है। इसे १००० कर्ण मानपर करनेके लिये इसे १००० से गुण दिया।

स्पष्टकर्ण द ग को दूसरे प्रकारसे भी लाया जा सकता है। ग ल द सम-कोण त्रिभुजमें द ल=भुज-फल=भुज; ग ल = ग क+क ल= मध्यम कर्ण+कोटिफल=कोटि; यहां मध्यम कर्ण १००० में कोटिफल-को जोडनेसे स्पष्ट कोटि आती हैं। मकरादि-केन्द्रमें इन्हें जोडकर स्पष्ट-कोटि लानी चाहिये। जैसे यहां लाई गई है; पर कर्कादि केन्द्रमें इनका अन्तर लेनेसे स्पष्ट कोटि आती है। अब $\text{दग}^2=\text{दल}^2+\text{गल}^2$ इत्यादि।

(३५) मन्द-केन्द्र-गति। ग्रहोंकी मध्यम गतिमेंसे उनकी मन्दोच्च-गति घटा देनेसे उनकी मन्द-केन्द्र-गति आती है; जैसे चन्द्र-की मध्यम गति अंशादि १३।१०।३५ मेंसे उसकी मन्दोच्च (चन्द्रोच्च) गति कलादि ६।४१ निकाल दिया तो उसकी मन्द केन्द्र-गति अंशादि १३।३।५४ मिली। सूर्यादि शेष ग्रहोंकी मन्दोच्च गति अति ही अल्प होनेसे उनकी मध्यम गति ही उनकी मन्द-केन्द्र-गति मान ली जाती है।

(३६) मन्द-गति-फल। मन्द-केन्द्र-गतिको कोटि-फलसे गुण-कर, गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे मन्द-गति-फल आता है।

(३७) सूर्य-स्पष्टी-करण। मध्यम सूर्य रा. ८।२३।१९।२६॥ मन्दकेन्द्र रा. ६।४।३६।२१।॥ भुजांश अं. ४।३६।२१॥ भुजज्या ८०॥ कोटि ज्या ९९५॥ स्पष्टकोटि ९९५–३८ (अं. फ. ज्या) = ९५७॥ कर्ण $=\sqrt{९५७^2+८०^2}$ =९६०॥ मन्द-फल

ज्या$=\frac{८०\times३८}{९६०}$=३ = कलादि १० । २३ ॥ स्प. सू. रा. ८ । २३ । २९ । ४९ मन्द-गति-फल$\frac{(५९।८)\times३८}{१०००}$ = कलादि २ । १९ ॥ स्पष्ट गति ६१ । २३ । इसी प्रकार चन्द्रको भी स्पष्ट कर लेवे ।

(३८) भौम-स्पष्टी-करण । मध्यम भौम रा. १० । २९ । ६ । ४३ ॥ प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. २ । १ । ४७ । १७ ॥ ज्या ८८० ॥ कोटिज्या ४७२ ॥ स्पष्ट कोटि = ४७२+६४६ (अं. फ. ज्या) = १११८ ॥ प्रथम शीघ्र कर्ण १४२३ ॥ प्रथम शीघ्रफलकी ज्या $=\frac{८८०\times६४६}{१४२३}$ = ३९९ = अं. २३ । ३० । ३७ ॥ इसका आधा अं. ११ । ४५ । १८ ॥ शीघ्र-फलार्द्ध-संस्कृत भौम राश्यादि १० । १३ । २१ । २९ हुआ ।

अब भौमको मन्द-स्पष्ट बनाते हैं । शी. फला. सं. भौम रा. १० । १३। २१ । २९ भौमका मन्दोच्च रा. ४ । ११ । ४३।२४॥ मन्द-केन्द्र रा. ६। १।३८ । १॥ भुजांश अं. १ । ३८ । १॥ ज्या२८॥ कोटिज्या ९९८ स्पष्टकोटि ७९८ ॥ मन्दकर्ण ७९८ मन्दफलज्या ७ ॥ मन्द फल कलादि २४ । १४ ॥ मन्द स्पष्ट भौम रा. १० । २९ । ३० । ५७ हुआ । कोटि-फल$=\frac{२००\times९९८}{१०००}$=१९९$\frac{१}{२}$=प्रायः २०० ॥ गति-फल $\frac{३१'।२६''\times२००}{१०००}$=कलादि६ । ११ ॥ मन्द-स्पष्ट गति कलादि ३७ । ३७ आई ।

अब भौमको शीघ्रस्पष्ट करते हैं । भौमका प्रथम शीघ्रकेन्द्र रा. २ । १ । ४७ । १७ मन्द-फल क. २४ । १४ ॥ द्वितीय शीघ्रकेन्द्र रा. २ । २ । ११ । ३१ ॥ भुजांश ६२ । ११ । ३१ ज्या ८८४ ॥ कोटिज्या ४६६ ॥ स्पष्ट कोटि ४६६+६४६ (अं.फ. ज्या)=१११२॥ द्वितीयशीघ्रकर्ण १४२१ ॥ द्वि. शी. फ. ज्या $=\frac{८८४\times६४६}{१४२१}$=४०२ ॥

द्वि. शी.फ. अंशादि २३ । ४१ । ३८ ॥ इसे मन्दस्पष्ट भौमसे घटा दिया तो शीघ्रस्पष्ट भौम रा. १० । १ । ४९ । १९ आया।

(३९) शीघ्रस्पष्टगतिका लाना। शीघ्रकेन्द्रगतिको शीघ्रफलकी कोटिज्यासे गुणकर गुणन-फलमें शीघ्रकर्णका भाग देनेसे जो लब्धि-प्राप्त हो उसे शीघ्रोच्च गतिमेंसे घटा देनेपर शेष स्पष्ट गति होती है। विपरीत शोधनमें शेष वक्र-गति होती है।

शीघ्रोच्च-गतिमेंसे मन्द स्पष्ट गति निकालदेनेसे शीघ्रकेन्द्र गति आती है; अतः भौमकी शीघ्रोच्च-गति क. ५९ । ८ मेंसे उसकी मन्दस्पष्ट गति क. ३७ । ३७ निकाल दिया तो उसकी शीघ्र केन्द्र गति क. २१ । ३१ मिली। अब गति-फल लानेके लिये द्वि. शी. फलकी कोटिज्या ९१६ निकाली तो (२१'।३१")×९१६÷१४२१= १३' । ५२" ॥ ५९' । ८"–१३' । ५२"=स्पष्टगति ४५' । १६" ॥ अन्य ताराग्रहोंको इसी प्रकार स्पष्ट कर लेवे।

(४०) सूर्यकामन्द-फल लानेकी सरल रीति। मन्दकेन्द्रकी भुजांश-ज्याको ४७ से गुण, गुणन-फलमें ६ का भाग देनेसे विकलात्मक मन्द-फल आता है; जैसे भुजज्या ८०×४७÷६=वि. ६२६=क. १० । २६ ॥

(४१) सूर्यकागति-फल लानेकी सरल रीति। मन्दकेन्द्रकी कोटिज्याको ४ से गुण, गुणन-फलमें २९ का भाग देनेसे विकलात्मक गति-फल आता है; जैसे कोटिज्या ९९५×४÷२९=वि. १३७= क. २ । १७

(४२) चन्द्रका मन्द-फल लानेकी सरल रीति। मन्द-केन्द्रकी भुजांशज्याको १०९ से गुण, गुणन-फलमें ६ का भाग देनेसे विकलात्मक मन्द-फल आता है; जैसे मन्दकेन्द्रके भुजांश अं. ८७। ६ । ६ की ज्या ९९७ है तो मन्द-फल = ९९७×१०९÷६ = वि. १८११२ = अं. ५ । १ । ५२ ॥

(४३) **चन्द्रकागति-फल लानेकी सरल रीति** । मन्द-केन्द्रके भुजांशकी कोटिज्याको २९ से गुण, गुणन-फलमें ६ का भाग देनेसे विकलात्मक गति-फल आता है; जैसे भुजांश अं. ८७ । ६ । ६ की कोटिज्या ५० है तो ५०×२५÷६ = वि. २०८ = कलादि ३ । २८ गति-फल ।

(४४) १००० मेंसे चक्रस्थ कोटिज्याको घटा देनेसे उत्क्रमज्या आती है; इसी प्रकार १००० में उत्क्रज्या और कोटिज्याका भाग दे, लब्धिको १००० से गुण देनेसे क्रमशः को. छे. रे. और छे. रे. आती है। यथा को. छे. रे. ६० = $\frac{१०००×१०००}{८६६}$ = ११५४ ।

(४५) **ग्रहोंकी नक्षत्र-चरणोंमें गति जानना** । राश्यादि ग्रहको कलादिमें परिणतकर उसमें ८०० का भाग देनेसे जो लब्धि मिले वह गत नक्षत्रकी संख्या और शेष वर्त्तमान नक्षत्रका भुक्त भाग होगा। शेषमें २०० का भाग देनेसे लब्धि वर्त्तमान नक्षत्रकी गत-चरण-संख्या और शेष वर्त्तमान चरणका भुक्त भाग होगा । फिर इस अन्तिम शेषको २०० मेंसे घटानेपर वर्त्तमान चरणका भोग्य भाग मालूम होगा । भोग्य-भागमें ग्रह-गतिका भाग देनेसे जो दिनादि लब्धि मिले उसे अवधिकी तारीखमें जोड़नेसे ग्रहका आगामी चर-णमें प्रवेश काल निकलेगा । प्रवेशकालकी तारीख तथा घटी-पलमें तृतीय परिच्छेदके नियम (२३) के अनुसार निकाले हुए घट्यादि फलका संस्कार करनेसे प्रवेश-कालकी औदयिक तारीख और घटीपल मालूम होंग ।

उदाहरण—स्पष्ट भौम राश्यादि १० । १ । ४७ । ५४ = कलादि १८१०७ । ५४ । इसमें ८०० का भाग दिया तो लब्धि २२ (श्रवण) और शेष कलादि ५०७ । ५४ धनिष्ठाका भुक्त-भाग आया । इस शेषमें २०० का भाग दिया तो लब्धि २ (धनिष्ठाकी गत-चरण-संख्या) और शेष-कलादि १०७ । ५४ धनिष्ठाके वर्त्तमान

(तृतीय) चरणका भुक्त भाग आया। इस अन्तिम शेषको २०० मेंसे घटानेपर तृतीय चरणका भोग्य भाग कलादि ९२ । ६ निकला। इस भोग्य भागमें भौम-गति कलादि ४९ । ४१ का भाग देनेसे लब्धि दिनादि २ । ० । ५७ । ४७ हुई। इसे तारीख ८–१–१९३६ पें जोडनेसे भौमका धनिष्ठाके चतुर्थ चरणमें प्रवेश-काल १० वीं जनवरी तथा घट्यादि ०।५७। ४७ हुआ। इसमें फल घट्यादि २ । ९। १३ का संस्कार किया, तो प्रवेशकालकी औदयिक तारीख ९ वीं जनवरी तथा घटी-पलादि ५८ । ५२ । ३४ हुये।

(४६) निम्न लिखित चक्र-द्वयसे यह मालूम होगा कि, भौमादि ग्रह अपने-अपने चक्र-शुद्ध द्वितीय शीघ्रकेन्द्रके कितने अंशोंपर वक्र, मार्गी, उदित और अस्त हुआ करते हैं–

(१) तारा-त्रयी।

ग्रह	वक्रांश	मार्गांश	पश्चिमास्तांश	पूर्वोदयांश
भौम	१६३	१९७	३३२	२८
गुरु	१२५	२३५	३४६	१४
शनि	११३	२४७	३४३	१७

(२) तारा-द्वयी।

ग्रह	वक्र	पश्चिमास्त	पूर्वोदय	मार्ग	पूर्वास्त	पश्चिमोदय
शुक्र	१६५	१७७	१८३	१९५	३३६	२४
बुध	१४५	१५५	२०५	२१५	३१०	५०

नोट– वक्रांश + मार्गांश
पश्चिमास्तांश + पूर्वोदयांश
पूर्वास्तांश + पश्चिमोदयांश } =३६०

(४७) वक्र-शुक्र साधन । अवधि तारीख २८ वीं अगस्त ई. स. १९३९ । चक्र ३ द्युगण ९७४ । मध्यम सूर्य सम मध्यम शुक्र रा. ४ । १२ । १४ । २० शुक्रका प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. ६ । ८ । १२ । २८ । चक्रशुद्ध रा. ५ । २१ । ४६ । ३२ ।=अंशादि १७१ । ४६ । ३२ ॥ शीघ्र फलार्द्ध अं. ९ । ४८ । ३ धन । शीघ्रफलार्द्ध संस्कृत शुक्र रा. ४ । २२ । २ । २३ । मन्दोच्च रा. ९ । १७ । २९ । २४ । मन्दकेन्द्र रा. ७ । ४ । ३६ । ५९ । चक्र-शुद्ध रा. ४ । २९ । २३ । १=अंशादि १४९ । २३ । १ । मन्दफल कलादि ६२ । २८ । मन्द स्पष्ट शुक्र रा. ४ । १३ । १६ । ४८ । द्वितीय शीघ्रकेन्द्र रा. ६ । ९ । १५ । ५६ । चक्रशुद्ध रा. ५ । २० । ४४ । ४=अं. १७० । ४४ । ४ शीघ्रफल अं. २२ । ४ । ५८ । स्पष्ट शुक्र रा. ५ । ५ । २१ । ४६ ।

गति साधन । मन्दफलान्तर क. १ । २४ । मन्द-गतिफल क. १ । २३ धन । मन्द स्पष्ट-गति क. ६० । ३१ । शीघ्रकेन्द्र-गति क. ३९ । ३७ । द्वितीय शीघ्रफलान्तर अं. २ । २३=क. १४३ । शीघ्र गति फल क. ८४ । ५३ । शीघ्रफल घट रहा है; अतः इस शीघ्रगति फलको मन्द स्पष्ट गतिमें घटाना होगा; पर अधिक होनेसे नहीं घट सकता; अतः विपरीत ऋण संस्कार किया तो कलादि २३ । २२ वक्रगति हुई ।

(४८) भौमादि ग्रहोंके वक्रादि होनेका समय निकालना। चक्र-शुद्ध द्वितीय शीघ्रकेन्द्रांश तथा इष्ट ग्रहके नियम (४६) के चक्रोंमें लिखे हुए वक्रादिके अंशोंका अन्तर निकाल उसमें ग्रहकी तात्कालिक शीघ्रकेन्द्र-गतिका भाग देनेसे जो दिनादि लब्धि प्राप्त हो उसे, यदि वक्रादिके अंश अधिक हों तो, अवधिमें जोडनेसे, और यदि वक्रादिके अंश कम हों तो, अवधिमें घटानेसे, ग्रहके वक्रादि होनेका समय ज्ञात होगा जिसमें औदयिक-फल (तृतीय परिच्छेद, नियम २३) का संस्कार करनेसे वक्रादि होनेकी औदयिक तारीख, घटी और पल आवेंगे ।

उदाहरण । नियम (४७) के उदाहरणमें शुक्रका चक्र शुद्ध द्वितीय शीघ्र केन्द्रांश १७० । ४४ । ४ है और शुक्र उक्त केन्द्रके १६५ अंशोंपर वक्र हुआ करता है, तो दोनोंके अन्तर अं. ५ । ४४ । ४=कलादि ३४४ । ४ में उसकी तात्कालिक शीघ्रकेन्द्र-गति कलादि ३९ । ३७ का भाग दिया तो लब्धि दिनादि ९ । ३९ । ३७ हुई । वक्रांश कम हैं; अतः इस लब्धिको अवधि २८ वीं अगस्त, ई. स. १९३९, मेंसे घटाया तो शुक्रके वक्र होने की तारीख १८वीं अगस्त, घटी-पल २० । २३ हुये । इसमें औदयिक फलका संस्कार करनेसे औदयिक तारीख तथा घटी-पल मालूम होंगे । ग्रहके मार्गित्वोदयास्त काल भी इसी प्रकार निकालना चाहिये ।

(४९) वक्रग्रहकी नक्षत्र-चरण-गतिका लाना । नियम (४५) के अनुसार वर्त्तमान नक्षत्रके वर्त्तमान चरणका भोग्य भाग निकाल उसमें ग्रह-गतिका भाग देनेसे जो दिनादि लब्धि प्राप्त हो, उसे अवधिमें घटा देनेसे ग्रहका वर्त्तमान चरणमें प्रवेश-काल मालूम होगा ।

उदाहरण–२८ वीं अगस्त ई. स. १९३९ को वक्र-शुक्र (स्पष्ट) रा. ५ । ५ । २० । ५२=कलादि ९३२१ । ४६ है । इसमें ८०० का भाग देनेसे लब्धि ११ (गत नक्षत्र पूर्वफल्गुनी) और शेष क. ५२१ । ४६ वर्त्तमान नक्षत्र उत्तर फल्गुनीका भुक्त भाग आया । फिर इस शेषमें २०० का भाग देनेसे लब्धि २ (उ. फल्गुनीकी गत चरण संख्या) और शेष क. १२१। ४६ (उ. फल्गुनीके तृतीय चरणका भुक्त भाग) मिला । इस अन्तिमशेषको २०० मेंसे घटानेपर तृतीय चरणका भोग्य भाग कलादि ७८ । १४ आया । इसमें ग्रह गति क. २३ । २२ का भाग देनेसे दिनादि लब्धि ३ । २० । ५३ मिली । इसे अवधि २८ वीं अगस्तमेंसे घटाया तो शुक्रका उ० फल्गुनीके तृतीय चरणमें प्रवेश-काल २४ वीं अगस्त तथा घटी पल ३९ । ७ आये । इनमें औदयिक संस्कारकर इन्हें औदयिक बना लेवे ।

नोट–मार्गीग्रहकी चरण-गति साधनेमें दिनादि लब्धिको अवधिमें जोड़ा जाता है; पर यहाँ विपरीत क्रिया की गई है, अर्थात् लब्धिको अवधिमेंसे घटाया गया है; कारण कि ग्रह अपनी वक्रतावश तृतीय चरणमें अवधिसे पूर्वही प्रवेश कर गया है, और अब द्वितीय चरणमें प्रवेश करने जा रहा है । वस्तुतः वक्र दृष्टिसे तृतीय चरणके भोग्य और भुक्त भाग क्रमशः उसके भुक्त और भोग्य भाग हैं ।

(९०) इस ग्रन्थमें जहाँपर ग्रहानयनार्थ किसी सिद्धान्त-विशेष का अनुसरण नहीं किया गया हो वहाँ इस ग्रन्थके बने ग्रहोंको इसी ग्रन्थके सूर्य-चन्द्र-फल-चक्र और अंशादि-पञ्चतारा-फल-सारिणीके अनुसार बने समझना चाहिये ।

(९१) सूर्यसिद्धान्तानुसार ग्रहानयन । जिन्हें सूर्यसिद्धान्तानुसार ग्रहोंका लाना अभीष्ट हो, वे निम्न-लिखित सूर्य सिद्धान्तीय ग्रह-मन्दोच्चोंको, जो गणित-द्वारा ई० सन् १९०० के प्रारंभ तक निकाले गये हैं, काममें लावें–

ग्रह	सूर्य	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मन्दोच्च	२।१७।१७।२८	४।१०।२।४२	७।१०।२८।२४	५।२१।२२।३०	२।१९।५२।२२	७।२६।३७।३४
चक्रगति	+ १''-३	+ ०''-६७	+ १''-२	+ २''-९	+ १''-८	+ ०''-१३

नोट–इस चक्रमें चन्द्रका मन्दोच्च (चन्द्रोच्च) नहीं दिया गया है; कारण कि उसके गणितागत और वेधोपलब्ध, इन दोनों स्थितियोंमें बहुत अन्तर होनेकी संभावना रहती है; अतः तृतीय परिच्छेदके नियम ३ के चक्रमें दिया हुआ चन्द्रोच्च ही–जो बीज देकर शुद्ध कर लिया गया है, यहाँ भी काममें लाने योग्य है । ग्रहोंके शेष उपादानभी उनके

क्षेपक-चक्रों * से लेने चाहिये। शुक्रके वहाँ और यहाँके मन्दोच्चोंमें भारी आन्तर देख पड़ता है; यह अन्तर रा. ६ । २७ ।३३। २ का है। अतः उदाहरण-स्वरूप शुक्रको ही सूर्य-सिद्धान्तानुसार स्पष्ट किया जाता है। यहाँ भी इस परिच्छेदके नियम २१ की तरह शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत शुक्र रा. ८।२।५०।३० है। इसमेंसे इसका सूर्यसिद्धान्तीय मन्दोच्च रा. २।१९ । ५२। २२ घटाया तो शुक्रका मन्दकेन्द्र रा. ५ । १२ । ५८ । ८ मेषादि और कर्कादि हुआ ॥ मन्दफल क. ३२ । ३९ ऋण । मन्द स्पष्ट शुक्र रा. ८ । २२ । ४६ । ४७ ॥ द्वितीय शीघ्र-केन्द्र रा. २ । १९ । ४० । ३३ मेषादि और कर्कादि ॥ शीघ्रफल रा. १ । १० । ४८ । १९ ऋण ॥ स्पष्ट शुक्र रा. ७ । ११ । ५८ । २८ ॥ गति-साधन ॥ मन्दफलान्तर क. १ । ४८ मन्द-गति-फल क. १ । ४६ धन ॥ मध्यम-गति क. ५९ । ८ ॥ मन्द स्पष्टगति क. ६० । ५४ ॥ शीघ्रोच्चगति क. ९६ । ८ ॥ शीघ्रकेन्द्रगति क. ३५ । १४ ॥ शीघ्र-फलान्तर क. १७ । ३० शीघ्रगतिफल क. १० ।१७ धन ॥ स्पष्ट-गति क. ७१ । ११ ॥

नोट–जिन्हें प्राच्य (भारतीय) मतानुसार सूक्ष्मग्रहानयन अभीष्ट हो, वे इसी नियमके मन्दोच्चोंसे काम लेवें; पर शी. फ., मं. फ. और गति-फल सूक्ष्म त्रिकोण-मितिसे निकालें। इसके लिये वे परि-शिष्टमें दिये प्रत्यंश ज्या और स्प. रे. चक्रोंका उपयोग करें।

(९२) नवीन (पाश्चात्य) रीत्यनुसार ग्रहानयन । पाश्चात्य मतसे ग्रहोंकी निम्न लिखित परममन्द फल ज्यायें होती हैं:–

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
पमंफज्या	३४	१०९	१८६	४०२	९६	१४	११२

नोट–ग्रहोंके शेष उपकरण, जैसे उनके क्षेपक मन्दोच्च आदि,

* जो तृतीय परिच्छेद नियम ३ और चतुर्थ परिच्छेद नियम ४ में दिये गये हैं।

इस ग्रन्थमें लिखे उनके क्षेपक चक्रों * से लेना चाहिये । पाश्चात्य मतमें अन्यग्रहोंके स्पष्टीकरणके पूर्व सूर्यको स्पष्ट करना परमावश्यक है; अतः सर्वप्रथम सूर्यको ही स्पष्ट करते हैं। इस प्रसङ्गमें सूक्ष्मताके लिये त्रैकोणमितिक निष्पत्तियां ग्रन्थके परिशिष्ट भागमें दिये प्रत्यंश ज्या-चक्र और प्रत्यंश स्प. रे. चक्रसे ली गई हैं। इस परिच्छेदके नियम ३३ और ३६ को देखिये। जिन्हें पाश्चात्य (युरोपीय) मतानुसार ग्रहोंको सूक्ष्म स्पष्ट करना अभीष्ट हो, वे इन्हीं (९२–६४) नियमोंका पालन करें ।

(९३) सूर्य-स्पष्टी करण । तृतीय परिच्छेदके नियम १७ क.में लिखा सूर्यका मन्दकेन्द्र रा. ६ । ४ । ३६ । २१ है, जिसका भुज अंशादि ४ । ३६ । २१ है; अतः इसकी ज्या ८०॥ कोटिज्या९९७ ॥ स्पष्टकोटि ९६३ ॥ कर्ण ९६६ ॥ मन्द-फल क. ९ । ५३ धन ॥ मध्यम सूर्य रा. ८। २३ । १९ । २६ ॥ स्पष्ट सूर्य रा. ८ । २३ । २९ । १९ ॥ कोटिफल ३४ ॥ मन्द-गति-फल क. २ । ० ॥ स्पष्टगति क. ६१ । ८॥ चन्द्र और उसकी गतिका स्पष्टी-करण एवं ताराग्रहों और उनकी गतियोंका मन्द स्पष्टी-करण इसी प्रकार करना चाहिये। पर तारात्रयीका मन्दकेन्द्र लानेके लिये उन्हें शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत करनेकी आवश्यकता नहीं है; बल्कि मध्यम ग्रहमेंसे ही उनका मन्दोच्च निकाल कर उनका मन्दकेन्द्र लाना चाहिये । तारा द्वयीका मन्दकेन्द्र लाना नियम ९९ में दिया है ।

(९४) भौम-मन्दस्पष्टीकरण । इस परिच्छेदका नियम १८ देखिये । मध्यम भौम रा. १० । २९ । ६ । ४३ मेंसे उसका मन्दोच्च रा. ४ । ११ । ४३ । २४ निकाल दिया तो उसका मन्दकेन्द्र रा. ६ । १३ । २३ । १९ मिला । जो तुलादि और कर्कादि है । भुजांश अं. १३ । २३ । १९ ॥ ज्या २३२ ॥ कोटिज्या ९७२ ॥ स्प. कोटि ९७२–१८६=७८६ ॥ कर्ण ८१९ ॥ मन्दफल ज्या ५३ ॥

---

* जो ३ परि. नियम ३ और ४ परि. नियम ४ में दिये गये हैं ।

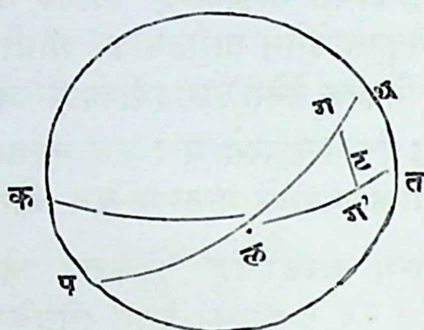
मन्दफल अं. ३ । ३ । २० ॥ धन॥ मन्द स्पष्ट भौम १० । २८ । १० । ३ ॥ मन्द स्पष्ट-गति साधन ॥ कोटिफल १८२ ॥ मन्द-गति-फल क. ९ । ४३ धन ॥ मन्द-स्पष्ट-गति क. ३७ । ९ ॥

(९५) ताराद्वयीका मन्दकेन्द्र लाना । मध्यम सूर्यमेंसे प्रथम शीघ्र केन्द्र निकाल देनेसे ताराद्वयीका शीघ्रोच्च आता है । फिर शीघ्रोच्चमेंसे मन्दोच्च निकाल देनेसे ताराद्वयीका मन्दकेन्द्र मालूम होता है। इस प्रकार लाये हुए मंद केन्द्रपरसे मन्द फल लाकर उसका संस्कार शीघ्रोच्चमें करनेसे पाश्चात्यमतसे मन्दस्पष्ट बुध और शुक्र निकलते हैं ।

(९६) पाश्चात्य मन्दस्पष्ट शुक्रका लाना । मध्यमसूर्य रा. ८ । २३ । १९ । २६ ॥ शुक्रका प्रथम शीघ्रकेन्द्र रा. ३ । १६ । १३ । १२ ॥ शीघ्रोच्च रा. ९ । ७ । ६ । १४ ॥ मंदोच्च रा. ९ । १७ २९ । २४ ॥ मन्द केन्द्र रा. ७ । १९ । ४० । ५० ॥ तुलादि और कर्कादि ॥ भुजांश ४९ । ४० । ५० ॥ ज्या ७६२ ॥ कोटिज्या ६४७ ॥ स्पष्टकोटि ६४७–१४=६३३ ॥ कर्ण ९९० ॥ मन्द फल ज्या ११ ॥ मन्दफल क. ३८ । ५० धन ॥ इसे उक्त शीघ्रोच्चमें जोड़ा तो मन्द स्पष्ट शुक्र रा. ९ । ७ । ४५ । ४ मिला ॥ गति साधन॥ कोटिफल ९ ॥ मन्द गति फल वि. ५२ ॥ शीघ्रोच्चकी मध्यम गति क. ९६ । ८ ॥ मन्द-गति-फल वि. ५२ को जोडा तो मन्दस्पष्ट-गति क. ९७ । ० मिली । इसी प्रकार बुधको भी मन्द स्पष्ट करे ॥

(९७) कक्षा संस्कार । सूर्य-भिन्न मन्द-स्पष्टग्रह शराग्रमें रहनेके कारण अपनी कक्षाके स्पष्ट होते हैं । उन्हें शर-मूलमें लाकर क्रान्तिवृत्तस्थ करनेके लिये उनमें कक्षा–संस्कार करना पडता है । पात-बिन्दुसे शराग्र और शर-मूलकी दूरी सदा एकसी नहीं रहती । उनकी दूरीमें जो विषमता होती रहती है, उसीका नाम कक्षा-संस्कार है । पातस्थ ग्रहमें कक्षा-संस्कार नहीं होता; क्योंकि वहां शराभाव है । पातसे ९० अंशोंकी दूरी पर भी कक्षा-संस्कार नहीं होता; क्यों कि यहाँ शराग्र और शर-मूल पात-बिन्दुसे तुल्य दूरी पर रहते हैं । कक्षा–

संस्कारका उपचय और अपचय पातसे ९० अंशोंके भीतर ही हुआ करता है। उसका परम उपचय ४५ अंश पर होता है।



इस चित्रमें कत=क्रान्ति-वृत्त; पथ=ग्रह-कक्षा; ल=पात-बिन्दु; ग ग'= शर; ग=स्व-कक्षा-स्थ ग्रह; ग' = क्रान्ति-वृत्तस्थ ग्रह; चाप खण्ड लत मेंसे एक खण्ड लट=लगके काटा। बस ग'ट कक्षा-संस्कार हुआ। इसे विषुवांश-फलकी तरह समझना चाहिये। इसकी स्वल्पताके कारण इसका गणित नहीं किया गया। जो सूक्ष्मताके बहुत प्रेमी हों, उन्हें चाहिये कि आगे कही हुई रीतिसे ग्रहका शर-केन्द्र लावें। फिर द्विगुणित शरकेन्द्रकी ज्याको ४०८, ५४, ७७२, २७, १८० और ९७ से गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देकर क्रमशः चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र और शनिका विकलादि कक्षा-संस्कार निकाल लेवें और विषुवांश-फलकी ही तरह इसे सम-विषम पादानुसार मन्द स्पष्ट ग्रहमें क्रमशः धन-ऋण करें। पर यहाँ सपात ग्रहका सम-विषमपाद लेना चाहिये। यह पाश्चात्य प्रथा है।

(५८) मध्यम मन्द-कर्ण। पृथ्वीसे चन्द्र और सूर्यकी, तथा सूर्यसे तारा-ग्रहोंकी दूरीका नाम मन्द-कर्ण है। यह दूरी सदा घटती बढती रहती है। इसके मध्यम मानको मध्यम मन्द-कर्ण कहते हैं।

यदि पृथ्वीसे सूर्यका मध्यम मन्द-कर्ण १०,००० माना जाये तो अन्य ग्रहोंके आपेक्षिक मध्यम मन्द-कर्ण निम्न लिखित चक्रानुसार होंगे—

ग्रह	सूर्य	चन्द्र	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
म. मं. क.	१०,०००	२६	१५२३७	३८७१	५२०२८	७२३३	९५३८८
भौमादि-गति-गुणक (कलात्मक)			४७९	९५०	२६०	६९५	१९१

(५९) वास्तविक मन्द-कर्णका लाना। ग्रहको मन्द-स्पष्ट करते समय जो मन्द-कर्ण आता है, वह त्रिज्योत्पन्न है अर्थात् १००० के कक्षा-व्यासार्द्ध पर उत्पन्न होता है। उसको ग्रहके चक्र-लिखित मध्यम मन्द-कर्णसे गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे ग्रहका वास्तविक मन्द-कर्ण आता है। इस नियमके अनुसार सूर्यका वास्तविक मन्द-कर्ण$=\frac{९६६\times१००००}{१०००}$=९६६०; भौमका$=\frac{८१९\times१५२३७}{१०००}$=१२४७९; शुक्रका$=\frac{९९०\times७२३३}{१०००}$=७१६१।

(६०) कर्ण-संस्कार। नियम ५९ में जो वास्तविक मन्द-कर्ण आये हैं, वे स्वकक्षास्थ ग्रहके हैं; उन्हें क्रान्तिवृत्तस्थ ग्रहके लिये बनानेमें उनमें कर्ण संस्कार करना पडता है, यह सदा ऋण होता है। चन्द्र, बुध और शुक्रके कर्ण-संस्कार प्रायः नहींके तुल्य हैं। भौम, गुरु और शनिके कर्ण-संस्कार लानेके लिये उनके शरकेन्द्रकी ज्याको क्रमशः ८, १३ और ९१ से गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे प्राप्त लब्धिको उनके वास्तविक मन्दकर्णमें घटाना चाहिये। पर स्वल्पान्तरके कारण इसे भी छोड दिया। यह भी पाश्चात्य प्रथा है।

(६१) तारा-त्रयीका शीघ्र स्पष्टीकरण। मन्द स्पष्टतारामेंसे स्पष्ट सूर्यको निकाल देनेसे शीघ्र केन्द्र होता है। शीघ्र केन्द्रके भुजकी

कोटिज्याको सूर्यके वास्तविक कर्णसे गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे वास्तविक कोटिफल मिलता है। इस कोटिफलको ग्रहके वास्तविक मन्द कर्णमें यदि शीघ्र केन्द्र मकरादि हो तो जोडनेसे, पर यदि शीघ्र केन्द्र कर्कादि हो तो घटानेसे पराख्य आता है। फिर शीघ्र केन्द्रके भुजकी ज्याको सूर्यके वास्तविक कर्णसे गुण, गुणन-फलमें पराख्यका भाग देनेसे शीघ्र फलकी स्पर्श-रेखा मिलती है, जिसका धनु शीघ्रफल होता है. जिसे पूर्ववत्‌ही मंद स्पष्ट ग्रहमें धन ऋण जानना चाहिये।

मन्द स्पष्ट भौम रा. १० । २८ । १० । ३ ॥ स्पष्ट सूर्य रा. ८ । २३ । २९ । १९ ॥ शीघ्र केन्द्र रा. २ । ४ । ४० । ४४ मेषादि और कर्कादि ॥ ज्या ९०४ ॥ कोटिज्या ४२८ ॥ वास्तविक कोटिफल ४१३४ ॥ ग्रहका वास्तविक मन्द कर्ण १२४७९ ॥ पराख्य १६६१३॥ शीघ्रफलकी स्पर्श रेखा$=\frac{९६६०\times९०४}{१६६१२}$=९२६ ॥ शीघ्रफल अं. २७ । ४३ ३८ ॥ स्पष्ट भौम रा. १० । ० । २६ । २९ ॥

(६२) तारा-द्वयीका स्पष्टीकरण। स्पष्ट सूर्यमेंसे मन्द स्पष्ट ताराको निकाल देनेसे शीघ्र केन्द्र आता है। शीघ्र केन्द्रके भुजकी कोटिज्याको ग्रहके वास्तविक मन्द कर्णसे गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे वास्तविक कोटिफल मिलता है। इस कोटिफलको सूर्यके वास्तविक कर्णमें मकरादि शीघ्र केन्द्रमें धन तथा कर्कादि शीघ्र केन्द्रमें ऋण करनेसे पराख्य आता है। फिर ग्रहके शीघ्र केन्द्रके भुजकी ज्याको ग्रहके वास्तविक मन्द कर्णसे गुण, गुणन-फलमें पराख्यका भाग देनेसे शीघ्र फलकी स्पर्श रेखा निकलती है, जिसका धनु शीघ्र फल होता है। इसका संस्कार स्पष्ट सूर्यमें शीघ्र केन्द्रानुसार करना चाहिये।

स्पष्ट सूर्य रा. ८ । २३ । २९ । १९ ॥ मन्द स्पष्ट शुक्र रा. ९ ७ । ४९ । ४ ॥ शीघ्र केन्द्र रा. ३ । १९ । ४४ । १९ मेषादि और कर्कादि ॥ भुज रा. २ । १४ । १९ । ४९ ॥ ज्या ९६२ ॥ कोटिज्या

२७२ ॥ वास्तविक कोटि फल १९४८ ॥ सूर्यका मन्द कर्ण ९६६० ॥ पराख्य ७७१२ ॥ शीघ्र फलकी स्पर्श रेखा= ९६२४७९६१ / ७७१२ =८९३ ॥ शीघ्रफल रा. १।११।४६।२७ ऋण ॥ स्पष्ट शुक्र रा. ७।११।४२।९२ ॥

(६३) वास्तविक शीघ्र कर्ण । पृथ्वीसे ग्रहकी वास्तविक दूरीका नाम वा. शी. कर्ण है। ग्रहके पराख्यको १००० से गुणकर गुणन-फलमें शीघ्र फलकी कोटिज्याका भाग देनेसे लब्धि वा. शी. कर्ण होती है। भौम-शी. फ. को. ज्या ८८५ ॥ उसका वा. शी. कर्ण= पराख्य १६६१३×१०००÷८८५=१८७७२॥ शुक्र-शी. फ. को. ज्या= ७४६ ॥ उसका वा. शी॰ कर्ण=पराख्य ७७१२×१०००÷७४६= १०३३८ ॥

(६४) गति साधन। मन्द स्पष्ट ग्रहको स्पष्ट ग्रहहीन करनेसे गति-केन्द्र आता है। उसके भुजकी कोटिज्याको गति-गुणकसे गुण, गुणन-फलमें १०००० का भाग देनेसे लब्धि आद्यसंज्ञक होती है, जो कर्कादि-केन्द्रमें ऋण तथा मकरादिमें धन होती है। पुनः स्पष्ट-ग्रहमेंसे स्पष्ट सूर्य हीन करनेसे शीघ्रगति केन्द्र आता है। इसके भुजकी कोटिज्याको ९९१ गुण, गुणन-फलमें १०००० का भाग देनेसे लब्धि शीघ्र गति-फल होती है, जो आद्यसंज्ञककी तरह ही ऋण धन होती है। आद्यसंज्ञक और शी. ग. फलके, यदि वे एक चिह्नके हों तो, योगको; पर यदि वे भिन्न चिह्नके हों तो वियोगको १०००० से गुण, गुणन-फलमें शीघ्र-कर्णका भाग देवे तो लब्धि कलादि स्पष्ट-गति होती है। यह यदि ऋण चिह्न हो तो ग्रह वक्री होता है ॥ भौम ॥ गतिकेन्द्र अं. २७। ४३। ३८ ॥ कोटिज्या ८८५ × गति-गुणक ४७९÷१००००=आद्यसंज्ञक ४२.३९१५ ॥ पुनः शी. ग. केन्द्र रा. १। ६। ५७। ६ ॥ कोटिज्या ८००×९९१÷१०००० = शी. ग. फल ४७.२८०० ॥ दोनोंका योग ८९. ६७१५ × १००००÷शी. कर्ण १८७७२ = स्पष्ट-गति क. ४७ । ४६ ॥ शुक्र गति-केन्द्र रा. ९। २६। २। १२॥ भुज रा. २। ३। ५७। ४८॥ कोटिज्या ४३९ × गति-गुणक ६९५÷१०००० = आद्यसंज्ञक ३०.

९२०९ ॥ पुनः शी. ग.-केन्द्र रा. १० । १८ । १३ । ३३ ॥ भुज रा. १ । ११ । ४६ । २७ ॥ कोटिज्या ७४६×५९१÷१००००= ४४. ०८८६ ॥ दोनोंका योग ७४. ६०९१ × १०००० ÷ शी. कर्ण १०३३८=स्पष्ट-गति क. ७२ । १० ॥ दोनों ग्रहोंके दोनों-गति केन्द्र मकरादि (धन) थे। फुट नोट देखिये।

(६९) यहाँ पहले भौमादि पञ्चताराओंको पाश्चात्य रीत्यनुसार शीघ्र स्पष्ट करनेके लिये जो सूर्य तथा उनके वास्तविक मन्द-कर्ण लाये गये हैं, वे सुखार्थ किञ्चित् स्थूल हैं। यदि उन्हें सूक्ष्म लाना हो तो उक्त ग्रहोंके स्पष्ट मन्द-केन्द्र, केन्द्रच्युति (Eccentrity तथा मन्द-कर्णाङ्क जो नीचेके चक्रमें दिये हैं, काममें लाने चाहिये। ग्रहके मध्यम मन्द-केन्द्रको मन्द-फल संस्कृत करनेसे वह स्पष्ट मन्द-केन्द्र होता है। फिर स्पष्ट मन्द-केन्द्रके भुजकी कोटिज्याको १००० से भाजित कर, लब्धिको ग्रहकी केन्द्रच्युतिसे गुण, गुणन-फलको, यदि स्पष्ट मन्द-केन्द्र कर्कादि हो तो १ में जोडनेसे, पर यदि वह मकरादि हो तो १ में घटानेसे हार आता है। फिर इस प्रकार प्राप्त हारसे ग्रहके मन्द-कर्णाङ्कमें भाग देनेसे उसका सूक्ष्म वास्तविक मन्द कर्ण स्पष्ट होता है, जिसके द्वारा पूर्ववत् पराख्य, स्प. रे. शीघ्रफल आदि शीघ्र स्पष्टीकरण सम्बन्धी गणित-कार्य्य कर लेवे—

ग्रह	सूर्य	भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
केन्द्रच्युति	·०१६८	·०९३३	·२०५६	·०४८२	·००६८	·०५६२
मंदकर्णाङ्क	९९९७	१५१०४	३७०७	५१९०७	७२३३	९५०८७

फुट नोट। पाश्चात्य मतमें ग्रह, उच्च और पातोंको सायन बनाते हैं। ई. स. १९१५ और इष्ट ई. सन्‌के अन्तरमें ७२ का भाग देनेसे जो अंशादि लब्धि मिले, उसे अंशादि २२ । ३१ । २४ में, यदि इष्ट सन् अधिक हो तो जोडने पर, कम हो तो घटानेसे इष्ट ई. सन्‌के प्रारंभिक अयनांश आते हैं। पुनः प्रति-मासके लिये इसमें विक. ४ और मिलावे। इस हिसाबसे ई. स. १९३६ के प्रारंभिक अयनांश २२° । ४८' । ५४" आते हैं।

उदाहरण—कल्पना की कि सूर्यका मध्यम मन्द-केन्द्र रा. ६ । ४ । ३६ । २१ । (तुलादि) है तो मन्दफल=१०' । ३९" धन; स्पष्ट मन्द-केन्द्र रा. ६ । ४ । ४६ । ५६ (कर्कादि); भुजांश ४. । ४६' ५६"; कोटिज्या ९९७÷१०००=लब्धि, ·९९७; हार=१+ . ९९७×·०१६८ = १.०१६७; वास्तविक सूक्ष्म मन्द-कर्ण=९९७÷१.०१६७ = ९८३३ । इसी प्रकार इष्ट ताराग्रहका सूक्ष्म मन्द-कर्ण निकाल शीघ्र स्पष्टीकरण सम्बन्धी गणित करे ।

इति श्रीरजनी-कान्तशास्त्रिकृतौ ज्योतिर्गणित-कौमुद्यां पञ्चतारा-स्पष्टी-करणो नाम चतुर्थः परिच्छेदः ।

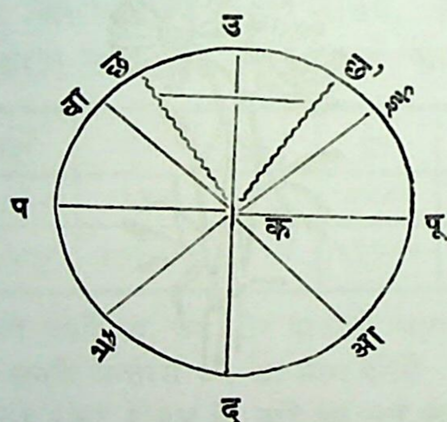


पञ्चम परिच्छेद ।

त्रिप्रश्नाधिकार ।

(१) ज्योतिःशास्त्रके जिस अधिकारमें दिशा, देश और काल विषयक इन त्रिविध प्रश्नोंका विचार किया जाता है, उसे त्रिप्रश्नाधिकार कहते हैं ।

(२) दिशा साधन । २१ जून वा २२ दिसम्बरके दिन खूब समतल पृथ्वीपर एक वृत्त खींच उसके केन्द्रमें एक सीधी लकडी (शंकु) खडी करो । शंकुच्छायाका अग्र-भाग एक बार पूर्वाह्णमें और दूसरी बार अपराह्णमें वृत्तकी परिधिको जिन दो बिन्दुओं पर स्पर्श करे, उन्हें एक सीधी रेखासे मिला दो । पुनः इस मिलानेवाली रेखाको समकोण पर काटता हुआ जो वृत्तका व्यास बनेगा, वह दक्षिणोत्तर रेखा, और दक्षिणोत्तर रेखाको समकोण पर काटनेवाला जो व्यास होगा वह पूर्वापर रेखा होगा । इस प्रकार केन्द्रपर जो चार समकोण उत्पन्न होंगे, उन्हें सम द्वि-भाग करनेसे दिशाओंके चार कोण मालूम होंगे ।



ऊपरके चित्रमें क=वृत्तकेन्द्र जिसपर शंकु खडा है, कछ शंकुकी पूर्वाह्ण छाया । कछ' उसकी अपराह्ण छाया । छछ' छायाग्र योजक रेखा; दउ दक्षिणोत्तर और पूप पूर्वापर रेखा है । क केन्द्रपर इनसे

बने चार समकोण हैं, जिन्हें समद्विभक्त करनेवाले वाआ और ईनै दो व्यास हैं, जो चार दिशा-कोणोंको उत्पन्न करते हैं। यथा—कई ईशान; कआ, आग्नेय; कनै, नैर्ऋत्य और क-वा, वायव्य।

नोट—२१ जून वा २२ दिसम्बरको इस कारण दिशा-साधन करना चाहिये कि उस दिन सूर्यके अयनान्त-बिन्दु (Solstice) पर रहनेके कारण उसकी क्रान्ति स्थिर रहती है, जिससे मध्याह्न रेखा और दक्षिणोत्तर रेखा दोनों एक हो जाती हैं। यदि वर्षकी किसी दूसरी तारीखको दिशायें साधी जायें तो सूर्य-क्रान्तिका प्रतिक्षण बदलते रहनेके कारण उसकी जितनी क्रान्ति उदय-कालमें होगी, उससे भिन्न क्रान्ति अस्तकालमें होगी। जिससे दक्षिणोत्तर रेखा मध्याह्न रेखासे भिन्न होगी और उसका पता बिना त्रिकोण-मिति जाने नहीं लगेगा।

(३) निरक्षवृत्त (Terrestrial Equatar) उस कल्पित वृत्तका नाम है, जो पृथ्वीके चारों तरफ उसके दोनों ध्रुवोंसे बराबर दूरीपर खींचा जाता है। यही पृथ्वीकी विषुवरेखा है।

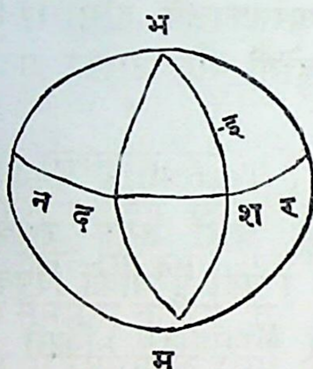
(४) द्राघिमा (Meridian) किसी स्थानकी द्राघिमा वह कल्पित वृत्तार्द्ध है, जो उस स्थानसे होता और निरक्षको समकोण पर काटता हुआ एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुवतक खींचा जाता है। यहाँ निरक्ष शब्दसे पार्थिव द्राघिमाका बोध हुआ। इस पार्थिव द्राघिमाका प्रतिबिम्ब-स्वरूप जो आकाशीय द्राघिमा है, वही मध्याह्न वृत्तार्द्ध है।

(५) अक्षांश (Latitude) किसी स्थानका अक्षांश निरक्षसे उस स्थानकी दूरीको कहते हैं, जो उस स्थानकी द्राघिमापर अंशादिमें नापी जाती है। अक्षांश निरक्षसे इष्ट स्थानके दिशानुसार ९० अंशों तक उत्तर और उतने ही दक्षिणकी ओर नापा जाता है।

(६) देशांश वा देशान्तर (Longitude) किसी स्थानका देशान्तर किसी दूसरे स्थानकी द्राघिमाको प्रधान द्राघिमा (Prime Meridian) मानकर उस प्रधान द्राघिमा और इष्ट स्थानकी द्राघिमाके

बीचकी दूरीको कहते हैं, जो निरक्षपर अंशादिमें नापी जाती है। देशान्तर प्रधान द्राघिमासे इष्ट स्थानके दिशानुसार १८० अंशोंतक पूर्व और उतना ही पश्चिमकी ओर नापा जाता है।

(७) भू-मध्यरेखा। भारतीय ज्योतिर्वित् प्रधान मानी हुई द्राघिमाको ही भूमध्य रेखा कहते हैं। प्रत्येक देशवाले अपनी-अपनी अलग अलग प्रधान द्राघिमा मानते हैं। इङ्गलैण्डवाले ग्रेनिच (Greenwich) की और भारत-वासी कुरुक्षेत्रकी द्राघिमाको प्रधान द्राघिमा (भूमध्यरेखा) मानते हैं। इस पुस्तकमें काशीकी द्राघिमाको ही प्रधान मान, सारा गणित-कार्य किया गया है।



ऊपरके चित्रमें नर = निरक्ष; भदम=भूमध्य रेखा; इ=इष्टस्थान; भइम=इष्ट स्थानकी द्राघिमाः = दश=देशान्तर (इष्टस्थानका) और शइ=इष्टस्थानका अक्षांश है।

(८) पलभा (Shadow of the Gnomon)। २१ मार्च वा २३ सितम्बरके दिन अर्थात् जिस दिन सूर्य नाडी-वृत्तपर रहे, उस दिन १२ अंगुलके शंकुकी मध्याह्न कालीन छायाकी लम्बाई स्वदेशकी पलभा होती है। एक खूब सीधी, सुडौल और १२ हाथ लम्बी काठ वा धातुकी बनी छड़ी लेकर उसके प्रत्येक बारहवें खण्डको ६० तुल्य उपखण्डोंमें विभक्त करे। फिर इन खण्डों और उपखण्डोंको क्रमशः अंगुल और व्यंगुलकी संज्ञा देकर इस छड़ीकी मध्याह्न-कालीन

छाया पूर्वोक्त तारीखोंके दिन इसी पैमानेसे नापे तो स्वदेशकी पलभा ज्ञात होगी।

(९) पलभासे अक्षांश लाना। पलभाको ५ से गुण, गुणन-फलमेंसे पलभाके वर्गका दशमांश घटानेसे स्वदेशका अक्षांश निकलता है। प्राचीन मतानुसार काशीकी पलभा अंगुलादि ५। ४५ है। इसको ५ से गुणा किया तो गुणन-फल २८। ४५ हुआ। फिर पलभाका वर्ग किया तो ३३। ३। ४५ हुआ। इसके दशमांश ३। १८। २२ को पूर्वोक्त गुणन-फलमेंसे घटाया तो काशीका अक्षांश अंशादि २५। २६। ३८ हुआ। काशीकी वर्त्तमान पलभा अंगुलादि ५। ४० मानी जाती है, जिसपर पूर्वोक्त नियमानुसार काशीका अक्षांश अंशादि २५। ७। २० आता है। दोनों पलभाओंपरके अक्षांशोंको जोडकर योग-फलका आधा करनेसे अंशादि २५। १७ आता है, जो काशीके वास्तविक अक्षांश २५। १८ के प्रायः तुल्य हैं। जान पडता है, कि ग्रह लाघव-कार गणेश दैवज्ञ द्वारा आविष्कृत अक्षांश निकालनेका यह नियम स्थूल है। सूक्ष्म अक्षांश त्रिकोणमिति द्वारा निकलता है। नियम ५१ देखिये।

(१०) ध्रुवोन्नति (Altitude of the Pole Star)। स्वदेशके क्षितिजसे ध्रुवताराकी जो ऊँचाई है, वही स्वदेशका अक्षांश है। पृथ्वीके उत्तर गोलार्द्धमें ध्रुवताराकी ऊँचाई यन्त्र-विशेष द्वारा नापनेसे अक्षांश मालूम हो जाता है।

(११) लङ्का। भूमध्य-रेखा जिस बिन्दुपर निरक्षको स्पर्श करती है, उसकी संज्ञा लंका है।

(१२) चर। स्वदेश और लंकाके सूर्योदयमें जितने समयका अन्तर रहता है, उसकी संज्ञा चर वा चर-काल है।

(१३) क्रान्ति-पातसे लेकर अयनान्त-बिन्दु तक ९० अंश होते हैं। इन्हीं ९० अंशोंमें चर-कालकी क्रमशः वृद्धि और ह्रास हुआ

करता है । क्रान्ति-पातोंपर चर-काल शून्यता और अयनान्त-बिन्दुओं पर चरम सीमाको प्राप्त होता है ।

(१४) चर-खण्ड । चर-कालके चरम-मानके तीन टुकडे करनेसे तीन चर-खण्ड आते हैं । इसकी रीति यह है, कि पलभाको तीन जगह रख, उसको अलग-अलग ९९, ७९ और ३३ से गुण गुणन-फलमें १० का भाग देनेसे क्रमशः पहला, दूसरा और तीसरा चर-खण्ड उत्पन्न होते हैं । जैसे काशीकी पलभा अंगुलादि ५ । ४० है, जो $\frac{१७}{३}$ के तुल्य हैं; अतः पहला चरखण्ड $\frac{१७}{३} \times \frac{९९}{१०}$ = पलादि ५६ । ६ दूसरा चर-खण्ड $\frac{१७}{३} \times \frac{७९}{१०}$ = पलादि ४४ । ४६ और तीसरा चर-खण्ड $\frac{१७}{३} \times \frac{३३}{१०}$ = पलादि १८ । ४२ हुआ । ये तीन चर-खण्ड क्रान्ति-पातसे चलकर क्रमशः पहली, दूसरी और तीसरी राशिसे सम्बन्ध रखते हैं । इन तीनोंका योग-फल पलादि ११९ । ३४ परम चरकाल है ।

(१५) अयनांश । मेषारम्भसे चलकर किसी इष्टकाल तक क्रान्तिपात-बिन्दु जितनी दूरी तक पीछे हटे रहते हैं, उतनी दूरीका अंशादि मान अयनांश कहलाता है । इसे निकालनेकी यह रीति है, कि इष्ट ईसवी सन् और १९०० के अन्तरमेंसे उस अन्तरका तीसवाँ भाग घटानेसे जो कलादि फल प्राप्त हो, उसे यदि इष्ट सन् अधिक हो तो अंशादि २२ । २९ । २६ में जोडने पर और यदि इष्ट सन् कम हो तो उक्त अंशादिमेंसे उक्त फलको घटानेपर इष्ट सन्के प्रारम्भिक अयनांश ज्ञात होते हैं । फिर इष्ट सन्में जितने पूरे मास बीत चुके हों, उनमेंसे प्रत्येक मासके लिये ५ विकला और लेनी चाहिये ।

उदाहरण । ईस्वी सन् १९३६ का प्रारम्भिक अयनांश जानना है, तो १९३६−१९०० = ३६ । ३६÷३० = १ । १२ । ३६−१ । १२= कलादि-फल ३४ । ४८ । अंशादि २२ । २९ । २६ + कलादि ३४ । ४८ = अयनांश २३ । ४ । १४ हुआ ।

(१६) सायन ग्रह लाना । स्पष्ट ग्रहमें तात्कालिक अयनांश मिलानेसे सायन ग्रह बनता है; जैसे ८−१−१९३६ के स्पष्ट सूर्य रा.

८। २३। ३०। ४ में अयनांश २३। ४। १४ मिलाया तो सायन सूर्य रा. ९। १६। ३४। १८ हुआ।

(१७) इष्ट कालिक-चरका लाना। सायन सूर्यका भुज बना, उस भुजकी राशि-संख्या-परिमित गत-चर-खण्डोंका योग करे। पुनः भुजके अंशादिको वर्त्तमान चरखण्डसे गुण, गुणन-फलमें ३० का भाग देनेसे जो लब्धि मिले, उसे गत-चर-खण्डोंके उक्त योग-फलमें मिलानेसे इष्ट चर निकलता है।

उदाहरण। सायन सूर्य राश्यादि ९।१६।३४।१८ है, इसका भुज रा. २। १३। २९। ४२ हुआ, गत २ चरखण्डोंका योग किया तो योगफल पलादि १००। ९२ हुआ। भुजके अंशादि १३। २९। ४२ को वर्त्तमान चरखण्ड १८ । ४२ से गुण, गुणन-फलमें ३० का भाग दिया तो लब्धि पलादि ८। २२ हुई। इसे उक्त योग फल पलादि १००। ९२ में जोडा तो इष्ट चर पलादि १०९। १४= घट्यादि १। ४९। १४ हुआ। नियम (२८ छ) भी देखिये।

(१८) दिनमान और रात्रिमानका लाना। द्विगुणित चरको, यदि स्वदेश उत्तर गोलार्द्धमें हो तो, सायन सूर्यके मेषादि होनेपर, ३० घटियोंमें जोडनेसे, पर उक्त सूर्यके तुलादि होनेपर, उसे घटानेसे दिनमान निकलता है। दिनमानको ६० घटियोंमेंसे घटानेपर रात्रिमान आता है। यहाँ चर घट्यादि १। ४९। १४ है। इसे २ से गुणा किया तो घ. ३। ३८। २८ हुआ। स्वदेश उत्तर गोलार्द्धमें और सायन सूर्य तुलादि है अतः ३० घटियोंमेंसे घट्यादि ३। ३८। २८ को घटाया तो दिनमान घट्यादि २६। २१। ३२ हुआ, इसे ६० घटियोंमेंसे घटानेपर रात्रिमान घट्यादि ३३। ३८। २८ आया। यदि स्वदेश दाक्षिण गोलार्द्धमें हो तो चरका ३० घटियोंमें विपरीत संस्कार करना चाहिये।

(१९) स्थूलमतानुसार दिनमानानयन। स्थूलमतसे काशीके चरखण्ड क्रमशः ५७। ४६। १९ हैं। गत २ चरखण्डोंका

योग पलादि १०३ । ० हुआ । भुजके शेष अंशादिकों १९ से गुण गुणन-फलमें ३० का भाग दिया तो लब्धि पलादि ८ । ३० हुई । इसे उक्त योग-फलमें मिलाया तो इष्टचर पलादि १११ । ३० हुआ, इसे २ से गुणा किया तो गु. फ. घट्यादि ३ । ४३ हुआ । इसे ३० घटियोंमेंसे घटाया तो दिनमान २६ । १७ हुआ ।

(२०) सूर्योदय और सूर्यास्त कालका घंटादि समय जानना । रात्रिमानमें ५ का भाग देनेसे सूर्योदय कालका तथा दिनमानमें ५ का भाग देनेसे सूर्यास्त कालका घंटादि समय मालूम होता है । जैसे रात्रिमान घट्यादि ३३ । ३८ । २८ में ५ का भाग दिया तो सूर्योदय कालका घंटादि समय ६ । ४३ । ४२ आया । इसी प्रकार दिनमान घ. २६ । २१ । ३२ में ५ का भाग दिया तो सूर्यास्तकालका घंटादिसमय ५ । १६ । १८ मिला । दोनों समयोंमेंसे किसी एकको लाकर उसे १२ घंटोंमेंसे घटानेपर भी दूसरा निकल आता है । ये स्पष्टकाल हैं ।

(२१) कालसमीकरण (Equation of Time) । प्रथम परिच्छे-दमें स्पष्ट सावन दिन (Apparent Solar Day) और मध्यम सावन दिन (Mean Solar Day) का कुछ भेद बतला आये हैं । इस भेदको भली भाँति समझनेके लिये पाठक-गण एक ऐसे सूर्यकी कल्पना करें, जो नाडी वृत्तमें सूर्यकी मध्यम गतिसे भ्रमण कर रहा है । यह कल्पित सूर्य मध्याह्नवृत्त पर, पृथ्वीकी आवर्त्तन-गतिकी एकरूपताके कारण, प्रतिदिन ठीक २४ घंटोंमें पहुँच जायगा । पर वास्तविक सूर्यकी दशा इससे सर्वथा भिन्न है । वह एक ऐसे मार्गमें भ्रमण करता है, जो नाडी-वृत्त पर तिरछा खडा है और जिसके केन्द्रमें पृथ्वी न होकर उससे एक ओर हटकर है । रवि-पथ (Ecliptic) के इस तिरछापन और उत्केन्द्रता (Eccentricity) के कारण वास्त-विक सूर्यका दैनिक नाडी वृत्तीय भोग (Right Ascension) उक्त कल्पित सूर्यके दैनिक नाडी-वृत्तीय भोगके, जो वस्तुतः मध्यम गति

ही है, प्रतिदिन तुल्य नहीं होता। जब वास्तविक सूर्यका दैनिक नाडी वृत्तीय भोग कल्पित सूर्यके दैनिक नाडी-वृत्तीय भोगसे अधिक होता है, तब वह मध्याह्न-वृत्तपर कल्पित सूर्यके पश्चात् अर्थात् २४ घण्टोंके बाद और इसकी विपरीत-दशामें २४ घंटोंके पहले पहुँचता है। अतः यह कोई आवश्यक नहीं है, कि जिस समय हमारी जेब-घडीमें, जो केवल मध्यम काल (Mean time) की सूचिका है, १२ बजे, ठीक उसी समय धूप-घडी (Sun-dial) में भी, जो स्पष्ट-काल (Apparent Time) दिखलाता है, १२ बजे। इन दो प्रकारके समयोंके अन्तरको काल-समीकरण कहते हैं। आगेके चक्रसे यह ज्ञात होगा, कि किस अंग्रेजी तारीखको दोनों प्रकारके समयोंमें कितना मिनटादि अन्तर है। स्पष्ट-कालमें धन अन्तरको जोडने तथा ऋण अन्तरको घटानेसे मध्यम-काल आता है। यह अन्तर १६ वीं एप्रेल, १९ वीं जून, १ ली सितम्बर और २९ वीं दिसम्बरको शून्य, एवं ११ वीं फरवरीको परम धन तथा ३ री नवम्बरको परम ऋण हो जाता है।

कालसमीकरण-चक्र ।

तारीख	जनवरी	फरवरी	मार्च	एप्रिल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितंबर	अक्तूबर	नवंबर	दिसबर
	+	+	+	+	−	−	+	+	−	−	−	−
१	३।११	१३।३६	१२।३१	३।५९	२।५७	२।२४	३।३५	६।१०	०। १	१०।१६	१६।१९	१०।५४
३	४। ७	१३।५२	१२। ६	३।२३	३।११	२। ५	३।५८	६। २	०।३९	१०।५४	१६।२१	१०। ८
५	५। ३	१४। ५	११।४०	२।४८	३।२३	१।४५	४।२०	५।५१	१।१८	११।३०	१६।१९	९।१९
७	५।५७	१४।१४	११।१२	२।१३	३।३२	१।२३	४।४०	५।३८	१।५८	१२। ५	१६।१४	८।२९
९	६।४९	१४।२१	१०।४२	१।४०	३।३९	१। ०	४।५९	५।२३	२।३९	१२।३९	१६। ६	७।३६
११	७।३९	१४।[illegible]	१०।११	१। ७	३।४४	०।३७	५।१६	५। ५	३।२१	१३।११	१५।५४	६।४१
१३	८।२६	१४।२४	९।३९	०।३५	३।४७	−०।१२	५।३१	४।४५	४। ३	१३।४१	१५।३९	५।४६
१५	९।११	१४।२१	९। ५	+०। ५	३।४७	+०।१२	५।४४	४।२३	४।४६	१४। ८	१५।२०	४।४८
१७	९।५४	१४।१४	८।३१	−०।२४	३।४६	०।३८	५।५५	३।५८	५।२८	१४।३४	१४।५८	३।५०
१९	१०।३३	१४। ५	७।५५	०।५१	३।४२	१। ३	६। ४	३।३२	६।११	१४।५७	१४।३३	२।५१
२१	११।१०	१३।५४	७।१९	१।१७	३।३५	१।२९	६।११	३। ४	६।५३	१५।१७	१४। ४	१।५१
२३	११।४३	१३।३९	६।४३	१।४१	३।२७	१।५५	६।१६	२।३४	७।३५	१५।३५	१३।२२	−०।५१
२५	१२।१३	१३।२२	६। ६	२। ३	३।१६	२।२१	६।१९	२। २	८।१६	१५।५०	१२।५७	+०। ९
२७	१२।४१	१३। ३	५।३०	२।२३	३। ४	२।४६	६।१९	१।२९	८।५७	१६। २	१२।१९	१। ९
२९	१३। ५	१२।४२	४।५३	२।४१	२।४९	३।११	६।१७	०।५४	९।३७	१६।११	११।३८	२। ८
३१	१३।२६	×	४।१७	×	२।३३	×	६।१३	+०।१८	×	१६।१७	×	३। ६

नोट—इस चक्रमें जिस तारीखका काल-समीकरण न दिया हो तो उसे गत और गम्य तारीखोंके काल समीकरणोंसे सानुपात निकाल-लेवे। जैसे—८ वीं जनवरीका काल-समीकरण ७वीं और ९ वीं तारीखोंके काल समीकरणोंके द्वारा सानुपात निकाला तो ६ मिनिट और २३ सेकंड हुआ ।

(२२) सूर्यके उदयास्तका घंटादि मध्यम-काल निकालना। उदयास्तके घंटादि स्पष्ट-कालमें धन, ऋण चिह्नानुसार तात्कालिक काल-समीकरणका संस्कार करनेसे उनके घंटादि मध्यमकाल निकलते हैं। जैसे ८ वीं जनवरीका काल-समीकरण मिनटादि ६। २३ है, तो उसे उदयास्तके घंटादि स्पष्टकाल क्रमशः ६। ४३। ४२ और ५। १६। १८ में धन होनेसे जोडा तो उदयास्तके मध्यम काल क्रमशः ६। ५०। ५ और ५। २२। ४१ हुये।

(२३) दिशा-साधन-प्रसङ्गमें कह आये हैं कि मध्याह्न-रेखा दक्षिणोत्तर रेखासे प्रतिदिन कुछ न कुछ भिन्न हुआ करती है; तथापि यह भिन्नता कुछ इतनी बडी नहीं है, जिससे किसी भारी अशुद्धिकी सम्भावना हो सके; अतः व्यवहारके लिये प्रायः दक्षिणोत्तर रेखाको ही मध्याह्न-रेखा मान लिया जाता है।

(२४) स्वदेशका मध्यमकाल (Mean Local Time) जाननेके लिय घडी ठीक करना। जिस समय शंकुकी छाया दक्षिणोत्तर रेखा पर आ जाये उस समय १२ घंटोंमें इष्ट तारीखके काल-समीकरणका संस्कार कर जितने घंटादि प्राप्त हों, उन्हींके अनुसार अपनी घडी ठीक कर लेवे। जैसे ८ वीं जनवरीका संस्कार मिनिटादि ६। २३ धन है तो अपनी घडीमें १२ बजकर ६ मिनट २३ से. कर लेवे।

(२५) काशीकी द्राघिमाको भूमध्य-रेखा मानकर स्वदेशका देशान्तर निकालना। यह क्रिया किसी चन्द्र-ग्रहणके स्पर्श-कालके द्वारा करनी चाहिये। ग्रहणके दिन स्वदेशका मध्यम काल जाननेके लिये अपनी घडीको पूर्व्वोक्त रीतिसे ठीक कर देखे कि स्वदेशमें ग्रहणका स्पर्श मध्यम कालसे ठीक-ठीक कै बजकर कितने मिनिटादि पर हुआ। फिर काशीमें सम्बन्धित चन्द्र-ग्रहणके स्पर्शका मध्यम काल गणित-द्वारा मालूम करे। यदि दोनों स्थानोंका स्पर्श सम्बन्धी मध्यम काल तुल्य हो तो यह समझना चाहिये, कि

स्वदेश और काशी दोनों एक ही द्राघिमा पर स्थित हैं। यदि स्वदेशका मध्यम काल अधिक हो तो स्वदेश काशीसे पूर्व्व और यदि कम हो तो स्वदेश काशीसे पश्चिम है, ऐसा जानना चाहिये। पश्चात् दोनों स्थानोंके स्पर्श-कालान्तरको मिनिटमें बदल कर ४ का भाग देनेसे काशीसे अंशादि देशान्तर ज्ञात होता है।

उदाहरण—८ वीं जनवरी ई. स. १९३६ के सम्पूर्ण चन्द्र-ग्रहणका काशीमें स्पर्शका स्पष्ट-काल मध्याह्नसे (P. M.) घंटादि ९। ३९। ३७ है। इसमें काल समीकरण मिनिटादि ६ । २३ । मिलाया तो काशीमें स्पर्शका मध्यम-काल घंटादि ९। ४६ । ० हुआ। मान लिया कि पटनेका देशान्तर निकालना है तो देखा कि वहाँ पर स्पर्शका मध्यम काल घंटादि ९। ५४ । ४८ अर्थात् मिनिटादि ८। ४८ अधिक है, जिससे मालूम हुआ कि पटना काशीसे पूर्व है। इस मिनिटादि अन्तरमें ४ का भाग देनेसे पटनेका देशान्तर काशीसे अंशादि २ । १२ पूर्व हुआ।

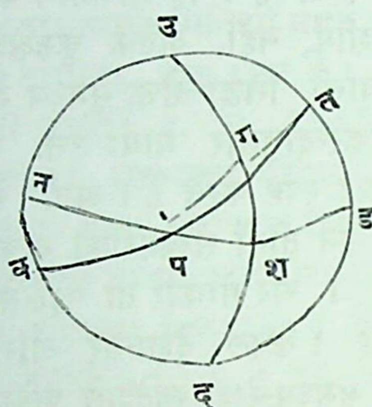
(२६) मिश्रमान लाना। साधारण नियम यह है, कि दिनमानमें रात्र्यर्द्धमान जोडनेसे स्वदेशका मिश्रमान आता है। जैसे पूर्वोक्त दिनमान घट्यादि २६। २१ । ३२ में रात्र्यर्द्धमान घट्यादि १६। ४९। १४ जोडा तो मिश्रमान घट्यादि ४३। १० । ४६ आया। ३० घटियोंमें दिनार्द्धमान मिलानेसे भी मिश्रमान निकलता है। जैसे ३० घटियोंमें दिनार्द्धमान घट्यादि १३।१०।४६ मिलाया तो मिश्रमान घट्यादि ४३। १० । ४६ हुआ । चरको ४५ घटियोंमें धन-ऋण-चिह्नानुसार क्रमशः जोडने वा घटानेसे भी मिश्रमान निकलता है। जैसे यहाँ चर घट्यादि १। ४९। १४ ऋण है तो इसे ४५ घटियोंमेंसे घटादेने पर वही मिश्रमान घट्यादि ४३। १०। ४६ निकला।

नोट—द्विगुणित मिश्रमानमेंसे ६० घटियोंको निकाल देनेसे दिनमान आता है। जैसे दिनमान=२ × घट्यादि ४३। १०। ४६—६० =घट्यादि ८६। २१। ३२—घटी ६०=घ. २६। २१। ३२॥

(२७) मिश्रमानमें विशेष-संस्कार । काशीके मकरन्दीय-पञ्चाङ्गोंमें प्रतिदिनका, वा कमसे कम प्रत्यवधिका, एक विशेष प्रकारका मिश्रमान दिया रहता है । यह मिश्रमान वस्तुतः काशीका वह इष्टकाल है जब, काशीमें नहीं, बल्कि कुरुक्षेत्र, उज्जयिनी, लङ्का आदिको स्पर्श करनेवाली सिद्धान्तोक्त भूमध्य रेखा पर, स्पष्ट निशीथ काल होता है । मकरन्दानुसार प्रायः उक्त भूमध्य रेखाके स्पष्ट निशीथ-कालका ही ग्रह स्पष्ट करते हैं। अतः ग्रहमें चर, देशान्तर और काल-समीकरण इन तीनों संस्कारोंको न कर, उन्हें काशीके ही मिश्रमानमें कर देते हैं । चर संस्कार तो पहलेसे ही काशीके मिश्र-मानमें मौजूद रहता है । केवल देशान्तर और काल समीकरण ही बाकी रहते हैं। यदि भूमध्य-रेखा स्वदेशसे पश्चिम हो तो घट्यादि देशान्तरको स्वदेशके मिश्रमानमें जोडना, और यदि पूर्व हो तो उसे घटाना चाहिये। ऐसा करनेसे भूमध्य-रेखाके निशीथ-कालका स्वदेशमें मध्यमकाल होगा । इसे स्पष्ट-कालमें परिणत करनेके लिये काल-समीकरणके मिनिटादिको पलादिमें बदल उसका उक्त मध्यम-कालमें विपरीत संस्कार अर्थात् धनकी जगह ऋण और ऋणकी जगह धन करना चाहिये। जैसे काशीसे भूमध्य-रेखा पश्चिम है; अतः काशीके घट्यादि देशान्तर १ । ९ । ० को पूर्व्वोक्त मिश्रमान घ. ४३ । १० । ४६ में जाडा तो घ. ४४ । १९ । ४६ हुआ । इसमे धन ।मीनिटादि काल-समीकरण ६ । २३=पलादि १५ । ५७ को घटाया तो विशेष-संस्कार युक्त मिश्रमान घ. ४४ । ३ । ४९ हुआ ।

(२८) क्रान्ति (Declination) और विषुवांश वा नाडी वृत्तीय भोग (Right Ascension) । खगोलके उत्तर ध्रुवसे लेकर दक्षिण ध्रुवतक एक ऐसा वृत्तार्द्ध खींचो जो ग्रह-केन्द्रसे होता हुआ नाडी-वृत्तको समकोणपर काटे; ता इस वृत्तार्द्धका वह खण्ड जो ग्रह-केन्द्र और नाडीवृत्तके बाच स्थित है, ग्रहकी क्रान्ति तथा नाडी-वृत्तका वह खण्ड जा वासन्त-क्रान्तिपात और उक्त समकोण-

बिन्दुके बीच स्थित है, ग्रहका विषुवांश कह लायेगा । सायन-ग्रह मेषादि हो तो क्रान्ति उत्तर और तुलादि हो तो दक्षिण होता है ।



ऊपरके चित्रमें कत = क्रान्ति-वृत्त; नड = नाडी-वृत्त; उग शद=इष्ट दक्षिणोत्तर वृत्तार्द्ध; प=वासन्त क्रान्ति-पात; श=समकोण-बिन्दु; शग= उत्तर-क्रान्ति और पश = विषुवांश है ।

॥ क्रान्ति विषुवांश चक्र ॥

भुजांश	क्रान्ति	विषुवांश	भुजांश	क्रान्ति	विषुवांश
०					
५	१।५९।१६	०।२४।४०	५०	१७।४४।५६	२।२६।५१
१०	३।५७।४५	०।४८।४०	५५	१९। १।३०	२।२१। ९
१५	५।५४।४२	१।११।२२	६०	२०। ९।२४	२।१०।५८
२०	७।४९।२१	१।३२। ७	६५	२१। ८।२८	१।५६।३७
२५	९।४०।५५	१।५०।२१	७०	२१।५७।३४	१।३८।२५
३०	११।२८।३७	२। ५।२९	७५	२२।३६।२१	१।१६।५४
३५	१३।११।३९	२।१७। २	८०	२३। ४।२२	०।५२।४६
४०	१४।४९।१५	२।२४।४०	८५	२३।२१ २०	०।२६।५१
४५	१६।२०।३६	२।२७।५९	९०	२३।२८। ०	०। ०। ०

नोट-इस चक्रमें क्रान्ति और विषुवांश दोनों अंशादि हैं । विषुवांश वस्तुतः विषुवांश-फल हैं, जिनका संस्कार सायन ग्रहमें किया

जाता है। सायन-ग्रह यदि राशि-चक्रके समपाद (२ रे तथा ४ थे पाद) में स्थित हो तो विषुवांश-फल धन और यदि वह विषमपाद (१ ले और ३ रे पाद) में स्थित हो तो उक्त-फल ऋण होता है। किसी अन्य भुजांशके लिये इस चक्रसे सानुपात क्रान्ति तथा विषुवांश-फल निकाल लेना चाहिये जैसा कि नियम २९ और ३० में सूर्यकी क्रान्ति तथा विषुवांश-फल निकाले गये हैं। नीचे कतिपय अन्य स्वतन्त्र रीतियां भी इन्हें निकालनेके लिये दी गई हैं।

(२८ क) भुजांशकी-ज्याको १९९ से गुण कर, गुणन-फलमें ५०० का भाग देवे; जो लब्धि मिले, वही इष्ट क्रान्तिकी ज्या होती है। उपपत्ति—९० अंशोंके भुजपर जिसकी ज्या १००० है परम क्रान्ति अंशादि २३ । २८ होती है, जिसकी ज्या ३९८ है, इष्ट भुजांशकी ज्याके लिये अनुपात किया—१००० पर तो ३९८ इष्ट भुजांश-ज्यापर कितना ? उत्तर आया $\frac{\text{भुजांश-ज्या} \times ३९८}{१०००}$ $= \frac{\text{भुजांश-ज्या} \times १९९}{५००}$। उदाहरण—भुजांश ६० परकी क्रान्ति-ज्या = $\frac{८६६ \times ३९८}{१०००} = \frac{८६६ \times १९९}{५००}$ =३४५=क्रान्ति अं. २० । १२ । १९ ॥

(२८ ख) प्राचीन मतकी क्रान्ति लाना। प्राचीन मतसे परम क्रान्ति २४ अंश है, जिसकी ज्या ४०७ है; अतः भुजांश-ज्याको ४०७ से गुणकर, गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे इष्ट क्रान्तिकी ज्या आती है; जैसे भुजांश ६० की ज्या ८६६ को ४०७ से गुण, गुणन-फल ३५२४६२ में १००० का भाग दिया तो इष्ट क्रान्तिकी ज्या ३५२ हुई जिससे क्रान्ति अंशादि २० । ३७ । ५७ आई।

(२८ ग) नवीन मतमें भुजांश-ज्याको २ से गुण, गुणन-फलमें ५ का भाग देनेसे भी इष्ट क्रान्तिकी-ज्या आती है; जैसे भुजांश ६० की ज्या ८६६ को २ से गुण, गुणन-फल १७३२ में ५ का भाग दिया तो इष्ट क्रान्तिकी ज्या ३४६ आई जिससे इष्ट क्रान्ति अं. २० । १९ । ५९ आई।

(२८ घ) नवीन-मतमें भुजांश-ज्याको ७ से गुण, गुणन-फलमें ५ का भाग देनेसे कलात्मक-क्रान्ति आती है; जैसे भुजांश ६० की ज्या ८६६ को ७ से गुण गुणन-फल, ६०६२ में ५ का भाग दिया तो कलात्मक-क्रान्ति १२१२ । २४=अंशादि २०। १२ । २४ आई ।

(२८ ङ) विषुवांश-फल लाना । द्विगुणित भुजांशकी-ज्याको ८३ से गुण, गुणन-फलमें,३५००० का भाग देनेसे अंशादि लब्धि विषुवांश-फल होती है । जैसे भुजांश ११×२=२२; २२ अंशोंकी-ज्या ३७४ को ८३ से गुण, गुणन-फल ३१०४२ में ३५००० का भाग देनेसे विषुवांश-फल अंशादि ० । ५३ । १३ मिला । अथवा विषुवांश-फल=अंशादि $\frac{\text{द्विगुणित-भुजांश-ज्या} \times ३७}{१५०००}$ ।

(२८ च) विना विषुवांश-फल निकाले ही एक वारमें ही विषुवांश निकाल लेना । भुजांश-ज्याके वर्गमेंसे क्रान्ति-ज्याके वर्गको घटा शेषका वर्ग-मूल लेवे । फिर इस वर्ग-मूलको १००० से गुण, गुणन-फलमें क्रान्तिकी कोटिज्याका भाग देनेसे इष्ट विषुवांशकी ज्या आती है; जैसे भुजांश ६० । इसकी चक्र-लिखित-क्रान्ति अं. २० । ९ । २४ । क्रान्ति-ज्या ३४४ । क्रान्तिकी कोटिज्या ९३९ । अब $८६६^२ - ३४४^२$ = ६३१६२० । इसका वर्ग-मूल = $७९४\frac{१}{२}$ ।

$\frac{७९४\frac{१}{२} \times १०००}{९३९}$=विषुवांश-ज्या ८४६ जिससे विषुवांश ५७ । ५३ । ४१ आया ।

(२८ छ) चरानयन । अक्षांश और सूर्य-क्रान्तिकी स्पर्श-रेखाओंको गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देनेस चर ज्या आती है । चरांशमें ६ का भाग देनेसे घटयादि चर-काल आता है । अक्षांश २५ । १८ । क्रान्ति ११ । २८ । ३७ है तो चर-ज्या =

$\frac{४७४ \times २०४}{१०००}$=९६·७ चरांश ९ । ३४' । ४४'' । चर-काल घट्यादि ० । ५९ । ४७ । २० ।

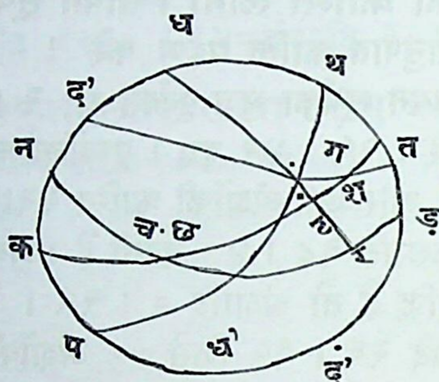
(२९) सूर्यकी क्रान्ति लाना । सायन सूर्यके भुजांश परिमित उक्त चक्रसे सानुपात क्रान्ति ग्रहण करे !

उदाहरण । सायन सूर्यका भुज पूर्ववत् रा. २ । १३।२९।४२ है । जिसके अंशादि ७३ । २९ । ४२ हुए । पूर्व्वोक्त चक्रमें ७० अंशोंकी क्रान्ति २१।५७।३४ और ७९ अंशोंकी क्रान्ति २२।३६।२१ है; अर्थात् ९ अंशोंमें क्रान्ति कलादि ३८ । ४७ बढती है । अब त्रैराशिक किया-९ अंशोंमें इतनी वृद्धि है तो अंशादि ३ । २९ । ४२ में कितनी ? उत्तर आया। कलादि २६ । ३९ जिसे ७० अंशोंकी क्रान्तिमें जो - नेसे इष्ट क्रान्ति २२। २४ । ९ मिली । सायन सूर्य तुलादि है; अतः यह दक्षिण क्रान्ति हुई ।

(३०) सूर्यका विषुवांश लाना । सायन सूर्यके भुजांश परिमित पूर्व्वोक्त चक्रसे सानुपात विषुवांश-फल ग्रहण कर उसे सायन सूर्यके पादानुसार उसमें धन ऋण-करनेसे उसका विषुवांश निकलता है। सायन सूर्यके भुजांश ७३ । २९ । ४२ परिमित विषुवांश-फल कलादि १४ । ४९ है जिसे सायन सूर्य रा. ९। १६ । ३४। १८ म उसक समपादमें होनेके कारण धन किया तो उसका विषुवांश रा. ९। १६। ४९। ३ हुआ। परिशिष्ट नियम २१ देखिये ।

(३१) नियम २९ के द्वारा जो क्रान्ति निकाली गई है वह आधुनिक पाश्चात्त्य मतानुसार है जिसमें अंशादि २३ । २८ की परम क्रान्ति-मानी जाती है । पर भारतके प्राचीन ज्योतिर्विद् २४ अंशोंकी परम क्रान्ति-मानते थे । अतः नवीन मतकी क्रान्तिको प्राचीन मतमें परिणत करनेके लिये उसमें उसका ४४ वां भाग जोड देना चाहिये । जैसे पूर्व्वोक्त नवीन मतकी क्रान्ति अंशादि २२ । २४ । ९ में इसका ४४ वां भाग कलादि ३० । ३३ मिलाया तो प्राचीन मतकी क्रान्ति अंशादि २२ । ५४ । ४२ हुई ।

नोट—चन्द्रादि अन्य ग्रहोंके विषुवांश और क्रान्ति जाननेके लिये उनमें क्रमशः कोटी-संस्कार तथा कर्ण-संस्कार करना पडता है। जैसा कि निम्न-लिखित चित्रसे स्पष्ट है ।



इस चित्रमें नङ=नाडी-वृत्त; कत = क्रान्ति-वृत्त; पथ = ग्रह-कक्षा; च = वासन्त क्रान्ति-पात; छ = ग्रह-कक्षाका क्रान्ति-वृत्त पर = पात-बिन्दु; ध = खगोलका उत्तर ध्रुव; द = क्रान्ति-वृत्तका उत्तर कदम्ब (ध्रुव); ग = ग्रह; शग = शर; शट = कोटी; गट = कर्ण; ट=कोटी-संस्कृत ग्रह; टर = इस ग्रहकी क्रान्ति; गर = स्पष्ट-क्रान्ति और चर = विषुवांश है ।

(३२) कदम्ब (Poles of the Ecliptic) वा क्रान्ति-वृत्तके ध्रुव। जिस प्रकार नाडी-वृत्तके दो ध्रुव होते हैं उसी प्रकार क्रान्ति वृत्तके भी दो ध्रुव होते हैं जो कदम्ब कहे जाते हैं और जो नाडी-वृत्तके ध्रुवोंसे परम-क्रान्ति-तुल्य अन्तरपर स्थित रहते हैं। ऊपर के चित्रमें द और द' क्रमशः उत्तर और दक्षिण कदम्ब हैं।

(३३) शर (Celestial Latitude)। कदम्बसे प्रारम्भकर ग्रह-केन्द्रसे होते हुए एक ऐसा चाप खींचो जो क्रान्ति वृत्तपर लम्ब-भावसे पडे। इस चापका वह खण्ड जो ग्रह-केन्द्र और क्रान्ति-वृत्तके अन्तर्वर्ती है, ग्रहका शर कहलाता है, जो ग्रहकी क्रान्ति-वृत्तसे दिशा-वश उत्तर वा दक्षिण हुआ करता है।

(३४) चन्द्र-शरका लाना । अन्य ग्रहोंके शरकी अपेक्षा हमें चन्द्र-शरसे घनिष्ठ सम्बन्ध है; क्योंकि चन्द्र और सूर्यके ग्रहण इसी-पर अवलम्बित रहते हैं। राहुको चक्र शुद्ध कर उसे स्पष्ट चन्द्रमें जोड-देनेसे शर-केन्द्र आता है । फिर शर-केन्द्रकी भुजांश-ज्यासे २७० को गुणकर गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे प्राचीन मतानुसार कलादि सूक्ष्म शर आता है ।

उपपत्ति। शर-केन्द्रके ९० अंशोंके भुजांशपर, जिसकी ज्या १००० है, परम शर अंशादि ४ । ३० = कला २७० होता है; अतः अनुपात किया १००० की ज्या पर २७० कला तो इष्ट शर केन्द्रकी ज्या-पर कितना ?

उदाहरण । मान लिया कि, राहु रा. ८ । २० । ३३ । ४३ है। उसको चक्र-शुद्ध किया तो रा. ३ । ९ । २६ । १७ हुआ । इसमें स्पष्ट चन्द्र रा. २ । १४ । ४३ । ३४ मिलाया तो शर-केन्द्र रा. ५ । २४ । ९ । ५१ आया । इसके भुजांश अंशादि ५ । ५० । ९ की ज्या १०१ से २७० को गुण, गुणन-फल २७२७० में १००० का भाग देनेसे कलादि शर २७ । १६ आया ।

(३५) चन्द्र-शर लानेकी दूसरी रीति । शर-केन्द्रके भुजांशोंको ३३ से गुण गुणन-फलमें ७ का भाग देनेसे भी किञ्चित् भिन्न चन्द्र-शर निकल आता है; जैसे शर केन्द्रके उक्त भुजांश अंशादि ५। ५० । ९ को ३३ से गुण, गुणन-फल १९२।३४।५७ म ७ का भाग दिया तो कलादि शर २७ । ३१ आया । यह भी प्राचीन रीति हैं और ग्रहण-गणितमें सुखार्थ प्रायः इसीसे काम लेते हैं।

(३६) नवीन मतानुसार चन्द्रशरानयन । नवीन (पाश्चात्त्य) मतसे चन्द्रका परम शर अंशादि ५ । ९=कला ३०९ है; अतः इस मतमें शर-केन्द्रकी भुजांश-ज्याको ३०९ से गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देकर चन्द्र-शर स्पष्ट करते हैं; जैसे उक्त भुजांश-ज्या १०१ ×३०९÷१०००= कलादि शर ३१ । १२ । सूर्यका शर नहीं होता; भौमादिकोंका शर ग्रहयुतिमें लिखेंगे ।

(३६ क) कोटि-संस्कार और कर्ण-संस्कार । नियम ३१ के नोटके चित्रमें ग बिन्दुपर गट ध्रुवीय दक्षिणोत्तर और गश कदम्बीय दक्षिणोत्तरमें स्थित है; अतः ∟ शगट आयन-वलन है । सप्तम परिच्छेदका नियम ४ देखिये । गशट समकोण त्रिभुजमें स्पष्ट रेखा ∟ शगट=$\frac{\text{शट}}{\text{गश}}$ ∴ शट (कोटि-संस्कार)= आयन-वलनकी स्पर्शरेखा × शर । इसी प्रकार छे. रे. ∟ शगट=$\frac{\text{गट}}{\text{गश}}$ ∴ गट (कर्ण-संस्कार)= आयन वलनकी छेदन रेखा × शर आयन वलनकी सूक्ष्म रीति = $\frac{\text{सायनग्रह भुजांशकोटिज्या} \times \text{परमक्रान्तिज्या}}{\text{क्रान्ति कोटिज्या (द्युज्या)}}$= आयन वलन-ज्या । इस रीतिसे भुजांश ६० पर आयन वलन अ. १२ । १९ होता है जिसकी स्प. रे. २१७ तथा छे. रे. १०२३ है । सप्तमपरिच्छेदमें बताई हुई वलन विधि सुखार्थ कुछ स्थूल है ।

कोटी-कर्ण-संस्कार-चक्र ।

भुजांश	कोटी-गुणक	कर्ण गुणक	भुजांश	कोटी-गुणक	कर्ण-गुणक
०	४३४	१०९०	४५	३०७	१०४६
५	४३२	१०८९	५०	२७९	१०३८
१०	४२८	१०८८	५५	२४९	१०३०
१५	४१९	१०८४	६०	२१७	१०२३
२०	४०८	१०८०	६५	१८४	१०१७
२५	३९३	१०७५	७०	१४९	१०११
३०	३७६	१०६८	७५	११२	१००६
३५	३५५	१०६१	८०	७५	१००३
४०	३३२	१०५४	८५	३८	१००१
४५	३०७	१०४६	९०	०	१०००

नोट—इस चक्रमें कोटी-गुणक और कर्ण-गुणक भुजांशोंके आयन वलनकी क्रमशः स्प. रे. और छे. रे. हैं ।

(३७) कोटी-संस्कार और कर्ण-संस्कारका लाना । सायन ग्रहके भुजांशानुसार ऊपरके चक्रसे सानुपात कोटी-गुणक और कर्ण

गुणक निकाल, उनसे ग्रहके कलादि शरको अलग-अलग गुणा कर, गुणन-फलोंमें १००० का भाग देनसे कोटी-संस्कार और कर्ण-संस्कार निकलते हैं। कोटी-संस्कार विषुवांश-फलकी तरह यदि सायन ग्रह और शर-केन्द्र एक गोलीय हों तो समपादमें धन और विषम पादमें ऋण होता है। और यदि वे भिन्न गोलीय हों तो उक्त संस्कार इसके विपरीत अर्थात् सममें ऋण और विषममें धन किया जाता है। मेषादिको उत्तर गोलीय और तुलादिको दाक्षिण गोलीय कहते हैं। कर्ण संस्कार सदा शरकी दिशामें रहता है।

उदाहरण। स्पष्ट चन्द्र रा. २। १४। ४३। ३४ में अयनांश २३। ४। १४ मिलाया तो सायन चन्द्र रा. ३। ७। ४७। ४८ हुआ। इसका भुज रा. २। २२। १२। १२ = अंशादि ८२। १२। १२ हुआ। इसका कोटी-गुणक ५९ और कर्ण-गुणक १००२ हुआ। इनसे कलादि शर ३१। १२ को अलग-अलग गुण, गुणन-फलोंमें १००० का भाग देनेसे कोटी-संस्कार कलादि १। ५० और कर्ण-संस्कार कलादि ३१। १६ हुआ। एक गोलीय शर-केन्द्र तथा सायन चन्द्रके समपादमें होनेसे कोटी-संस्कार धन और शर उत्तर होनेसे कर्ण संस्कार भी उत्तर हुआ।

(३८) विषुवांश लाना। स्पष्ट ग्रहमें कोटी-संस्कार करनेसे कोटी-संस्कृत ग्रह बनता है। पुनः कोटी-संस्कृत ग्रहको स्पष्ट सूर्य-मान उसका विषुवांश नियम ३० के द्वारा जो निकले, वही ग्रहका विषुवांश होता है।

उदाहरण। स्पष्ट चन्द्र रा. २।१४।४३। ३४ में उक्त धनकोटी-संस्कार जोडनेसे कोटी संस्कृत चन्द्र रा. २। १४। ४५। २४ हुआ। इसमें अयनांश २३। ४। १४ मिलाया, सायन को. सं. चन्द्र रा. ३। ७। ४९। ३८ हुआ। जिसका भुज रा. २। २२।१०।२२= अंशादि ८२। १०। २२ हुआ। इसका विषुवांश-फल कलादि ४१। ३० हुआ। सायन ग्रह समपादमें है; अतः इस फलको सायन को. सं. चन्द्रमें जोडा तो चन्द्रका विषुवांश रा. ३। ८। ३१। ८ हुआ।

(३९) क्रान्ति लाना। सायन कोटी-संस्कृत ग्रहके भुजांश परिमित नियम २९ के द्वारा क्रान्ति साधन कर, यदि क्रान्ति और कर्ण-संस्कार दोनों एक दिशाके हों तो उन्हें जोड देनेसे और यदि वे भिन्न दिशाके हों तो दोनोंका अन्तर लेनेसे स्पष्ट क्रान्ति आती है। जैसे को. सं. सायन चन्द्रका भुजांश ८२ । १० । २२ है, जिसकी क्रान्ति नियम २९ के द्वारा अंशादि २३ । ११ । ४४ आई। सायन ग्रह मेषादि है; अतः क्रान्ति उत्तर हुई और कर्ण-संस्कार भी उत्तर है। इस कारण दोनोंको जोडा तो स्पष्ट क्रान्ति (अंशादि २३ । ११ । ४४) + (कलादि ३१ । १६) = अंशादि २३ । ४३ । ० हुई। यह उत्तर क्रान्ति आई। जहाँ दोनोंका अन्तर लेना हो, वहाँ बडेमेंसे छोटेको घटा बडेकी दिशावत् शेष तुल्य क्रान्ति होगी।

(४०) लग्न (The Ascendant or the Rising Sign)। ज्योतिः-शास्त्रमें लग्न एक अत्यन्त प्रसिद्ध वस्तु है; अतः इसका स्वरूप बतलाना परमावश्यक है। पृथ्वीके दैनिक पूर्वाभिमुख आवर्त्तनके कारण सारा राशि-चक्र पृथ्वीकी पश्चिमाभिमुखी प्रदक्षिणा करता-सा जान पडता है, जिससे सभी राशियाँ एकके पश्चात् दूसरी प्राच्य क्षितिज पर उदित हुआ करती हैं। किसी इष्टकालमें जो राशि पूर्व क्षितिजमें आकर लगती है, वही उस कालकी लग्न कही जाती है। यदि राशि-चक्रका आश्रय-भूत क्रान्ति-वृत्त नाडी वृत्तके साथ समतल वा समानान्तर रहता तो सभी राशियोंका उदय मान एकही अर्थात् ५ घटियाँ होतीं; क्योंकि ६० घटियोंमें १२ राशियोंका उदय हुआ करता है। पर क्रान्ति-वृत्त नाडी-वृत्तको अंशादि २३ । २८ के कोणपर काटता है, जिसका यह फल होता है कि राशियोंके उदय-मानमें न्यौनाधिक्य हो जाता है। जो राशियां क्रान्ति-पातोंके जितना समीप हैं, उनके उदय होनेमें उतना ही कम समय लगता है और जो दूर हैं, उनका उदय-मान अधिक होता है। जिस राशिको प्राच्य क्षितिजके ऊपर निकल आनेमें जितना समय लगता है, वही उस लग्नका उदय-मान है। यदि प्राच्य-क्षितिजमें लगा हुआ इष्ट कालिक लग्न सम्बन्धी

क्रान्ति-वृत्तस्थ बिन्दु-विशेष वासन्त-क्रान्ति-पातसे नापा जाये तो वह सायन और यदि मेषारम्भसे नापा जाये तो वह निरयन लग्न होता है। निरक्ष देशोंमें जो राशियोंके उदय-मान होते हैं, उनसे भिन्न वे साक्ष देशोंमें हुआ करते हैं; कारण कि अक्षांश-वश राशि-चक्रके झुकावमें भिन्नता आती है। यह झुकाव क्षितिज-सम्बन्धी है।

(४१) निरक्ष (लङ्का) में सायन लग्नोंका उदय-मान निकालना। पहिली राशिके विषुवांशमें ६ का भाग देनेसे मेष लग्नका घट्यादि उदय-मान आता है। पश्चात् दो राशियोंके विषुवांशमें ६ का भाग देनेसे जो घट्यादि लब्धि मिले उसमेंसे मेष लग्नका उदय-मान निकाल लेनेसे केवल वृष लग्नका उदय-मान शेष रह जाता है। इसी प्रकार तीन राशियोंके विषुवांशको ६ से भाजित कर घट्यादि लब्धिमेंसे मेष और वृषके उदय-मानोंके योग-फलको घटा देनेसे मिथुन लग्नका उदय-मान आता है। जो उदय-मान मेषादि ३ लग्नोंके होते हैं, वे ही उलटे क्रमसे कर्कादि ३ लग्नोंके होते हैं। फिर जो मेषादि ६ लग्नोंके उदय-मान हैं, वे ही उसी क्रमसे तुलादि ६ लग्नोंके हैं।

उदाहरण। प्रथम राशि (३० अंशों) के विषुवांश अंशादि २७ ५४। ३१ में ६ का भाग दिया तो घट्यादि ४। ३९। ५ = पलादि २७९। ५ मेषका उदय-मान हुआ। दो राशियों (६० अंशों) के विषुवांश अं. ५७। ४९। २ ÷ ६ = घ. ९। ३८। १० घ. ९। ३८ । १० – घ. ४। ३९। ५ = घ. ४। ५९। ५ = पलादि २९९। ५, यह वृष लग्नका उदय-मान हुआ। फिर तीन राशियों (९० अंशों) का विषुवांश उतना ही है; अतः अं. ९० ÷ ६ = घ. १५। ०। ०। घ. १५। ०। ० – घ. ९। ३८। १० = घ. ५। २१। ५० = पलादि ३२१। ५०, यह मिथुन लग्नका उदय-मान हुआ।

लङ्कोदय-मान-चक्र ।

लग्न	उदय-मान
मेष	२७८। ५
वृषभ	२९९। ५
मिथुन	३२३।५०
कर्क	३२३।५०
सिंह	२९९। ५
कन्या	२७८। ५
तुला	२७८। ५
वृश्चिक	२९९। ५
धनु	३२३।५०
मकर	३२३।५०
कुंभ	२९९। ५
मीन	२७८। ५

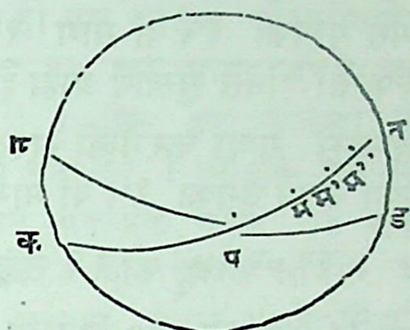
(४२) स्वदेशमें लग्नोंका उदय-मान निकालना । मेषादि ३ लग्नोंके लङ्कोदय-मानमें स्वदेशके ३ चरखण्डोंको क्रमसे घटावे, तथा कर्कादि ३ लग्नोंके लङ्कोदय-मानमें उक्त चरखण्डोंको उत्क्रमसे जोडनेपर मेषादि ६ लग्नोंके स्वदेशमें उदय-मान आते हैं । फिर मेषादि ६ लग्नोंके मानोंको उत्क्रमसे स्थापन करनेसे तुलादि ६ लग्नोंके मान निकल आते हैं ।

उदाहरण । काशीके ३ चरखण्ड क्रमशः पलादि ५६ । ६, ४४ । ४६ और १८ । ४२ हैं । इन्हें लङ्कोदयके पूर्व्वोक्त मानोंमें उक्त रीतिसे ऋण, धन करनेसे काशीमें निम्न-लिखित लग्नमान आये । ये सायन हैं ।

॥ काश्युदय-मान-चक्र ॥

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या
२२२।५९	२५४।१९	३०३।८	३४०।३२	३४३।५१	३३५।११
मीन	कुंभ	मकर	धनु	वृश्चिक	तुला

(४३) निरयन-लग्नका स्वरूप ।



इस चित्र में नड=नाडी वृत्त;कत=क्रान्ति-वृत्त; प=वासन्त क्रान्ति पात; म=मेषारम्भ; मप=अयनांश; पम=सायन मेष और मम''=निरयण मेष =मम'+ म' म'' । किन्तु मम'=पम'−मप =सायन मेष−अयनांश= ३०°−२३° । ४' । १४'' =अंशादि ६ । ५५ । ४६ । और म' म''= मम'' − मम'= निरयण मेष अर्थात् ३०° − ६° । ५५' ४६''= अंशादि २३।४।१४ (अयनांश)। किन्तु म' म'' सायन वृषका खण्ड है क्योंकि सायन मेष म' बिन्दु पर समाप्त हो जाता है । अतः निरयन मेष मम '' = मम' + म'म'' = अंशादि ६ । ५५ । ४६ । सायन मेषका खण्ड+अंशादि २३ । ४ । १४ (सायन वृषका खण्ड)। इससे फल यह निकला कि प्रत्येक निरयन लग्नके दो खण्ड होते हैं, जिसमें पहला तो अपने सायन स्वरूपका खण्ड है जो ३० अंशोंमेंसे अयनांशको घटा देनेसे आता है और दूसरा आगामी सायन लग्नका खण्ड है, जो अयनांश परिमित है ।

(४४) निरयन-लग्नका मान लाना । अपने सायन मानको प्रथम खण्डसे और आगामी लग्नके सायन मानको दूसरे खण्डसे अलग-अलग गुणकर और दोनों गुणन-फलोंको जोडकर योग-फलमें ३० का भाग देनेसे इष्ट लग्नका पलादि निरयन मान निकलता है ।

(क) प्रथम खण्डसे गुणा करनेकी सरल विधि यह है कि, मानको ७ से गुणकर गुणन-फलमेंसे मानका १९ वां भाग निकाल

देवे । जैसे सायन मेषके मान २२३ को ७ से गुणा किया तो १५६१ हुआ । इसमेंसे मानका १५ वां भाग १५ निकाल दिया तो १५४६ हुआ । स्वल्पान्तर होनेसे सुखार्थ ग्राह्य है ।

(ख) दूसरे खण्डसे गुणा करनेकी सरल रीति यह है कि, मानको २३ से गुणकर उसमें उसका १५ वां भाग मिला देवे । जैसे वृषका मान २५४ । १९=२५४$\frac{१}{३}$ को २३ स गुण किया तो ५८४९ हुआ । इसमें मानका १५ वां भाग १७ मिलाया तो ५८६६ हुआ ।

(४५) निरयन मेषका मान निकालना । उक्त दोनों गुणन-फलोंको जोड योग-फल ७४१२ में ३० का भाग दिया तो निरयन मेषका मान पलादि २४७ । ४=घ. ४ । ७ । ४ आया । इसी प्रकार निरयन वृषका मान जाननेके लिये सायन वृषके मान २५४$\frac{१}{३}$ को प्रथम खण्डसे गुणाकिया तो १७६३ हुआ और सायन मिथुनके मान ३०३ । ८ = ३०३$\frac{२}{१५}$ को दूसरे खण्डसे गुणा किया तो ६९९२ हुआ । दोनों गुणन-फलोंको जोड़ योगफल ८७५५ में ३० का भाग दिया तो निरयन वृषका मान पलादि २९१ । ५० = घ. ४।५१।५० हुआ । इसी प्रकार अन्य निरयन लग्नोंका भी मान निकाल लेवे और भिन्न-सम्बन्धी कमी-पूरणार्थ सबोंमें एकएक विपल जोड देवे ।

॥ निरयण काश्युदयमान ॥

मेष	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुंभ	मीन
४ । ७ । ५	४ । ५१ । ५१	५ । ३१ । ५५	५ । ४३ । ३	५ । ३७ । ९	५ । ३५ । १२	५ । ४१ । ५१	५ । ४१ । १७	५ । ११ । ४५	४ । २५ । ३७	३ । ५० । १५	३ । ४३ । ०

(४६) इष्ट कालिक लग्न-साधन । इष्ट कालीन सायन सूर्य जिस राशिमें स्थित हो उस राशिके भोग्यांशको उसके उदय-मानसे गुण, गुणन-फलमें ३० का भाग देनेसे उस राशिका पलादि भोग्य-काल आता है । फिर इष्ट कालको पलादि बना उसमेंसे उक्त भोग्य कालको घटा देवे । जो शेष बचे उसमें आगेकी जितनी राशियोंके उदय-मान एक-एक करके घट सकें, उतनी राशियोंके उदय-मान घटा देवे । ऐसे घटाते जानेसे जो अन्तिम शेष बचे उसको ३० से गुणकर, गुणन-फलमें जिस राशिका उदय उक्त अन्तिम शेषमें नहीं घट सका था, उस राशिके उदयमानसे भाग देवे । जो अंशादि लब्धि मिले उसमें जिस राशिका उदय अन्तिम बार घटाया गया था उसकी संख्या मिलानेसे इष्टकालकी सायन-लग्न होती है, जिसमेंसे अयनांशको निकाल देनेसे स्पष्ट लग्न आती है ।

उदाहरण । ता० ८ जनवरी ई० स० १९३६, २ बजे दिन मध्यम कालकी लग्न जाननी है तो सूर्योदय घंटादि ६ । ५० । ५ से लेकर २ बजे दिन तक घंटादि ७ । ९ । ५५ = घटयादि १७ । ५४ । ४८ इष्ट काल हुआ । ६ बजे प्रातःकालका स्पष्ट सूर्य रा. ८ । २३ । ३० । ४ और गति कलादि ६१ । २३ है । ६ बजे प्रातःकालसे लेकर २ बजे दिनतक ८ घंटे = २० घटियां हुई । इतनी देरमें सूर्य कलादि २० । २८ आगे बढा । अतः इस चालनको उक्त स्पष्ट सूर्यमें जोडा तो इष्ट कालीन सूर्य रा० ८ । २३ । ५० । ३२ हुआ । इसमें अयनांश २३ । ४ । १४ मिलाया तो इष्ट कालीन सायन सूर्य ९ । १६ । ५४ । ४६ हुआ । सूर्य मकरस्थ है । मकरका भोग्यांश १३ । ५।१४ है । इसको मकरके उदय-मान ३०३ । ८ से गुणा किया तो ३९६७ । १० । २४ हुआ । इसमें ३० का भाग दिया तो मकरका भोग्य-काल पलादि १३२।१४ आया इष्ट काल घटयादि १७ । ५४ । ४८ = पलादि १०७४ । ४८ मेंसे उक्त भोग्य-काल घटाया तो शेष पलादि ९४२ । ३४ बचा । इसमें कुंभ, मीन और मेषके उदय मानोंको क्रमशः घटाया तो अन्तिम शेष पलादि २४२ । १७ बचा

जो वृषका भुक्त काल है । इसको ३० से गुणदिया तो गुणन-फल पलादि ७२६८ । ३० हुआ । इसमें वृषका उदय-मान २५४ । १९ से भाग दिया तो लब्धि अंशादि २८ । ३४ । ४३ आई । अन्तिमवार मेषका उदय-मान घटाया गया है, जिसकी संख्या १ है ; अतः सायन लग्न १ । २८ । ३४ । ४३ हुई, जिसमेंसे अयनांश निकाल देनेपर स्पष्ट लग्न रा. १ । ५ । ३० । २९ आई ।

(४७) लग्नसे इष्टकाल लाना । स्पष्ट सूर्यका मालूम रहना जरूरी है । सूर्य और लग्न दोनोंको सायन करे । फिर जिस राशिमें सायन सूर्य हो उसके भोग्यांशोंको उस राशिके उदय-मानसे गुण, गुणन-फलमें ३० का भाग देकर, उस राशिका भोग्य-काल पूर्ववत् निकाल लेवे । तत्पश्चात् सायन लग्न जिस राशिमें हो उसके भुक्तांशोंको उसके उदय-मानसे गुण, गुणन-फलमें ३० का भाग देकर उस राशिका भुक्त काल मालूम करे । फिर उक्त भोग्य-कालमें इस भुक्त कालको जोडकर योग-फलमें सायन सूर्य और सायन लग्नके बीचमें जितनी पूर्ण राशियां हों उनके उदय-मानोंको मिला देनेसे पलादि इष्ट काल मालूम होता है जिसे ६० से भाजित करनेपर घटचादि इष्टकाल आता है ।

उदाहरण । स्पष्ट सूर्य रा. ८ । २३ । ५० । ३२ और स्पष्ट लग्न १ । ५ । ३० । २९ है । इनमें अयनांश २३ । ४ । १४ मिलाया तो ये क्रमशः ९ । १६ । ५४ । ४६ और १ । २८ । ३४ । ४३ हुए । मकरस्थ सूर्यके भोग्यांश १३ । ५ । १४ को मकरके उदय-मान ३०३ । ८ से गुण, गुणन फलमें ३० का भाग दिया तो मकरका भोग्य-काल पूर्ववत् पलादि १३२ । १४ आया । फिर वृष लग्नके भुक्तांश २८ । ३४ । ४३ को वृषके उदयमान २५४ । १९ से गुण, गुणन-फलमें ३० का भाग देनेसे वृषका भुक्त-काल पलादि २४२ । १७ मिला । भोग्य काल और भुक्त कालको जोडा तो पलादि ३७४।३१ आया । फिर इसमें सायन सूर्य और सायन लग्नके मध्यस्थ कुम्भ, मीन और मेषके उदय-मान मिलाये तो पलादि इष्ट

काल १०७४।४८ आया। इसे ६० से भाजित करनेपर घट्यादि इष्ट काल १७।५४।४८ हुआ।

(४८) काशीके तिथि-पत्रको अन्य देशीय बनाना। काशी और इष्ट देशके दिन-मानका अन्तरार्द्ध चरान्तर होता है। यदि इष्ट देशका दिनमान अधिक हो तो चरान्तर धन और कम हो तो चरान्तर ऋण होता है। तत्पश्चात् काशीसे इष्ट देशका देशान्तर पल निकाले। काशीसे पूर्वके देशका देशान्तर-पल धन और पश्चिमके देशका देशान्तर-पल ऋण होता है। चरान्तर और देशान्तरका परस्पर संस्कार करनेसे फल आता है, इस फलका संस्कार उसके चिह्नानुसार काशीके तिथ्यादिकोंमें धन वा ऋण करनेसे इष्ट देशके तिथ्यादि मालूम होते हैं।

उदाहरण। काशीके सम्वत् १९७१ के तिथिपत्रमें १० वीं फरवरीका दिन-मान घ. २७।३७ है और उस तारीखको कलकत्तेका दिन-मान सुखार्थ स्थूल रीतिसे निकाला तो घ. २७। ५६ हुआ, दोनोंका अन्तरार्द्ध चरान्तर १० पल हुआ। कलकत्तेका दिन-मान अधिक है; अतः चरान्तर धन हुआ। कलकत्ता काशीसे पूर्व है अतः उसका देशान्तर ५९ पल धन हुआ। चरान्तर और देशान्तरका परस्पर संस्कार किया तो फल घ. १।९ धन हुआ, काशीमें १० वीं फरवरीको एकादशी तिथि घटचादि २१।४३ है। इसमें धन फल घ. १।९ को जोडा तो उस तारीखको कलकत्तेमें एकादशी तिथि घ. २२।४८ हुइ। इसी प्रकार नक्षत्र, योग, करण, ग्रह-संक्रमण तथा चन्द्रग्रहणके स्पर्शादिकालको इष्ट देशीय बना लेवे। पर सूर्य-ग्रहणके स्पर्शादि कालोंको इष्ट देशमें जाननेके लिये स्वतंत्र गणित करना चाहिये; क्योंकि संभव है कि इष्ट देशमें ग्रहण न लगे, वा लगे भी तो ग्रासमें कमी-वेशी हो, जिस दशामें काशीके स्पर्शादि कालोंमें केवल फल-संस्कार करनेसे काम नहीं चल सकता।

इस प्रसङ्गमें ग्रहोंका इष्ट देशीय-करण भी बतलाना आवश्यक है। काशीके तिथि-पत्रमें जिस अवधिके स्पष्ट ग्रहको इष्ट देशीय

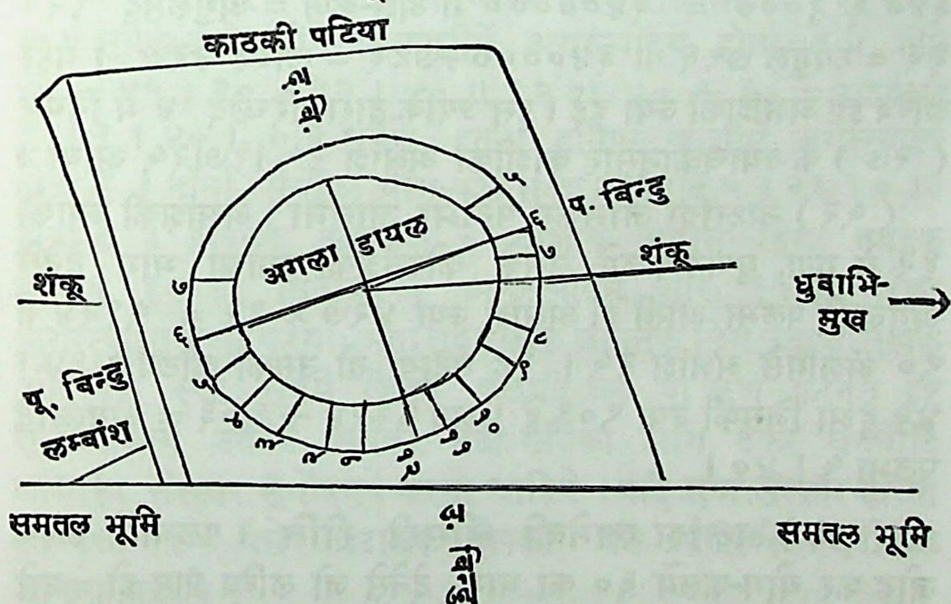
बनाना हो उस अवधिकी अंगरेजी तारीखका पूर्वोक्त फल निकाले फिर उस फल परिमित स्पष्ट ग्रहोंका चालन उनकी गति द्वारा मालूम करे। यदि फल धन हो तो चालनको मार्गी ग्रहमेंसे घटावे और वक्री ग्रहमें जोडे, पर यदि फल ऋण हो तो चालनको विपरीत संस्कार करे अर्थात् मार्गी ग्रहमें जोडे और वक्र ग्रहोंमें घटावे तो वह इष्ट देशीय बनता है।

उदाहरण। काशीके सम्वत् १९७१के तिथिपत्रमें ७ वीं फरवरीकी अवधिके स्पष्ट ग्रहोंको कलकत्तेके ग्रहोंमें परिणत करना है तो फल घ. १।९ धन हुआ। सूर्य-गति क. ६०।४१ है। उक्त फल-परिमित सूर्य चालन क. १ । ६ को फलके धन होनेसे सदा मार्गी स्पष्ट सूर्य रा. ९। २४ । ४०। ४४ घटाया तो कलकत्तेमें स्पष्ट सूर्य रा. ९।२४। ३९। ३८ हुआ। इसी प्रकार अन्यग्रहोंकोभी इष्ट देशीय बना लेवे। इस प्रकार बने ग्रह स्वदेशमें काशी-तुल्य इष्ट कालके होंगे। अथवा फल संस्कार काशीके इष्टकालमें करनेसे काशीकेही ग्रह इष्ट देशमें संस्कृत इष्ट कालके होंगे।

(४९) धूप घडी बनाना। काठकी एक दोनों तरफ समतल पटिया लेकर उसपर एक वृत्त खींच, वृत्तमें पूर्वापर और दक्षिणोत्तर रेखाओंको बनावे। वृत्तके उत्तरार्द्धको १२ तुल्य भागोंमें बाँटे। उत्तर बिन्दुपर १२ और पश्चिम बिन्दुसे प्रारम्भकर क्रमशः ६, ७, ८, ९, १० और ११ लिखे। इसी प्रकार पूर्व बिन्दुसे प्रारम्भ कर क्रमशः ६, ५, ४, ३, २ और १ लिखे। येही १२ भाग जो आपसमें बराबर हैं १२ घंटोंके बोधक हैं। पर दिन सर्वदा १२ घंटोंसे सीमित नहीं रहता। वह १२ घंटोंसे बाहरभी जाता है। अतः कमसे कम काशीके अक्षांशमें धूप-घडी द्वारा समय मालूम करनेके लिये पश्चिम और पूर्व बिन्दुओंसे दक्षिणकी ओर एक-एक भाग और बनाकर उनपर क्रमशः ५ और ७ लिख देवे। अब १४ घंटोंके चिह्न होगये। प्रत्येक भागको ६० तुल्य भागोंमें बाँटनेसे मिनिट मालूम होंगे। यही धूप-घडीका अगला डायल हुआ। फिर एक ऐसाही और डायल पटियाके दूसरे तरफ इस प्रकार बनावे कि

उसका केन्द्र और उसके चौदहों अङ्कोंके स्थान ठीक अगले डायलके केन्द्र और उसके चौदहों अंकोंके स्थानके आमने-सामने रहे। तत्पश्चात् दोनों डायलोंके केन्द्रोंमें एक आर-पार छिद्रकर उसमें दोनों ओर निकली हुई एक लोहेकी पतली कमानी लगा देवे। यही कमानी दोनों ओर शंकुका काम करेगी। अब पटियाको समतल पृथ्वीपर इस प्रकार गाड देवे कि उसका अगला डायल ठीक उत्तरकी ओर और पिछला डायल दक्षिणकी ओर रहे और वह स्वयं भूतल पर दक्षिणकी ओर लम्बांश परिमित झुकी रहे। पटियाको इस प्रकार गाड देनेपर उसके अगले डायलका शंकु ध्रुवाभिमुख होगा। सूर्यके उत्तरगोलीय होनेपर अगला डायल और दक्षिणगोलीय होनेपर पिछला डायल अपने शंकुकी छायाके द्वारा समय बतावेगा। वह छाया पूर्वाह्नमें डायलके पश्चिम भागमें और अपराह्नमें उसके पूर्व भागमें फिरेगी। ये सब बातें निम्नलिखित चित्रसे स्पष्ट मालूम होंगी। ९० अंशोंमेंसे अक्षांशको घटा देनेसे लम्बांश (Colatitude) आता है, जैसे काशीका लम्बांश ९०-२५। १८=६४। ४२ है—

धूपघडीका चित्र।



नोट–विद्वानोंने धूपघडी बनानेकी और भी कई विधियां बतलाई हैं; परन्तु वे सब जटिल और दुष्कर हैं। यहाँ पर जो विधि बतलाई गई है वह पूर्णतः सिद्धान्तानुकूल होती हुईभी अतिही सरल है, जिसे सभी अपने-अपने घर बना सकते हैं। वृत्तार्द्ध (१८० अंशों) को तुल्य १२ भागोंमें बाँटा गया है जिससे प्रत्येक भागमें १५ अंश हैं। पृथ्वी २४ घंटोंमें ३६० अंश आवर्त्तन करती है; अतः शंकुकी छाया १ घंटेमें १५ अंश=१ भाग चलती है।

(५०) अक्षकर्ण (पलकर्ण) का लाना। पलभाके वर्गमें १४४ जोड योग-फलका वर्गमूल लेनेसे अक्षकर्ण आता है। जैसे काशीकी पलभा ५ । ४० है। इसके वर्ग ३२ । ६ । ४० में १४४ जोड, योग-फल १७६ । ६ । ४० का वर्गमूल लिया तो अक्षकर्ण १३ । १६ मिला।

(५१) अक्षांश लानेकी सूक्ष्म रीति। पलभा (अक्षभा) को १००० से गुण, गुणन-फलमें अक्ष-कर्णका भाग देनेसे अक्षांशकी ज्या आती है; जैसे पलभा अंगुलादि ५ । ४०= व्यंगुल ३४० ॥ ३४० × १००० = ३४०००० ॥ अक्ष-कर्ण = अंगुलादि १३ । १६ = व्यंगुल ७९६ ॥ ३४००००÷७८६ = लब्धि ४२७ । यही लब्धि इष्ट अक्षांशकी ज्या हुई। इस ज्याके द्वारा परिच्छेद ४ में नियम (२७) के ज्याचक्रानुसार काशीका अक्षांश २५ ।१७।२५ आया।

(५२) अक्षांश जानकर पलभा जानना। अक्षांशकी ज्याको १२ से गुण, गुणन-फलमें उसके कोटचंशकी ज्याका भाग देनेसे अंगुलादि पलभा आती है; अक्षांश ज्या ४२७ × १२ = ५१२४ ॥ ९० अंशामेंसे अक्षांश २५। १८ घटाया तो उसका कोटचंश ६४। ४२ हुआ जिसकी ज्या ९०३ है। अब ५१२४ ÷ ९०३ = अंगुलादि पलभा ५ । ४० ।

(५३) अक्षांश लानेकी तीसरी रीति। पलभामें ४१० जोड कर योग-फलमें ६० का भाग देनेसे जो लब्धि प्राप्त हो, उसे

अक्षकर्णमें मिलानेसे हार आता है । फिर पलभाको ९० से गुण कर गुणन-फलमें उक्त हारका भाग देनेसे लब्धि तुल्य अक्षांश आता है। जैसे पलभा ५ । ४० में ४१० जोड, योग-फल ४१५ । ४० में ६० का भाग दिया तो लब्धि ६ । ५५ हुई । इसे अक्षकर्ण १३ । १६ में जोडा तो हार २० । ११ हुआ । फिर पलभा ५ । ४० को ९० से गुणा किया तो गुणन-फल ५१० हुआ । इसमें उक्त हारका भाग दिया तो लब्धि-तुल्य अक्षांश २५ । १६ आया ।

(५४) पलभा द्वारा अगस्त्यके उदय और अस्तका समय मालूम करना । पलभाको ८ से गुणाकर गुणन-फलमें ९८ को जोड देनेसे अंशादि आते हैं । फिर इस अंशादिमें ३० का भाग देनेसे जो राश्यादि मिले उसके तुल्य जब सूर्य हो तो अगस्त्यका उदय होता है । और उस अष्ट-गुणित पलभाको ७८ मेंसे घटा शेषमें ३० का भाग देनेसे जो राश्यादि मिले, उसके तुल्य जब सूर्य हो तब अगस्त्यका अस्त होता है ।

उदाहरण । पलभा ५ । ४० × ८ = ४५ । २० ॥ ९८ + ४५ । २० = १४३ । २० ॥ १४३ । २० ÷ ३० = राश्यादि ४ । २३ । २० । ० ॥ सूर्यके इतना होने पर काशीमें अगस्त्योदय होता है । फिर ७८ − ४५ । २० = ३२ । ४० ॥ ३२ । ४० ÷ ३० = राश्यादि १ । २ । ४० । ० ॥ सूर्यके इतना होनेपर काशीमें अगस्त्यास्त होता है । दोनों सूर्योंका योग-फल सर्वत्र राश्यादि ५ । २६ । ० । ० होता है । जबतक अयनांश २३ अंशोंके आसन्न रहेगा तबतक प्रतिवर्ष १० वीं सितम्बरको अगस्त्योदय और १६ वीं मईको अगस्त्यास्त हुआ करेगा; अतः सूक्ष्म काल जाननेके लिये उक्त तारीखके औदयिक स्पष्ट सूर्यमें जितने कलादि धन वा ऋण करनेसे इष्ट सूर्य आजाय उतनेमें सूर्यकी घटी गतिका भाग देकर घट्यादि लब्धिका संस्कार सूर्योदयमें करना चाहिये । यदि ऋण संस्कार हो तो लब्धिको ६० मेंसे घटाकर शेषको गत तारीखके घटी-पल जानना चाहिये ।

(५५) **सूर्यका मध्याह्न-कालीन नतांश मालूम करना ।** षष्ठ परिच्छेदके नियम (४०) के अनुसार सूर्यकी क्रान्ति और स्वदेशके अक्षांशका परस्पर संस्कार करनेसे उसका मध्याह्न-कालीन नतांश आता है । जैसे ता. ८ वीं जनवरी ई. स. १९३६ की सूर्य-क्रान्ति अंशादि २२ । २४ । ९ दक्षिण है और काशीका अक्षांश २५ । १८ भी दक्षिण ही है; अतः दोनोंका योग किया तो उस दिन सूर्यका मध्याह्न-कालीन नतांश अंशादि ४७ । ४२ हुआ । यदि मध्याह्न-कालीन सूर्यको स्पष्ट कर उसकी क्रान्तिसे काम लिया जाये तो और भी सूक्ष्म फल मिले ।

(५६) **सूर्यका उक्त नतांश मालूमकर सम्बन्धित तारीखकी मध्याह्नकालीन शंकु-छायाका लाना ।** नतांशको अक्षांश कल्पनाकर नियम(५२) के द्वारा जो पलभा मिले वही उक्त तारीखकी मध्याह्न-कालीन शंकु-छाया होगी । जैसे नतांश (अक्षांश) ४७ । ४२ की ज्या ७३९ को १२ से गुण, गुणन-फल ८८६८ में कोज्यंश ४२ । १८ की ज्या ६७३ का भाग दिया तो मध्य छाया अंगुलादि १३ । ११ हुई ।

(५७) **छायासे समय मालूम करना ।** इष्ट कालीन छायामेंसे गणितागत मध्याह्न-कालीन छाया घटा, शेषमें शंकु जोड, योग-फलसे शंकु-गुणित दिनार्द्धमें भाग देनेसे पूर्वाह्न वा अपराह्नके क्रमशः गत वा ऐष्य घट्यादि मालूम होंगे । फिर इन्हें घंटादिमें परिणतकर सूर्योदय वा सूर्यास्तके घंटादिमें क्रमशः जोडने वा घटानेसे घडीका समय मालूम होगा; जैसे इष्ट छाया २० । १७ मेंसे मध्य छाया १३ । ११ घटा, शेष ७ । ६ में शंकु १२ मिलाया तो योग-फल १९ । ६= ११४६ हुआ । फिर योग-फल ११४६ से शंकु १२ × दिनार्द्ध १३ । ११= १५८ । १२=९४९२ में भाग दिया तो गत वा ऐष्य घट्यादि ८ । १७=घंटादि ३ । १९ मिले । सूर्योदयका स्पष्ट घंटादि ६ । ४४+३ । १९= स्पष्ट घंटादि १० । ३ वा सूर्यास्तका स्पष्ट घंटादि

५।१६–३।१९=स्पष्ट घंटादि १।५७। फिर इनमें काल समीकरणका संस्कार करनेसे पूर्वाह्न वा अपराह्नमें, जिस समयकी इष्ट छाया ली गई हो उस समयके, मध्यम (जेबघडीके)घंटादि मालूम होंगे। निम्न-लिखित चक्रमें सर्वसाधारणकी सुविधार्थ प्रत्येक अंगरेजी महीनेकी १, ११ और २१ तारीखकी मध्यम छाया, जो काशीके अक्षांशसे सम्बन्ध रखती है, दी गई है। किसी अन्य तारीखकी मध्य छाया ३ परिच्छेदके नियम १६ द्वारा निकाल लेवे।

॥ मध्यछाया चक्र ॥

तारीख	जनवरी	फरवरी	मार्च	एप्रिल	मई	जून
१	१३।३१	११। ४	७।४५	४।३२	२।१०	०।४०
११	१२।५८	९।५७	६।३९	३।४०	१।३४	०।२८
२१	१२।१०	८।४७	५।३७	२।५३	१। ४	०।२३

तारीख	जुलाई	अगस्त	सितंबर	अक्तूबर	नवंबर	दिसंबर
१	०।२७	१।३१	३।५०	६।३१	९।५८	१२।५४
११	०।४०	२। ७	४।३०	७।३६	११। ५	१३।२२
२१	१। १	२।४९	५।२९	८।४३	१२। ६	१३।५८

(५८) उन्मण्डल। पूर्वापर स्वस्तिकों और दक्षिणोत्तर ध्रुवोंमें प्रोतवृत्तिका नाम उन्मण्डल है। यह निरक्ष (विषुवद्वृत्तस्थदेश) का क्षितिज है जो उत्तर गोलार्द्धमें उत्तर क्षितिजसे और दक्षिण गोलार्द्धमें

दक्षिण क्षितिजसे स्वदेशके अक्षांश-तुल्य उठा रहता है और एक गोलार्द्धमें जितना स्वदेशके क्षितिजसे उन्नत होता है दूसरे गोलार्द्धमें उतना ही स्वदेशके क्षितिजसे नत होता है । यह उन्मण्डल दिन और रातके घटने-बढनेका कारण है ।

(५९) **पूर्वापरसूत्र** । पूर्वापर स्वस्तिकोंको मिलानेवाली रेखाको पूर्वापर सूत्र कहते हैं । नाडी-वृत्त पूर्वापर स्वस्तिकोंपर क्षितिजसे मिला रहता है ।

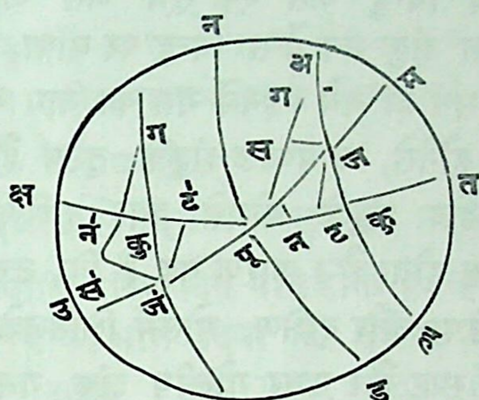
(६०) **अहोरात्र-वृत्त** । नाडी-वृत्तसे उत्तर किम्वा दक्षिण ग्रहकी इष्ट क्रान्तिके समान दूरी पर जो वृत्त नाडी-वृत्तके समानान्तर खींचा जाये उसे अहोरात्र-वृत्त कहते हैं । इस वृत्तके व्यासार्द्धको द्युज्या कहते हैं । जो इष्ट-क्रान्तिकी कोटिज्याका दूसरा नाम है । ग्रह-नक्षत्रादि सभी अपने-अपने अहोरात्र-वृत्तके द्वारा पृथ्वीके दैनिक आवर्त्तनके कारण आकाशमें पूर्वसे पश्चिमकी ओर चलतेसे दीख पडते हैं । इस वृत्तको उदयास्त वृत्त भी कहते हैं ।

(६१) **उदयास्त बिन्दु और उदयास्त-सूत्र** । पूर्वक्षितिजके जिस बिन्दुपर ग्रहका उदय होता है और पुनः पश्चिम क्षितिजके जिस बिन्दुपर उसका अस्त होता है, उन दो बिन्दुओंको क्रमशः उदयास्तबिन्दु और उन्हें मिलानेवाली रेखाको उदयास्त सूत्र कहते हैं ।

(६२) **उन्मण्डल बिन्दु** । जिन दो बिन्दुओंपर अहोरात्र-वृत्त उन्मण्डलको एक वार पूर्वमें और दूसरी वार पश्चिममें काटता है उन्हें उन्मण्डल बिन्दु कहते हैं । दोनोंको मिलानेवाली रेखाका नाम उन्मण्डल-सूत्र है ।

(६३) **कुज्या और चरज्या** । उदय-बिन्दु और पूर्वोन्मण्डलबिन्दुके एवं अस्तबिन्दु और पश्चिमोन्मण्डलबिन्दुके बीचमें अहोरात्र-वृत्तका जो खण्ड रहता है उसकी ज्याको कुज्या कहते हैं । यह

द्युज्या-वृत्तमें रहती है। यह १००० के व्यासार्द्धवाले वृत्तमें लेजानेपर चरज्या हो जाती है।



नोट—इस चित्रमें पूर्वोक्त सभी पदार्थ स्पष्ट हैं। क्षत = क्षितिज; उपूम=उन्मण्डल; नड=नाडी-वृत्त; अह= अहोरात्रवृत्त पू=पूर्वस्वास्तिक कु = उदय-स्थान; ज = पूर्वोन्मण्डल बिन्दु; चाप कुजकी ज्या= कुज्या; क्षअत = ध्रवप्रोत दक्षिणोत्तर-वृत्त जो खमध्यसे जाता है इत्यादि।

(६४) पूर्व किम्वा पश्चिमके उन्मण्डल-बिन्दुसे क्षितिज-तलपर जो लम्ब गिराया जाये उसे उन्मण्डल-शंकु कहते हैं। ऊपरके चित्रमें जट पूर्वका उन्मण्डल-शंकु है।

(६५) अग्रा। पूर्वमें पूर्व-स्वस्तिक और उदय-बिन्दुके, इसी प्रकार पश्चिममें पश्चिम स्वस्तिक और अस्त-बिन्दुके मध्यमें जो क्षितिज खण्ड है उसकी ज्याका नाम अग्रा है। ऊपरके चित्रमें क्षितिजखण्ड पूकुकी ज्या अग्रा है। इसकी दिशा क्रान्तिकी दिशावत् होती है।

(६६) शङ्कु और यष्टि। स्वाहोरात्र-वृत्तस्थ ग्रह-बिम्बसे क्षितिज-तल पर गिराया हुआ लम्ब शंकु कहलाता है। जैसे नियम

६३ के चित्रमें ग्रह बिम्ब ग से क्षितिज-तल क्षतपर गिराया हुआ लम्ब गन उक्त ग्रहका शंकु है। इस शंकुको दो खण्ड करके साधते हैं। उन्मण्डल सूत्रस्थ बिन्दु जसे एक सूत्र जस जो क्षितिज-तलके समानान्तर है, उक्त शंकु गन में स बिन्दु पर बाँधा, जिससे शंकुके दो खण्ड गस और सन हो गये। इनमें गस का नाम यष्टि है और सन जटके समानान्तर होनेसे, उन्मण्डल-शंकुके तुल्य है। उत्तर गोलमें यष्टि और उन्मण्डल शंकुके योगसे तथा दाक्षिण गोलम उनके अन्तरसे शंकु स्पष्ट होता है। कारण यह है कि, उत्तर गोलमें उन्मण्डल क्षितिजके ऊपर और दक्षिण गोलमें क्षितिजके नीचे रहता है, यह उक्त चित्रमें स्पष्ट है। उत्तर गोलीय शंकु गन = गस + सन और दाक्षिण गोलीय शंकु ग' न' = ग' स'—स' न'। यहाँ स' न'= ज' ट'=दाक्षिण गोलीय उन्मण्डल शंकु है।

(६७) अक्ष-क्षेत्र और मूल अक्ष-क्षेत्र। जो गोलीय त्र्यस्र अक्षांश वश गोलमें उत्पन्न होते हैं, उन्हें अक्ष-क्षेत्र कहते हैं। जैसे नियम ६३ के चित्रमें जपुकु, जटकु, जटपु गसज आदि उत्तर गोलमें और इन्हींके प्रतिबिम्ब भूत क्रमशः ज' पु' कु', ज' ट' कु' ज' ट' पु' ग' स' ज' आदि दाक्षिण गोलमे अक्ष क्षेत्र हैं। इन सभी अक्ष क्षेत्रोंका मूल वही अक्ष क्षेत्र है, जिसकी कोटि = १२ अंगुल; भुज पलभा और कर्ण = अक्ष कर्ण है। इसी मूल अक्ष क्षेत्रके अवयवोंके द्वारा अन्य सभी अक्ष क्षेत्रोंके अवयव निकाले जाते हैं।

(६८) ग्रहके दिनांश। ग्रहके प्रतिदिन पूर्व क्षितिजमें उदय होनेसे लेकर उसके पश्चिम क्षितिजमें अस्त होने तक वह नाडी मण्डलके जितने अंशोंको पृथ्वीके दैनिक आवर्त्तनके कारण भोग जाता है, उन्हें उस ग्रहके दिनांश कहते हैं। इन्हें लानेकी यह विधि है कि, इष्ट ग्रहके द्विगुणित चरांशोंको उत्तर गोलमें १८० अंशोंमें मिला देवे।

उदाहरण। ईसवी सन् १९३६ में २० वीं जूनके सूर्य-चरांश ११°। ४९'। ३७" हैं; अतः सूर्यके दिनांश = १८०°+२×११। ४९'। ३७" = २०३°। ३९' १४"। इसी प्रकार उस दिन चन्द्रके दिनांश = १८०° + २ × १०° । ५०'। ४६"= २०१° ।४१'। ३२"। दक्षिण गोलमें उल्टी क्रिया करे। अर्थात् द्विगुणित चरांशोंको १८० मेंसे घटावे।

(६९) दिनांशसे दिन-मान लाना। ग्रहके दिनांशोंमें ६ का भाग देनेसे घट्यादि लब्धि दिन मान होती है; सूर्यके दिनांश २०३। ३९'। १४" म ६ का भाग दिया तो सूर्यका दिन-मान घट्यादि ३३। ५६। ३२ आया। इसी प्रकार चन्द्रका दिन मान घ. ३३। ३६। ५५ आया। ध्यान रहे कि यह चन्द्रका तिथि-मान नहीं है, बल्कि यह उस कालका मान है, जो उसको उसदिन आकाश-मण्डलको पूर्व क्षितिजसे पश्चिम क्षितिजतक चलकर पार करनेमें लगा था।

नोट-मन्दगामी ग्रहोंका दिन-मान इस प्रकार निकाल लेनेमें कोई विशेष अन्तर नहीं पडता; पर चन्द्र जैसे द्रुतगामी ग्रहका इस प्रकार लाया हुआ दिनमान कुछ स्थूल हो जाता है; क्योंकि उसके तेज चलनेके कारण उसकी उदय-क्रान्तिसे उसकी अस्त-क्रान्ति भिन्न हो जाती है। अतः उक्त स्थूलताके निवारणार्थ उसकी उक्त दोनों क्रान्तियोंके चरांश लाकर दो दिनांश लावे; पुनः दोनों दिनांशोंसे दो दिन-मान निकाल कर उनके योग-फलका आधा करे।

(७०) सूर्य तथा किसी इष्ट-ग्रहके सूर्योदय-कालीन किम्वा सूर्यास्त-कालीन क्षितिजस्थ विषुवांशान्तर निकालना। सूर्योदय-कालीन सूर्य और इष्ट ग्रहको स्पष्ट कर दोनोंके विषुवांश और चरांश लावे। पुनः यदि वे उत्तर-गोलीय हों तो उनके विषुवांशोंमेंसे उनके चरांशोंको घटा देवे और यदि वे दक्षिण-गोलीय हों तो उनके विषुवांशोंमें उनके चरांशोंको जोड देवे; ऐसा करनेसे उनके विषु-

वांश क्षितिजस्थ हो जाते हैं। फिर उनके इस प्रकार लाये हुए क्षितिजस्थ विषुवांशोंका अन्तर लेनेसे उनका सूर्योदय-कालीन क्षितिजस्थ विषुवांशन्तर आता है। इसी प्रकार सूर्यास्त-कालीन सूर्य और ग्रहको स्पष्ट कर दोनोंके विषुवांश और चरांश लावे। पुनः उनके विषुवांशों और चरांशोंका विपरीत संस्कार करे, अर्थात् यदि वे उत्तर-गोलीय हों तो उनके विषुवांशों और चरांशोंका योग और यदि वे दक्षिण- गोलीय हों तो उनके—विषुवांशों और चरांशोंका अन्तर लेवे; ऐसा करनेसे उनके विषुवांश क्षितिजस्थ होते हैं। फिर उनके इन क्षितिजस्थ विषुवांशोंका अन्तर लेनेसे उनका अस्त-कालीन क्षितिजस्थ विषुवांशान्तर आता है।

उदाहरण। ईसवी सन् १९३६ में २० जूनके सूर्यास्तकालीन सूर्य और चन्द्रको स्पष्टकर, जैसा आगे अष्टम परिच्छेदमें चन्द्र-शृङ्गोन्नतिके प्रसंगमें किया गया है, उनके विषुवांशों और चरांशोंको निकाला तो सूर्यके विषुवांश रा. २।२८।५९।३९ और चरांश ११°। ४९'। ३७" तथा चन्द्रके विषुवांश रा. ३ । १६ । ५७ । १७ और चरांश १०°। ५०'। ४६" मिले। यह सूर्यास्त-काल है और दोनों उत्तर-गोलीय हैं; अतः सूर्य और चन्द्रके विषुवांशोंमें उनके चरांशोंको जोडा तो सूर्यके क्षितिजस्थ विषुवांश रा. ३ ।१० । ४९ । १६ और चन्द्रके रा. ३ । २७। ४८ ।३ आये। फिर दोनोंका अन्तर लिया तो उस दिन सूर्यास्त-कालीन सूर्य और चन्द्रके क्षितिजस्थ विषुवांशान्तर १६°। ५८'। ४७" मिले।

(७१) ग्रहका उन्नत-कालांश। यदि सूर्यसे ग्रह कम हो और सूर्योदय-काल हो तो उक्त विषुवांशान्तर ग्रहका, पूर्व-कपालमें सूर्योदय-कालीन उन्नतकालांश होगा। इसी प्रकार यदि सूर्यसे ग्रह अधिक हो और सूर्यास्त-काल हो तो उक्त विषुवांशान्तर ग्रहका, पश्चिम-कपालमें सूर्यास्त-कालीन उन्नतकालांश होगा; पर दोनों हालतोंमें शर्त यह है कि उक्त विषुवांशान्तर सम्बन्धित ग्रहके दिनांशार्द्धसे कम हों।

नियम ७० के उदाहरणमें चन्द्र सूर्यसे अधिक है; सन्ध्या (सूर्यास्त) काल है और उक्त विषुवांशान्तर चन्द्रके दिनार्द्धांश (नियम ६८) से कम है; अतः वह चन्द्रका सूर्यास्त-कालीन पश्चिम-कपालमें उन्नत-कालांश हुआ।

(७२) निरक्षीय उन्नत-कालांश। ग्रहके उन्नत-कालांशोंमेंसे यदि वह उत्तर-गोलीय हो तो उसके चरांशोंको निकाल देनेसे, पर यदि वह दक्षिण-गोलीय हो तो, उन्नत-कालांशोंमें चरांशोंको जोड देनेसे ग्रहका निरक्षीय उन्नत-कालांश आते हैं, पूर्वोक्त उदाहरणमें चन्द्र उत्तर-गोलीय है; अतः उसके उक्त उन्नत कालांशोंमेंसे उसके चरांशोंको निकाल देनेसे उसके निरक्षीय उन्नत कालांश ६।८'।१" मिले।

(७३) सूत्र और कला। ग्रहके नि० उ० कालांशोंकी ज्या सूत्र कहलाती है और वह त्रिज्या (१०००) वृत्तमें होती है। उसे ग्रहके द्युज्यावृत्त (अहोरात्र वृत्त) में परिणत करनेपर वह कला कही जाती है। चन्द्रके उक्त नि० उ० कालांशोंकी ज्या १०६ है, यह सूत्र हुआ। ईसवी सन् १९३६ में २० वीं जूनके दिन चन्द्रकी सन्ध्याकालीन क्रान्ति २१। ४०'। ३७" है। इसकी कोटिज्या (द्युज्या) ९२८ है। अतः उक्त सूत्र १०६ को ९२८ से गुण, गुणनफलमें १००० का भाग दिया तो कला ९८ हुई।

(७४) यष्टि। नियम ६३ का चित्र देखिये। अहोरात्र वृत्त-खण्ड गजकी ज्या कला है। यह कर्ण-रूप है और यष्टि गस कोटि-रूप है, अब गस को निकालनेके लिये अनुपात किया-यदि अक्ष कर्ण १३। १६ की कोटि १२ है तो कर्णाकार उक्त कलाकी कोटि क्या होगी ? इष्ट कोटि हुई $\frac{९८\times१२}{१३।१६}$=८९। यही यष्टि हुई।

(७५) शङ्कु। यष्टिमें उन्मण्डल-शंकुका संस्कार करनेसे शंकु आता है। नियम ६६ देखिये। अतः उन्मण्डल शंकुका लाना भी आवश्यक हुआ। नियम ६३ का चित्र देखिये। अक्ष क्षेत्र पूजटमें

पूज (क्रान्ति) की ज्या कर्ण और उन्मण्डल शंकु भुज है । अतः उसके लिये अनुपात किया—अक्ष-कर्ण १३ । १६ में पलभा ५। ४० भुज है तो चन्द्र-क्रान्ति ज्या ३६९ रूपी कर्णमें क्या ? इष्ट भुज जट हुआ $\frac{३६९ \times ५।४०}{१३।१६}$ =१५८ = उन्मण्डलशंकु । चन्द्रके उत्तर गोलीय होनेके कारण इसे यष्टि ८९ में जोडा तो चन्द्रका शंकु २४७ हुआ ।

(७६) शंकुतल । शंकु-मूलसे ग्रहके उदयास्त-सूत्र पर एक लम्ब गिराओ, यह लम्ब-रेखा क्षितिजके धरातलमें होगी । इसीका नाम शंकुतल है । अहोरात्रवृत्त क्षितिजके ऊपर अक्षांश-वश दक्षिणकी ओर और क्षितिजके नीचे उत्तरकी ओर झुकता है और उक्त वृत्तकी झुकाव-दिशा ही शंकुतलकी दिशा होती है; अतः क्षितिजके ऊपर शंकुतलकी दिशा दक्षिण हुई । पुनः नियम ६२ का चित्र देखिये । गनकु एक अक्षक्षेत्र है, जिसकी कोटि गन (शंकु) और भुज (शंकु-तल = नकु) है; अतः शंकुतलके लिये अनुपात किया— १२ अंगुल-की कोटिका भुज पलभा है तो ग्रह शंकु २४७ रूपी कोटिका भुज क्या होगा ? इष्ट भुज = $\frac{२४७ \times ५।४०}{१२}$ = ११६ = शंकुतल दक्षिण हुआ । सूर्य क्षितिजस्थ है अतः उसका शंकु और शंकुतल नहीं उत्पन्न हुए ।

(७७) अग्रा । अग्रा लानेके लिये अक्षक्षेत्र वश यह सूत्र है— $\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{अक्षकर्ण}}{१२}$ जिसके द्वारा सूर्यकी अग्रा = $\frac{३९८ \times १३।१३}{१२}$ = ४४० क्योंकि २०-६-१९३६ को संध्यासूर्यकी क्रान्ति २३° । २६′ ।४६″ थी । इसी प्रकार चन्द्रकी अग्रा= $\frac{३६९ \times १३।१६}{१२}$ = ४०८ ।

(७८) कुज्या । इसके लिये यह सूत्र है — $\frac{\text{क्रान्तिज्या} \times \text{पलभा}}{१२}$ । इसके द्वारा सूर्यकी कुज्या १८८ और चन्द्रकी कुज्या १७४ मिली ।

इति श्रीरजनीकान्तशास्त्रिकृतौ ज्योतिर्गणित—कौमुद्यां
" त्रिप्रश्नाधिकारो " नाम पञ्चमः परिच्छेदः ।

षष्ठ परिच्छेद ।



ग्रहणाधिकार ।

(१) ज्योतिःशास्त्र-वर्णित सभी आकाशीय घटनाओंकी अपेक्षा चन्द्र और सूर्यमें ग्रहणका लगना परम-चमत्कारक, परम-रोचक एवं परम-क्लिष्टगणित-साध्य घटना है । भारतीय विद्वानोंको यह पूर्णतया मालूम था कि, पृथ्वीकी छाया चन्द्रपर पडनेसे चन्द्र-ग्रहण और पृथ्वी और सूर्यके बीचमें चन्द्रके आजानेसे सूर्य-ग्रहण होता है। पृथ्वी, चन्द्र और सूर्यकी ऐसी स्थिति क्रमशः प्रत्येक पूर्णिमा और प्रत्येक अमावस्याके दिन होती है; पर क्या कारण है कि, प्रत्येक पूर्णिमाको चन्द्र-ग्रहण और प्रत्येक अमावस्याको सूर्य-ग्रहण नहीं होता ? इसका कारण चन्द्र-कक्षा और क्रान्ति-वृत्तका एक तल (Plane) में नहीं होना है । जिसका फल यह होता है कि चन्द्रकी स्थिति पूर्णिमा और अमावसके समय भी कभी क्रान्ति-वृत्तके ऊपर तो कभी क्रान्ति-वृत्तके नीचे हो जाती है । जिससे सम्बन्धित ग्रहण लगने नहीं पाता । ग्रहणके लिये अवश्य है कि पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य पूर्णिमा और अमावस्याके समय एक सीधमें ठीक ठीक आजायें और यह अवस्था तभी उत्पन्न हो सकती है, जब पूर्णिमा और अमावस्या-का चन्द्र अपने पात-बिन्दुओं (राहु और केतु) पर वा उनके अति ही निकट स्थित हो ।

(२) यहाँपर चन्द्रग्रहणकी अपेक्षा जो सूर्यग्रहणमें विशेषता है, उसे भी पाठकोंको बतला देना आवश्यक है । चन्द्र-ग्रहण भू-पृष्ठ परसे देखपड़नेवाले सभी स्थानोंसे एकही प्रकारका देख पड़ता है; अर्थात् चन्द्र बिम्बका जितना भाग भू-छायासे आच्छादित होगा, सर्वत्र उतनाही ग्रहण देख पड़ेगा; कारण कि यहाँपर छाद्य और छादक दोनों एक दूसरेसे सटे रहते हैं वा ज्यौतिषिक भाषामें यों कहिये कि चन्द्र ग्रहणमें छाद्य और छादक समकक्ष रहते हैं । पर ऐसी

बात सूर्य-ग्रहणमें नहीं है। इस ग्रहणमें छाद्य और छादक एकसे दूसरेसे बहुत दूर रहते हैं; क्योंकि उनकी कक्षायें परस्पर भिन्न और सुदूर हैं। सूर्य केवल चन्द्रकी ओटमें आजाता है, जिससे वह भू-वासियोंको नहीं देखपड़ता। भू-वासियोंमें भी जो लोग पूर्वोक्त सीधपर स्थित हैं, उन्हें सूर्य-बिम्बका सबसे अधिक भाग ग्रस्त देख पड़ेगा। इसके विपरीत जो लोग उस सीधसे जितना दूर रहेंगे, उन्हें उतनी ही कमी ग्रास-मानमें मालूम होगी; क्योंकि वहाँसे उन्हें सूर्यका उतनाही अधिक' भाग अग्रस्त दीखता रहेगा और जो लोग उस सीधसे बहुत दूर हैं, उनके लिये तो सूर्यमें ग्रहण लगेगा ही नहीं।

(३) पहले कह आये हैं कि ग्रहणके लिये पूर्णिमा वा अमावस्याके चन्द्रको अपने पात-बिन्दुओंपर वा उनके अति ही निकट रहना जरूरी है। अतः हमें उस समीपताका परिमाण भी जिसे ग्रहण-सीमा (Ecliptic Limit) कहते हैं, जान लेना परमावश्यक है। पर यह ग्रहण सीमा सदा एकसी नहीं रहती। इसमें पृथ्वीसे सूर्य और चन्द्रकी दूरी तथा चन्द्र-कक्षाके झुकावमें न्यौनाधिक्य होते रहनेके कारण सदा ही तारतम्य हुआ करता है। इन सब कारणोंसे उक्त सीमाका परिमाण चन्द्र ग्रहणमें अंशादि ९।३० और अंशादि १२, ५ के बीच, तथा सूर्य-ग्रहणमें अंशादि १५।२१ और अंशादि १८। ३१ के बीच, घटता बढता रहता है, यह आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंका मत है, पर भारतके प्राचीन विद्वान् उक्त सीमाका परिमाण स्थूल रूपसे दोनों प्रकारके ग्रहणोंके लिये १४ अंश मानते हैं, जो उक्त चारों परिमाणोंका प्रायः औसत है।

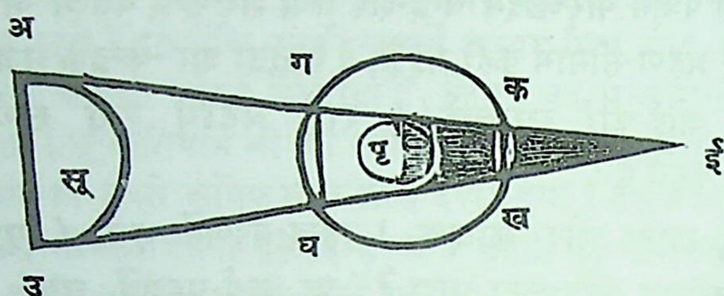
(४) ऊपर जो प्रत्येक प्रकारके ग्रहणके लिये दो-दो सीमायें एक परमाल्प और दूसरी परमाधिक दी गई हैं उनमेंसे चन्द्र यदि परमाधिक सीमाके भीतर हो तो सम्बान्धित ग्रहणका केवल सम्भव मात्र होता है; पर यदि वह परमाल्प सीमाके भीतर हो तो ग्रहण अवश्यं-भावी हो जाता है। चन्द्रके अन्यत्र रहनेपर ग्रहणका अभाव होता है।

(५) पञ्चम परिच्छेदमें चन्द्र-शर तथा शर-केन्द्र बतला आये हैं। ऊपर जो ग्रहण-सीमायें कही गई हैं, वे वस्तुतः शर–केन्द्रके भुजांश हैं। इन्हें ही कोई-कोई व्यग्वर्क (राहु घटाये हुए सूर्य) के भुजांश कहते हैं।

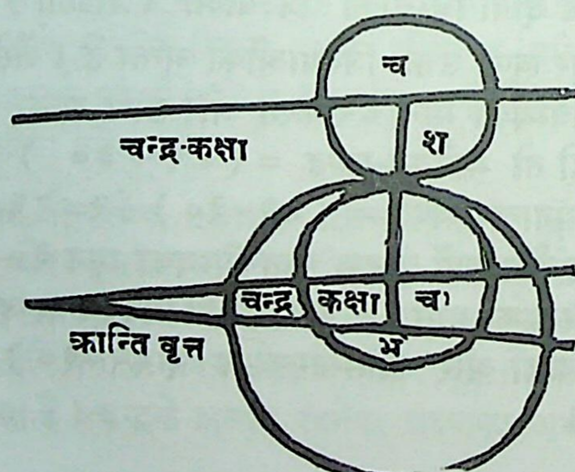
(६) छाद्य और छादक । चन्द्र-ग्रहणमें भूभा (पृथ्वीकी छाया) छादक और चन्द्र छाद्य है, पर सूर्य-ग्रहणमें चन्द्र छादक और सूर्य छाद्य है।

(७) भूभा वा पृथ्वीकी छाया सूर्यसे प्रतिकूल दिशामें सूची (Cone) के आकारमें सूर्यकी ही गतिसे सदा भ्रमण करती रहती है । यदि भू-भाको किसी लम्बतल (Perpendicular Plane) से कहींपर काट डालें, तो उसका कटा भाग पूर्णतः वृत्ताकार होगा । इस वृत्ताकार कटे भागको भूभा-बिम्ब वा राहु-बिम्ब कहते हैं।

(८) मानैक्य-खण्ड और मानान्तर-खण्ड । छाद्य और छादकके बिम्ब-मानों (Apparent Diameters) को जोडकर योगफलका आधा करनेसे मानैक्य-खण्ड आता है । इसी प्रकार दोनोंके अन्तरका आधा करनेसे मानान्तर-खण्ड निकलता है । वस्तुतः मानैक्य-खण्ड दोनों बिम्बोंकी त्रिज्याओं (Radii) का योग-फल और मानान्तर खण्ड उक्त त्रिज्याओंका अन्तर है । जैसे चन्द्र-ग्रहणमें छादक राहु-बिम्बका मान ८२ कला और छाद्य चन्द्र बिम्बका मान ३० कला हो तो मानैक्य-खण्ड = (८२ + ३०) ÷ २ = ५६ कला और मानान्तर-खण्ड = (८२–३०) ÷२= २६ कला हुआ। इसी प्रकार सूर्य-ग्रहणमें छादक चन्द्र-बिम्बका मान ३० कला और छाद्य सूर्य-बिम्बका मान ३२ कला हो तो मानैक्य-खण्ड (३२+३०) ÷ २ =३१ कला और मानान्तर-खण्ड (३२–३०) ÷ २ = १ कला हुआ।



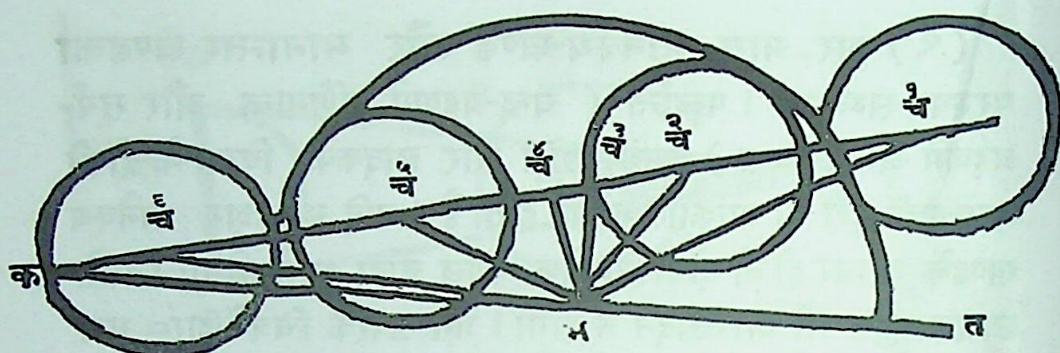
(८ क) ग्रहण-सीमाका लाना । इस चित्रमें सू=सूर्य; पृ=पृथ्वी; अईउ =सूर्य–पृथ्वी–कृत सूची । चन्द्र ग्रहणमें चन्द्र सूचीको ख बिन्दु-पर स्पर्श करता है । वहाँ सूचीका व्यासार्द्ध ४१' है । अतः भूभा-चन्द्र-केन्द्रान्तर = ४१' + १५' = ५६' है । यह चन्द्र-ग्रहणकी मध्यम सीमा १०° । ४७' का शर है । इसी प्रकार सूर्य ग्रहणमें चन्द्र सूचीको ग बिन्दुपर स्पर्श करता है । यहाँ सूचीका व्यासार्द्ध ७३' आता है । सूची और सूर्यका सूई केन्द्र सूत्र एक है; अतः चन्द्र सूर्य-का केन्द्रान्तर = १५'+ ७३' = ८८' है, यह सूर्य–ग्रहणकी मध्यम सीमा १६ । ५६' का शर है ।



(९) शर, ग्रास, मानैक्य-खण्ड और मानान्तर-खण्डका परस्पर-सम्बन्ध। पर्व्वान्त (चन्द्र-ग्रहणमें पूर्णिमान्त और सूर्य-ग्रहणमें अमावस्यान्त) कालमें छाद्य और छादकके बिम्ब-केन्द्रोंकी मध्य-वर्त्ती दूरी ही तात्कालिक शर होता है। यदि यह शर मानैक्य खण्डके बराबर हो तो दोनों बिम्बोंका केवल बाह्य स्पर्श होगा; जिससे छाद्यका कुछ भी आच्छादन न होगा। जैसे ऊपरके चित्रमें शर= भच = भश + शच = मानैक्य-खण्ड। यदि शर मानैक्य-खण्डसे अधिक हो तो उस दशामें बिम्बोंका स्पर्श भी न होगा; दोनों एक दूसरेसे शराधिक्य-परिमित अलग रहेंगे। यदि शर मानैक्य-खण्डसे छोटा हो तो छाद्यका शर-न्यूनता -परिमित भाग आच्छादित होगा। यदि शर मानान्तर-खण्डके तुल्य हो तो पूर्ण ग्रहण होगा और दोनों बिम्बाका आभ्यन्तर स्पर्श होगा। जैसे भच' (शर) = भश – शच' = मानान्तर खण्ड। यदि शर मानान्तर-खण्डसे भी छोटा हो तो उस दशामें भी पूर्ण-ग्रास ही होगा। इन विविध विवेचनोंसे हम निम्न-लिखित परिणामपर पहुँचते हैं—

(क) शर यदि मानैक्य-खण्डसे छोटा, पर मानान्तर-खण्डसे बडा हो तो, खण्ड ग्रहण होता है। (ख) शर यदि मानान्तर खण्डसे बडा न हो तो पूर्ण-ग्रहण होता है।

(१०) मध्यस्थिति और मर्दस्थिति। ग्रहणके प्रारम्भ (स्पर्श) कालसे लेकर उसकी समाप्ति(मोक्ष)कालतक जितना समय बीतता है, वह पर्व-काल है। उसका आधा भाग ग्रहणकी मध्य स्थिति कहलाता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण ग्रहणमें जितने समयतक छादक-बिम्बमें छाद्य-बिम्ब लीन रहता है अर्थात् सम्मीलन कालसे लेकर उन्मीलन-कालतक जितना समय बीतता है, उसका आधा भाग मर्द स्थिति कहलाता है।



नोट—ऊपरके चित्रमें च^{१} च^{६} वह मार्ग-खण्ड है, जिसे चन्द्रको स्पर्श-कालसे लेकर मोक्ष कालतक चलना पडता है । त्रिभुज भ च^{१} च के शीर्ष-बिन्दु भसे आधार च^{१} च^{६} पर भ च^{४} लम्ब गिराया गया है; अतः च^{१} च^{६} रेखा च^{४} बिन्दु पर समद्विभक्त होती है, जिससे च^{१} च^{४} = $\frac{}{}$ च^{४}च^{६} = मध्य स्थिति रेखा । इसी प्रकार च^{२} च^{५} वह मार्गखण्ड है, जिसे चन्द्रको सम्मीलन कालसे लेकर उन्मीलन काल तक चलना पडता है । यह मार्ग-खण्ड भी च^{४} बिन्दुपर ही समद्विभक्त होता है, जिससे च^{४} च^{२}=च च =मर्द्द स्थिति रेखा । चित्रमें भच^{१} = भच^{६}=मानैक्य-खंड। और भच^{२}=भच^{५} =मानान्तर-खण्ड । क भ त क्रान्ति-वृत्तका खण्ड है जिसके भ बिन्दुसे, जो भूभाका केन्द्र है, भ च रेखा लम्ब खडी की गई है, जो चन्द्र-मार्गको च^{३} बिन्दुपर स्पर्श करती है । यही पर्वान्त-कालीन चन्द्र-शर है । चन्द्र कक्षा क्रान्ति-वृत्तपर अपने झुकावके द्वारा बहुत ही छोटा कोण बनाती है; अतः हम रेखा भ च^{४} को प्रायः चन्द्र-शर भ च^{३} क तुल्य मान सकते हैं ।

अब समकोण त्रिभुज भ च^{४} च में ((भच^{१})^{२}; =(भ च^{४})^{२}+ (च^{४}च^{१})^{२} । इस लिये (च^{४}च^{१})^{२}=(भ च)^{२}–(भ च^{१})^{२} वा च^{४}च^{१} = $\sqrt{(भ च^{१})^{२}-(भ च)^{२}}$; अर्थात् मानैक्य–खण्डके वर्गमेंसे शर-वर्गको घटाकर शेषका वर्गमूल लेनेसे मध्यस्थिति रेखाका मान निकलता है । फिर मध्यस्थितिके इस कलात्मक मानको ६० से गुण-

कर चन्द्र-सूर्यके गत्यन्तरका भाग देनेसे मध्यस्थितिका घट्यादि मान निकलता है।

पुनः इसी प्रकार यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि, समकोण त्रिभुज भ च^{४}च^{२} में मर्द्द-स्थिति रेखा च^{४}च^{२}= $\sqrt{(भच^{२})^{२}-(भच^{४})^{२}}$ अर्थात् मानान्तर खण्डके वर्गमेंसे शर-वर्गको घटाकर शेषका वर्गमूल लेनेसे मर्द्द-स्थितिका कलात्मक-मान निकलता है। फिर मध्यस्थितिके घट्यादि मानवत् मर्द्द-स्थितिका भी घट्यादि-मान निकाल लेवे।

(११) पर्वान्त-संस्कार। नियम १० के चित्रमें चन्द्र-शराग्र-बिन्दु च^{३} पर्वान्त-कालीन-चन्द्रका स्थिति-सूचक है और वहाँका इष्ट काल, जो पूर्णिमाके भोग्य घट्यादि हैं, मालूम है; पर मार्ग-खण्ड च^{३}च^{१} का घट्यादि मान मालूम नहीं है; अतः हम यह नहीं बता सकते कि पर्वान्त–कालसे कितना समय पूर्व ग्रहणका स्पर्श होगा। हमें मार्ग-खण्ड च^{४}च^{१} (मध्य-स्थिति) का घट्यादि मालूम है; इसमें मार्ग-खण्ड च^{४}च^{३} के घट्यादि मानका संस्कार करनेसे च^{३}च^{१} का घट्यादि मान मालूम होगा। इसीका नाम पर्वान्त-संस्कार है।

अब उसीका निकालना बतलाया जाता है $\angle$ च^{४}भ क + $\angle$ भ क च^{४}=$\angle$ क च^{४}च भ = १ समकोण= $\angle$ च^{३}भक= $\angle$ ^{३}च भच^{४}+ $\angle$ च^{४}भक । दोनों ओरसे $\angle$ च^{४}भकको निकाल दिया तो शेष $\angle$ भ क च^{४}=$\angle$ च^{३}भ च^{४}= चन्द्र-कक्षाके झुकावका कोण। अब चन्द्र-शरको ही शर-केन्द्रका भुजांश मान उसीका शर-साधन करे। यह शर जो मिलेगा, वही च^{४}च^{३} मार्ग-खण्डका कलादि-मान होगा। फिर मध्य-स्थितिवत् इसका घट्यादि-मान निकाल लेवे। प्रायः चन्द्र-शर-केन्द्रके भुजके प्रत्येक अंशके लिये २ पल पर्वान्त-संस्कार लिये जाते हैं, यथा–

मान लिया कि चन्द्र-शर-केन्द्रका भुजांश १ है। इसको प्राचीन रीतिके अनुसार ३३ से गुणकर उसमें ७ का भाग देनेसे चन्द्र-शर कलादि ४। ४२ हुआ। फिर इसको भी चन्द्र-केन्द्र-शरका भुजांश

मान, इसे ३३ से गुणा किया तो गुणन-फल १५९ । ३९ हुआ । इसमें ७ का भाग दिया तो शर विकलादि २२ । १४ आया । चन्द्र-सूर्यका मध्यम गत्यन्तर प्रतिपल विकलादि १२ । ११ है, अतः पर्वान्त-संस्कार वि० २२ । १४ ÷ वि० १२ । ११= २ पलके लग भग । यही मार्ग-खण्ड च' च³ का घट्यादि मान है ।

(१२) स्पर्श-स्थिति, मोक्ष-स्थिति, एवं स्पर्श-मर्द, मोक्ष मर्दका मालूम करना । पर्वान्त-कालसे जितना समय पूर्व स्पर्श होता है, उसे स्पर्श-स्थिति और जितना समय पश्चात् मोक्ष होता है, उसे मोक्ष-स्थिति कहते हैं । इसी प्रकार पर्वान्त कालसे जितना समय पूर्व सम्मीलन होता है, उसे स्पर्श-मर्द और जितना समय पश्चात् उन्मीलन होता है उसे मोक्ष-मर्द कहते हैं । इन्हें जाननेकी यह रीति है कि, शर-केन्द्र यदि सम-पादमें हो तो पूर्व्वोक्त पर्वान्त-संस्कारको मध्य-स्थिति और मर्द-स्थितिमें घटानेसे स्पर्श-स्थिति और स्पर्श-मर्द और जोडनेसे मोक्ष-स्थिति और मोक्ष-मर्द आतेहैं । और यदि शर-केन्द्र विषम पादमें हो तो उक्त संस्कारको मध्य-स्थिति और मर्द-स्थितिमें जोडनेसे स्पर्श स्थिति और स्पर्श-मर्द और घटानेसे मोक्ष-स्थिति और मोक्ष-मर्द आते हैं ।

(१३) स्पर्श-काल, मोक्ष-काल, एवं सम्मीलन-काल और उन्मीलन-काल जानना । पर्वान्त-कालमें स्पर्श-स्थितिको घटानेसे स्पर्शकाल और मोक्ष-स्थितिको जोडनेसे मोक्ष-काल आता है । उसी प्रकार पर्वान्त-कालमें स्पर्श-मर्द घटानेसे सम्मीलन-काल और मोक्ष-मर्द जोडनेसे उन्मलिन-काल मालूम होता है । मोक्षकालमें स्पर्शकाल घटानेसे पर्व-काल और उन्मलिन कालमें सम्मीलन-काल घटानेसे खग्रास-काल निकलता है । नीचे लिखे चन्द्र-ग्रहणके उदाहरणमें पूर्व्वोक्त सभी बातें स्पष्ट होंगी ।

(१४) चन्द्र-ग्रहणका उदाहरण । ईसवी सन् १९३६ में ८वीं जनवरीको होने वाले चन्द्र-ग्रहणका गणित करते हैं । उसदिन मध्यम

कालसे ६ बजे प्रातःकालका मध्यमसूर्य रा. ८।२३।१९ ।२६; मध्यम चन्द्र रा. २।९।४२। ४९; चन्द्रोच्च रा. ९।६।४८।५५; राहु रा. ८।१९। ३० ।४९ और पूर्णिमाके भोग्य घटी-पल ४३। ३२ हैं। घट्यादि ४३। ३२ को इनकी मध्यम गतियोंसे अलग अलग गुण, गुणन फलोंमें ६० का भाग-देनेसे जो इनके चालन मिले, उनका संस्कार इनमें किया तो उक्त घटी-पलका मध्यम सूर्य रा. ८। २४ । २ । २०; मध्यम चन्द्र रा. २ ।१९ । १६। २६; चन्द्रोच्च रा. ९।६।५३। ४६; राहु रा. ८। १९।२८। ३० हुआ। पुस्तकमें बताई हुई रीतिके द्वारा सूर्य-चन्द्रको स्पष्ट किया तो उक्त घटी-पलका स्पष्ट सूर्य रा. ८।२४ । १४ । ३७; स्पष्ट गति क. ६१ । २३; स्पष्ट चन्द्र रा. २। २४ ।१०। २७; गति ७७९।४६ आई । अभी चन्द्र सूर्यसे पूर्णतः ६ राशियोंकी दूरीपर नहीं है । इस दूरीमें कलादि ४। १० की कमी है। इसमें गत्यन्तरका भाग दिया तो २१ पल आये। इसे घटी-पल ४३ । ३२ में जोडा तो पूर्णिमान्त-कालके घट्यादि ४३।५३ मिले और इन्हीं २१ पलोंके चालनसे पूर्णिमान्त कालीन स्पष्ट सूर्य रा.८।२४।१४।५८ और स्पष्ट चन्द्र रा.२।२४। १४।५८ आये। इसी प्रकार राहु रा. ८। १९। २८। २९ आया।

(१५) चन्द्र-शर-साधन। राहु रा. ८।१९।२८।२९ को चक्र-शुद्ध किया तो रा. ३।१०। ३१।३१ हुआ। इसे स्पष्ट चन्द्र रा. २।२४।१४।५८ में जोडा तो शर-केन्द्र रा. ६।४।४६। २९ हुआ। इसका भुज किया तो अंशादि ४।४६।२९ हुए। इन्हें ३३ से गुण, गुणन-फल कलादि १५७।३३।५७ में ७ का भाग दिया तो कलादि-शर २२।३०।३४ आया, जिसे सुखार्थ कलादि २२।३१ मान लिया।

(१६) बिम्ब-साधन। ग्रह पृथ्वीसे ज्यों-ज्यों दूर हटता है त्यों-त्यों उसकी गति धीमी और बिम्ब छोटा होता जाता है और इसके प्रतिकूल वह ज्यों-ज्यों पृथ्वीके समीप आता है, त्यों-त्यों

उसकी गति तेज और बिम्ब बडा होता जाता है । फल यह निकला कि, गतिके ह्रास-वृद्धिके साथ-साथ बिम्बके भी ह्रास-वृद्धि हुआ करते हैं। अतः विद्वानोंने ग्रह-गतिसे भी बिम्ब-साधन बताया है । सूर्यकी गतिमें उसका दशवाँ भाग जोडकर योग-फलका आधा करनेसे उसका कलादि बिम्ब आता है । जैसे-सूर्य-गति क. ६१।२३ में इसका १० वाँ भाग क. ६ । ८ जोड, योग-फल क. ६७ । ३१ को आधा किया तो सूर्य-बिम्ब क. ३३ । ४५ आया । चन्द्रकी गतिको ३ से गुण, गुणन-फलमें ७४ का भाग देनेसे चन्द्रका कलादि बिम्ब प्राप्त होता है। जैसे चन्द्र-गति क. ७७५ । ४६ को ३ से गुण, गुणन-फल क. २३२७ । १८ में ७४ का भाग दिया तो चन्द्र-बिम्ब कलादि ३१ । २७ आया ।

(१७) भू भा-बिम्ब-साधनमें कुछ और भी विशेषता है । इस पर सूर्य और चन्द्र दोनोंकी गतियोंका प्रभाव पडता है । जब सूर्य पृथ्वीसे दूर रहता है तो भू छायाकी सूची (Cone) लम्बी और जब वह निकट रहता है तो सूची छोटी होती है । इसी प्रकार जब चन्द्र पृथ्वीसे दूर रहता है तो उसे ग्रहणके समय उक्त सूचीके पतले भागमें और जब वह निकट रहता है तो उसे सूचीके मोटे भागमें प्रवेश करना पडता है । अतः चूँकि ग्रहकी दूरीका उसकी गतिके साथ, जैसा कि नियम (१६) में बतला आये हैं, घनिष्ठ संबन्ध है, भू भा-बिम्ब-साधनमें सूर्य और चन्द्र दोनोंकी गतियोंसे हिसाब करना पडता है । सूर्यकी गतिको ५ से गुणकर, गुणन-फलमें १२ का भाग देनेसे जो फल मिले उसे अलग रखे । फिर चन्द्र-गतिको २ से गुणकर, गुणन-फलमें १५ का भाग देनेसे जो फल मिले उसका और पूर्वोक्त-फलका अन्तर लेनेसे भूभा-बिम्बका कलात्मक-मान निकलता है । जैसे-सूर्य-गति क. ६१।२३ को ५ से गुण, गुणन-फल क. ३०६ । ५५ में १२ का भाग दिया तो फल क. २५ । ३५ आया । फिर चन्द्र-गति ७७५ । ४६ को २ से गुण, गुणन-फल क. १५५१

३२ में १९ का भाग दिया तो फल क. १०३ । २६ आया । दोनों फलोंका अन्तर लिया तो भू भा-बिम्ब कलादि ७७ । ५१ आया ।

(१८) शरादिकोंका अङ्गुलीकरण । ३ कलाओंका १ अंगुल और ३ विकलाओंका १ व्यंगुल होता है । इसी हिसाबसे चन्द्र-शर क. २२।३१= अंगुलादि ७ । ३०; चन्द्र-बिम्ब= अंगुलादि १०।२९ राहु-बिम्ब अंगु० २५ । ५७ और सूर्य बिम्ब अंगु० ११।१९ हुआ ।

(१९) मानैक्य-खण्ड, मानान्तर-खण्ड, ग्रास और खग्रास । (चन्द्र-बिम्ब अंगु. १० । २९ + राहु-बिम्ब अंगु. २५ । ५७) ÷ २ = मानैक्य-खण्ड अंगु. १८ । १३ । (राहु-बिम्ब अंगु. २५ । ५७ —चन्द्र-बिम्ब अंगु. १० । २९) ÷ २ = मानान्तर-खण्ड अंगु. ७ । ४४ । मानैक्य खण्ड अंगु. १८ । १३—शर अंगु. ७ । ३०=ग्रास अंगु १० । ४३ । इसमेंसे चन्द्र-बिम्बको निकाल दिया तो खग्रास अंगु. ० । १४ मिला ।

(२०) मध्य-स्थिति और मर्द-स्थितिका लाना । मानैक्य-खण्ड अंगु. १८। १३ = क. ५४ । ३९ = विक. ३२७९ । इसका वर्ग १०७५१८४१ हुआ । शर-कलादि २२। ३१ = विक. १३५१ है, जिसका वर्ग १८२५२०१ हुआ। इन दोनों वर्गोंके अन्तर८९२६६४० का वर्ग-मूल विकला २९८८ मिला । इसम चन्द्र-सूर्यके घटी गत्यन्तर विक. ७१४ । २३ का भाग दिया तो मध्य-स्थिति घट्यादि ४ । ११ मिली । अब मर्द-स्थिति निकालते हैं । मानान्तर खण्ड अंगु. ७।४४ = कलादि २३ । १२ = विक. १३९२ है, जिसका वर्ग १९३७६६४ हुआ । इसमेंसे उक्त शर-वर्गको घटाकर शेष ११२४६३ का वर्ग-मूल लिया तो विकला ३३५ मिली, जिसमें उक्त घटी गत्यन्तरका भाग देनेसे मर्द स्थिति घ.० । २८ आई ।

(२१) स्पर्श-स्थिति, स्पर्श-मर्द, मोक्ष-स्थिति और मोक्ष-मर्दका लाना । शर--केन्द्रके भुजांश अंशादि ४ । ४६।२९ को २ से

गुण दिया तो पर्वान्त-संस्कार ९ पल मिले । शर-केन्द्र विषमपादमें है, अतः ९ पलोंको पूर्वानीत मध्य-स्थिति और मर्द्द-स्थितिमें जोडा तो स्पर्श-स्थिति घ. ४ । २० और स्पर्श-मर्द्द घ. ० । ३७ आई । इसी प्रकार ९ पलोंको उनमेंसे घटाया तो मोक्ष-स्थिति घ. ४ । २ और मोक्ष-मर्द्द घ. ० । १९ मिली ।

(२२) स्पर्श-काल और मोक्ष-काल एवं सम्मीलन-काल और उन्मीलन-कालका लाना । पूर्णिमान्त-काल घ. ४३ । ५३ में से स्पर्श-स्थिति घ. ४ । २० को घटाया तो स्पर्श काल घ. ३९ । ३३ हुआ । फिर इसी पूर्णिमान्त-कालमें मोक्ष-स्थिति घ. ४ । २को जोडा तो मोक्ष-काल घ. ४७ । ५५ हुआ । इसी प्रकार उक्त पूर्णिमान्त काल-मेंसे स्पर्श-मर्द्द घ. ० । ३७ को निकाल देनेसे सम्मीलन-काल घ. ४३ । १६ और मोक्ष-मर्द्द घ. ० । १९ को जोड देनेसे उन्मीलन-काल घ. ४४ । १२ आया । इन विविधकालोंको औदयिक-फल (घ. २।५) संस्कृत कर घंटादि मध्यमकालमें परिणत करनेसे निम्न लिखित काल विवरण प्राप्त हुआ ।

(८ जनवरी ई० स० १९३६ (पौष शुक्र १५ संवत् १९९२)का चन्द्र-ग्रहण) ।

समय	स्पर्श	सम्मीलन	मध्य	उन्मीलन	मोक्ष
घटयादि	३७ । २८	४१ । ११	४१ । ४८	४२ । ७	४५ । ५०
घंटादि	९ । ४९	११ । ३८	११ । ३३	११ । ४१	१ । १०

(२३) इस परिच्छेदके प्रारम्भमें चन्द्र-ग्रहणकी अपेक्षा सूर्य-ग्रहणमें जो विशेषता है वह पाठकोंको बतलाई जाचुकी है । एक ही सूर्य-ग्रहणका देश-भेदसे भिन्न-भिन्न आकारका देख पडना वा एक देशमें सूर्यका ग्रस्त देखा जाना, पर पडोसके ही किसी अन्य देशमें उसका उसी समय अपने पूर्ण बिम्बके साथ चमकते रहना

अवश्य ही एक विचित्र घटना है। इस विचित्रताका कारण चन्द्र और सूर्यकी भिन्न-कक्षता और चन्द्र-कक्षाकी सूर्य-कक्षाकी अपेक्षा पृथ्वीसे अति समीपता है, जिससे लम्बन और नति नामक दो ज्यौतिषिक विकार, चन्द्रकी वास्तविक स्थितिमें उत्पन्न होकर, उक्त विचित्र दृश्य हमारे नेत्रोंके सम्मुख ला खडा कर देते हैं। इन लम्बन और नति नामक विकारोंको समझनेके लिये हमें कुछ ज्योतिषिक-परिभाषायें जान लेनी चाहियें।

(२४) प्रतीयमान (Apparent) और वास्तविक (True) क्षितिज (Horizon)। किसी भूपृष्ठस्थ द्रष्टाके चारों ओर खींचा हुआ वह कल्पित वृत्त, जिसकी परिधिपर पृथ्वी और आकाश परस्पर सटे मालूम पडते हैं, प्रतीयमान क्षितिज है। यह वास्तविक क्षितिज नहीं है। वास्तविक क्षितिज प्रतीयमान क्षितिजके समानान्तर और भूव्यासार्द्ध तुल्य अन्तरपर भूपृष्ठस्थ द्रष्टाके नीचे रहता है। वह हमें देख नहीं पडता; पर वही खगोलको ऊर्ध्वस्थ और अधःस्थ दो गोलार्द्धोंमें विभक्त करता है।

(२५) ऊर्ध्व स्वास्तिक (Zenith) और अधः स्वास्तिक (Nadir)। ऊर्ध्वस्थ खगोलार्द्धका वह कल्पित विन्दु, जो भूपृष्ठस्थ द्रष्टाके ठीक मस्तकके ऊपर है, ऊर्ध्वस्वास्तिक कहलाता है। इसीको खमध्य और ख-स्वास्तिक भी कहते हैं। इसी प्रकार अधःस्थ खगोलार्द्धका वह कल्पित बिन्दु, जो भूपृष्ठस्थ द्रष्टाके ठीक पैरोंके नीचे है, अधःस्वास्तिक कहलाता है। ये दोनों बिन्दु वस्तुतः वास्तविक क्षितिजके ध्रुव हैं।

(२६) सम मण्डल (Prime Vertical)। यह पूर्वापर-बिन्दु और दोनों स्वस्तिकोंसे होकर खींचे हुए कल्पित वृत्तका नाम है।

(२७) दृग्मण्डल। दोनों स्वस्तिकों और ग्रह-विम्बके केन्द्रसे होकर खींचे हुए वृत्तको दृग्मण्डल कहते हैं।

(२८) नतांश (Zenith Distance) और उन्नतांश (Altitude) दृग्मण्डलपर खमध्यसे जितनी दूरीपर ग्रह रहता है, वही उसका नतांश

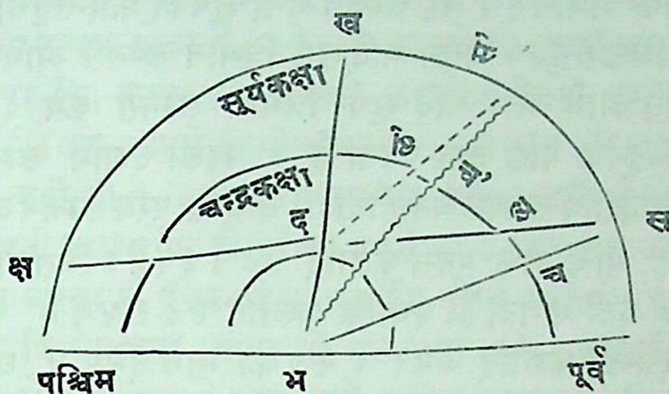
और उसी वृत्त पर जितना ऊँचा वह क्षितिजके ऊपर देख पडता है वही उसका उन्नतांश कहलाता है ।

(२९) त्रिभोन (वित्रिभ) लग्न । इष्ट कालीन लग्न साधन कर उसमेंसे तीन राशियोंको घटा देनेसे त्रिभोन लग्न आता है । लग्न पूर्व क्षितिजमें, और क्रान्ति-वृत्तका अर्द्ध भाग(६ राशियां) सदा क्षितिज-के ऊपर रहता है; अतः यह स्पष्ट है कि, लग्नसे त्रिभोन लग्नके तीन राशियां कम होनेके कारण, वह उक्त क्रान्ति-वृत्तार्द्धका मध्य विन्दु है; अथवा यों कहिये कि त्रिभोन लग्न वस्तुतः क्रान्ति-वृत्तीय खमध्य है और जब क्रान्ति वृत्त ही दृग्मण्डल हो तो त्रिभोन लग्न और वास्तविक खमध्य दोनों एक रहते हैं ।

(३०) विश्लेषांश । त्रिभोन लग्न और सूर्यके अन्तरको विश्ले-षांश कहते हैं ।

(३१) लम्बन (Parallax) । एक ही ग्रहको दो भिन्न स्थानोंसे एक ही वार देखनेसे जो उसकी स्थिति (Position) में अन्तर देख पडता है, वही उसका लम्बन है । ग्रहकी दूरीमें ह्रास-वृद्धिके साथ-साथ उसके लम्बनमें भी इसके प्रतिकूल अर्थात् वृद्धि—ह्रास हुआ करता है । अभिप्राय यह कि जो ग्रह निकट हैं, उनका लम्बन अधिक और जो दूर हैं, उनका लम्बन न्यून होता है ।

उदाहारण—चन्द्र पृथ्वीसे बहुत ही निकट और सूर्य बहुत ही दूर है; अतः चन्द्रका लम्बन बहुत ही अधिक और सूर्यका लम्बन बहुत ही अल्प है । यों तो सूर्य, चन्द्र वा कोई भी ग्रह द्रष्टाके स्थान भेदसे सब दिशाओंमें लम्बित हो सकते हैं; पर यहाँ पर (सूर्य-ग्रहण गणितमें) लम्बन शब्दसे भूकेन्द्र और भूपृष्ठसे चन्द्रको युगपत् देखनेसे उत्पन्न उसकी क्रान्तिवृत्तीय स्थितिमें सूर्यसे आपेक्षिक अन्तरका अभिप्राय है । शून्य लम्बन खमध्यमें और परम लम्बन क्षितिजमें उत्पन्न होता है ।



इस चित्रमें तीन वृत्त हैं। सबसे छोटा वृत्त पृथ्वीका सूचक है। बीचका वृत्त चन्द्र-कक्षा और अन्तकावृत्त सूर्य-कक्षा है। क्षदस क्षितिज-तल है। भ (भूकेन्द्र) से च (चन्द्र) और स (सूर्य) दोनों एक ही दृष्टि-सूत्र भचसमें देख पडते हैं; पर द (भूपृष्ठस्थ द्रष्टाके स्थान) से जो क्षितिज-तल-रेखा दलस सूर्य तक गई है, वही भूपृष्ठस्थ द्रष्टाका दृष्टि-सूत्र है। इस दृष्टि-सूत्रसे चन्द्र अपनी कक्षामें चाप लच-तुल्य लम्बित है। भूकेन्द्रसे यह सूर्यके साथ दीखता है; पर भूपृष्ठसे सूर्य तो दीखता है, पर चन्द्रका पता नहीं; वह सूर्यके पास न होकर अन्यत्र है, जिससे वह दीखता नहीं। चन्द्रकी स्थितिमें यही अन्तर उसका लम्बन है। चाप लच चन्द्रका क्षैतज लम्बन है और वही उसका परम-लम्बन है। पर जब सूर्य स' बिन्दु पर और चन्द्र च' बिन्दुपर पहुँचे तो चन्द्रका लम्बन चाप ल'च' हुआ जो परम लम्बनसे कम है। इसप्रकार जब सूर्य ख (त्रिभोन-बिन्दु) पर आया तो उक्त दोनों दृष्टि-सूत्र भचस (भच'स') और दलस (दल'स') एक होगये और लम्बन-मापक चाप लच(ल'च') का अभाव होगया। फल यह निकला कि सूर्य और त्रिभोन लग्नका अन्तर (विश्लेषांश) जैसे-जैसे बढता है, वैसे-वैसे लम्बन भी बढता है और जैसे-जैसे विश्लेषांश घटता है, वैसे-वैसे लम्बन भी घटता है, अतःलम्बन

विश्लेषांशके अधीन है। यह लम्बन चन्द्र-सूर्यका क्रान्तिवृत्तीय पूर्वापर अन्तर है, जिसके तुल्य चन्द्र, यदि सूर्य त्रिभोन लग्नसे अधिक (पूर्व) होतो सूर्यसे आगे और यदि सूर्य त्रिभोन लग्नसे कम (पश्चिम) हो तो वह सूर्यके पीछे देख पडता है । पहली दशामें लम्बन ऋण और दूसरी दशामें लम्बन धन होताहै । चन्द्रका परम लम्बन जो क्षितिज सम्बन्धी है, प्राचीनोंके मतसे कलादि ४८ । ४६ है । जिसको तै करनेमें चन्द्रको ४ घटी लगती है; क्योंकि कलादि ४८ । ४६ में चन्द्रसूर्यके मध्यम-गत्यन्तर कलादि ७३१ । २७ का भाग देनेसे ४ घटी लब्धि मिलती है । वस्तुतः गत्यन्तरका १५ वां भाग परम लंबन होता है, चाहे गतियां मध्यम हों वा स्पष्ट; जिससे घट्यात्मक परम लम्बन सदा ६० घटियोंका १५ वां भाग अर्थात् ४ घटी होता है । इसी परिच्छेदमें नियम ४७ का फुट नोट देखो.

(३२) स्फुट लम्बन । ऊपर जो लम्बनका स्वरूप बतलाया गया है, वह इस कल्पनाके आधारपर बतलाया गया है कि, त्रिभोन लग्न ठीक ऊर्ध्वस्वस्तिकमें है । इस दशामें यही लम्बन स्फुट लम्बन होगा । पर यह कोई आवश्यक नहीं है कि, त्रिभोन लग्न सदा ऊर्ध्व-स्वस्तिकमें रहे । वह स्वदेशके अक्षांश और अपनी क्रान्तिके वश खमध्यसे उत्तर वा दक्षिण नत होता रहता है । ऐसी स्थितिमें विश्लेषांशके द्वारा निकाला हुआ लम्बन केवल मध्यम लम्बन होगा । और जैसे-जैसे त्रिभोन लग्नका उन्नतांश घटेगा, वैसे-वैसे मध्यम लम्बनसे स्फुट लम्बन कम होगा; अत स्फुट लम्बन त्रिभोन लग्नके उन्नतांशपर निर्भर है ।

(३३) नति । नति भी एक प्रकारका लम्बन ही है । दोनोंमें भेद केवल दिशाका है । लम्बन * क्रान्ति-वृत्तपर पूर्वापर दिशामें, पर नति + उस वृत्त पर लम्ब-रूपसे दक्षिणोत्तर दिशामें रहती है । लम्बन चन्द्रसूर्यका पूर्वापर, पर नति उनका एवं उनकी कक्षाओंका, तात्कालिक

---

* लम्बन Celestial Longitudinal Parallax + नति = Cdestial Lati tudinal Parallax.

शरके अतिरिक्त दाक्षिणोत्तर अन्तर है। शरके अतिरिक्त यह दक्षिणोत्तर अन्तर कैसे उत्पन्न होता है, उसे भी पाठकोंको बतलाना जरूरी है। मान लिया कि, चन्द्र और सूर्यकी कक्षायें दोनों एक तल और खमध्यमें हैं। इस दशामें त्रिभोन लग्नभी खमध्यमें ही रहेगा और चन्द्र-सूर्य कहीं भी हों वे खमध्यसे अन्यत्र रहनेपर लम्बित होते हुए भी, अपनी-अपनी कक्षाओंपर ही रहेंगे। उनमें वा उनकी कक्षाओंमें कुछ भी दक्षिणोत्तर अन्तर न दीख पडेगा; क्योंकि दोनों कक्षायें एक तलमें हैं। पर ज्योंही त्रिभोन लग्न खमध्यसे नत हुआ कि नतांशकी दिशावश चन्द्र-सूर्य दोनोंकी कक्षायें स्वस्थानसे चलित मालूम होंगी और उनमें तथा साथ-साथ चन्द्र-सूर्यमें दाक्षिणोत्तर अन्तर देख पडने लगेगा। यही अन्तर नति है। नतांश ज्यों-ज्यों बढेगा, त्यों-त्यों नति भी बढेगी, यहाँ-तक कि वह क्षितिजपर परम लम्बन कलादि ४८।४६ के तुल्य होगी, अतः नति त्रिभोन लग्नके नतांशपर निर्भर है।

(३४) स्पष्ट शर। शर चन्द्र-कक्षाके सूर्य-कक्षा पर झुकनेसे उत्पन्न दोनोंका मौलिक दाक्षिणोत्तर अन्तर है और नति भी इस मौलिक अन्तरके अतिरिक्त एक अन्य वैसा ही अर्थात् दक्षिणोत्तर अन्तर है। इससे स्पष्ट है कि नतिका प्रभाव शरपर अवश्य पडेगा, जिस दशामें नति-संस्कारसे रहित शर सूर्य-चन्द्रका स्पष्ट दाक्षिणोत्तर अन्तर न हो सकेगा। अतः शरमें नतिका संस्कार करना पडता है, तब वह स्पष्ट होता है। दोनों एक दिशाके हों तो उनका योग और भिन्न दिशाके हों तो उनका अन्तर लेनेसे स्पष्ट शर आता है॥

चन्द्र-कक्षा और क्रान्ति-वृत्त दोनों एक-तलमें नहीं हैं; बल्कि दोनोंके तल एक दूसरेसे भिन्न हैं और चन्द्र कक्षा क्रान्ति-वृत्तके तलके साथ प्रायः ९ अंशोंका कोण बनाती हुई उसपर झुकी है, जिससे उसका आधाभाग क्रान्तिवृत्तके उत्तर और आधा भाग क्रान्ति-वृत्तके दक्षिण रहता है। इसका फल यह होता है कि स्वकक्षामें भ्रमण करता हुआ चन्द्र, यदि वह पात-बिन्दुओं पर न हो तो, कभी क्रान्ति-

वृत्तके उत्तर और कभी क्रान्ति-वृत्तके दक्षिण देख पडता है। किसी इष्ट कालमें चन्द्रकी क्रान्ति-वृत्तसे यही दक्षिणोत्तर अंतर उसका तात्कालिक शर है। शर ही चन्द्रका वास्तविक अन्तर है। पर यह अन्तर भूकेन्द्रस्थ द्रष्टाकी दृष्टिसे है। भूपृष्ठस्थ द्रष्टाकी दृष्टिसे इस वास्तविक अन्तरमें जो प्रतीयमान (Apparent) न्यौनाधिक्य देख पडता है; वही नति है। नतिको समझनेके लिये हम लोग पहले यह कल्पना करें कि, चन्द्र-कक्षा और क्रान्तिवृत्त दोनों एक तलमें हैं; उनमें शर नामक अन्तर है ही नहीं। तब हम लोग देखें कि भूपृष्ठसे देखनेपर वे वैसा ही नजर आते हैं, जैसा कि, भूकेन्द्रसे देखने पर अथवा भूपृष्ठसे देखनेपर उनमें कोई अंतर देख पडता है। यदि कोई अंतर देख पडे तो वही प्रतीय मान अन्तर नति है, जो शरके अतिरिक्त है, क्यों कि, शरको तो अभी गणनामें लिया ही नहीं।

स
कदं·प्रो·वृत्त
च
न
स'
च'
चन्द्रगतसमानान्तर वृत्त
द
च'
उत्तर
भ
दक्षिण

ऊपर लिखे चित्रमें भच (चन्द्र-कक्षा-तल) और भस (क्रान्ति-वृत्ततल) दोनों एक तलमें हैं। भ(भूकेन्द्र)और द (भूपृष्ठ) दोनों स्थानोंसे देखनेपर दोनों तलोंमें कुछ भी दक्षिणोत्तर अन्तर नही देख पडता। यहाँ नतिका अभाव है। पर ज्यों ही दोनों तल स (खमध्य) से नत होकर भच'स' तलमें आये तो दसे देखनेपर चन्द्र-कक्षा-तल'भच 'क्रान्ति-वृत्त-तल भस' से चाप नच' वा चाप सच' तुल्य अन्तरित देख पडने लगा अर्थात् यह मालूम होने लगा

कि क्रान्ति-वृत्तसे चन्द्र कक्ष चाप नच'तुल्य दक्षिण की ओर हट गई है। यही चाप नच तात्कालिक नति है, जिसका संस्कार शरमें करना होगा। नति वस्तुतः कक्षाकी होती है, जिसके वश तत्रस्थ ग्रहकी भी, चाहे वह कक्षापर कहीं भी हो, नति हो जाती है।

(३५) सूर्य, चन्द्र एवं अन्यान्य ग्रह-गण भूकेन्द्रस्थ द्रष्टाकी दृष्टिसे स्पष्ट किये जाते हैं न कि, भूपृष्ठस्थ द्रष्टाकी दृष्टिसे। अतः लम्बन विषयक पूर्वोक्त विवरणके द्वारा हमें ज्ञात होता है कि, जो भू-केन्द्रके लिये पर्वान्त (अमावस्यान्त) काल है, वह-भूपृष्ठके लिये नहीं है। भूपृष्ठका अमान्त-काल भूकेन्द्रके अमान्त-कालसे लम्बन-वश पहले वा पीछे हुआ करता है। जब सूर्य त्रिभोन लग्नसे अधिक हो तो भूपृष्ठीय अमान्त-काल भू-केन्द्रीय अमान्तकालसे पहले हो जाता है, अतः घटिकादि लम्बनको अमावस्याके घट्यादिमेंसे घटाना और जब सूर्य त्रिभोन लग्नसे कम हो तो भूपृष्ठीय अमान्त काल भूकेन्द्रीय अमान्त कालके पीछे होता है। अतः घटिकादि लम्बनको अमावस्याके घट्यादिमें जोडना चाहिये, तब ग्रहणका भूपृष्ठीय मध्यकाल आता है। जब ग्रहणका मध्यकाल लानेके लिये पर्वान्त काल लम्बन-वश इसप्रकार घटाया बढाया गया तो हमें पर्वान्त-कालीन शर-केन्द्रके भुजांश, त्रिभोन लग्न, स्पष्ट सूर्य एवं स्पर्श-मोक्ष-काल आदि सभी आवश्यकतानुसार स्व-स्व कालिक लम्बन वश घटाने बढाने पडेंगे, तभी वे पृष्ठस्थ-द्रष्टाके लिये स्फुट होंगे। ये सभी बातें आगे दिये हुए सूर्य-ग्रहणके उदाहरणमें साफ-साफ मालूम होंगी।

(३६) **सूर्य-ग्रहणका उदाहरण।** ईसवी सन् १९३६ में १९वीं जून शुक्रवारको होनेवाले सूर्य-ग्रहणका गणित करते हैं। उसदिन चक्र ३ और द्युगण १२७० है, इससे मध्यम कालसे ६ बजे भोरको मध्यम सूर्य रा. २।३।५९।३; मध्यम चन्द्र रा. १।२७।२७।५९; चन्द्रोच्च रा. ९।२४।५७।५५ और राहु रा. ८।१०।५२।२८। मिला। सूर्य, चन्द्र तथा उनकी गतियोंकी स्पष्ट किया तो स्पष्ट सूर्य रा. २।४।

३२ । ३६, गति कलादि ५६।५९; स्पष्ट चन्द्र रा. २ । १ । ५५ । १२, गति कलादि ८२१ । ५९ आई । इस पर तिथि स्पष्ट की तो तिथि अमावस्या (३०) तथा उसके भोग्य घटी-पल १२ । २१ मिले।

अब फिर घटचादि १२ । २१ का चालन ६ बजेके उक्त मध्यम ग्रहोंमें दिया तो इस इष्ट कालका मध्यम सूर्य रा. २ । ४ । ११ । १३; मध्यम चन्द्र रा. २ । ० । १० । ४३; चन्द्रोच्च रा. ९ । २४ । ५९ । १७ तथा राहु रा. ८ । १० । ५१ । ४९ आया । इसके अनुसार स्पष्ट सूर्य रा. २ । ४ । ४४ । २०, गति कलादि ५६ । ५९; स्पष्ट चन्द्र रा. २ । ४ । ४३ । ५४; गति कलादि ८१९ । ११ आई ।

पर अभी चन्द्र सूर्यसे २६ विकला कम है, जिसमें सूर्य-चन्द्रके गत्यन्तरसे भाग देनेपर २ पल आये । इन्हें पूर्वानीत घटचादि १२ । २१ में मिलाया तो अमावस्याके सूक्ष्म घटी-पल १२।२३ आये। और इन दो पलोंका चालन उक्त स्पष्ट सूर्य और चन्द्रमें दिया तो दोनों अमावस्यान्त कालमें रा. २ । ४ । ४४ । २२ होकर तुल्य हो गये । दो पलोंका चालन राहुमें नहींके बराबर है; अतः उसे उतनाही अर्थात् रा. ८ । १० । ५१ । ४९ पर्वान्त कालीन मान लिया ।

(३७) **औदयिक-संस्कार** । जनवरीका अयनांश २३ । ४ । १४ है और जून ५ महीनोंके बाद आता है; अतः उक्त अयनांशमें ५×५ = २५ विकला मिलाई तो जूनका अयनांश २३ । ४ । ३९ हुआ । इसे स्पष्ट सूर्यमें जोडा तो सायन सूर्य रा. २ । २७ । ४९ । १ हुआ । इस पर द्विगुणित चर-काल घटचादि ३ । ५६ आया । दिन-मान घटचादि ३३।५६ और रात्रि-मान घटचादि २६ । ४ आया। रात्रि-मानमें ५ का भाग दिया तो सूर्योदयका स्पष्ट काल घंटादि ५। १२ । ४८ हुआ। इसमें १९ वीं जूनका धन समीकरण मिनिटादि १। ३ मिलाया तो सूर्योदयका मध्यम काल घंटादि ५ । १३ । ५१ = सुखार्थ घं. ५ । १४ आया । अब घं. ६ । ० – घं. ५ । १४ = मि. ४६ । मि. ४६ ÷ २४ = घटचादि १ । ५५ हुआ जो औदयिक

संस्कार है । सूर्योदय ६ बजेसे पहले होता है; अतः घ. १ । ५५ को पूर्वोक्त अमान्त काल घ. १२।२३ में जोडा तो सूर्योदयसे अमावस्याके भोग्य घटी-पल १४ । १८ आये । सारी गणित क्रिया इन्हीं घटी-पलोंके आधारपर करनी होगी ।

(३८) अमान्त-कालीन लग्न और त्रिभोन लग्न । सायन सूर्य राश्यादि २ । २७ । ४९ । १ है जिससे मिथुनके भोग्यांश २। १० । ५९ मालूम हुए । इनपर मिथुनके भोग्य पलादि २२ । ३ मिले, इन्हें अमावस्याके भोग्य घट्यादि १४ । १८ = पल ८५८ मेंसे घटाया तो शेष पलादि ८३५ । ५७ मिले । इनमेंसे कर्क और सिंहके उदय-मानोंको निकाल दिया तो कन्याके भुक्त पलादि १५१ । ३४ बचे जिन पर कन्याके भुक्तांश १३ । ३३ । ५६ मिले । इनमें सिंहकी संख्या ५ राशि मिलाई तो सायन लग्न रा. ५ । १३ । ३३ । ५६ मिली । इसमेंसे अयनांश २३ । ४ ।३९ को घटाया तो अमान्त-कालीन लग्न रा. ४ । २० । २९ । १७ मिली । इसमेंसे ३ राशियोंको घटाया तो अमान्त-कालीन त्रिभोन-लग्न रा. १ । २० । २९ । १७ आई ।

(३९) विश्लेषांश और मध्यम-लम्बन । स्पष्ट सूर्य रा. २ । ४ । ४४ । २२ मेंसे उक्त त्रिभोन-लग्न निकाल दिया तो विश्लेषांश अंशादि १४।१५।५ आया । विश्लेषांशसे लम्बन साधनेकी यह रीति है कि, उसमें ११ का भाग दे लब्धि-तुल्य खण्डांकके द्वारा निम्न-लिखित चक्रसे सानुपात पलादि-लम्बन ग्रहण करे । इस रीतिसे उक्तविश्ले-षांश पर निम्नलिखित चक्रसे मध्यम लम्बन पलादि ९९ । ५५ । २ = सुखार्थ घट्यादि १ । ३६ मिला ।

मध्यम लम्बन-चक्र ।

खण्डांक	१	२	३	४	५	६	७	८	९
लम्बनपल	७७	१४१	१८८	२१९	२३५	२४०	२३६	२२४	२००

(४०) पहले कहा जा चुका है कि, स्फुट लम्बन त्रिभोन-लग्नके उन्नतांशपर निर्भर है । त्रिभोन-लग्नमें अयनांश मिला, उसे सायन बनावे । फिर सायन त्रिभोन लग्नको सायन सूर्य मान, उसकी क्रान्ति लावे । तत्पश्चात् क्रान्ति और अक्षांशका परस्पर संस्कार इस प्रकार करे कि, यदि वे दोनों एक दिशाके हों तो उनका योग करे और भिन्न दिशाके हों तो वियोग करे तो त्रिभोन-लग्नके नतांश मालूम होते हैं; जिसे ९० अंशोंमेंसे घटादेनेपर त्रिभोन-लग्नके उन्नतांश निकल आते हैं । फिर उन्नतांशकी ज्याको चतुर्थ परिच्छेद नियम २७ में दिये हुए भुजांश ज्या-चक्रसे निकाल उससे मध्यम लम्बनको गुणा करे और गुणन-फलमें १०००का भाग देवे तो स्फुट-लम्बन मालूम होता है । स्वदेशसे जिस दिशामें विषुवत् रेखा पडती है, वही अक्षांश की दिशा समझी जाती है । इस नियमसे काशीका अक्षांश दक्षिण है । अक्षांश और क्रान्तिका वियोग करनेकी दशामें जो अधिक हो, उसीकी दिशाके नतांश होते हैं ।

त्रिभोन-लग्न रा. १ । २० । २९ । १७ में अयनांश २३ । ४ । ३९ मिलाया तो सा. त्रि. लग्न रा. २ । १३ । ३३ । ५६ हुई, जिसकी क्रान्ति अंशादि २२।२९।१३ उत्तर हुई, क्योंकि सा. त्रि. लग्न मेषादि है । काशीका अक्षांश २५ । १८ दक्षिण है । अतः दोनोंका वियोग किया तो दक्षिण नतांश २ । ५२ । ४७ मिले, जिन्हें ९० अंशोंमें घटानेसे त्रि. लग्नके उन्नतांश ८७ । ७ । १३ आये । इनकी ज्या ९९७ से पूर्वोक्त मध्यम लम्वन घ. १ । ३६ को गुणा किया तो घटयादि १५९५ । १२ गुणन-फल आया, जिसमें १००० का भाग देनेसे स्फुट-लम्वन घ. १ । ३५ । ४३ मिला । त्रिभोन-लग्न से सूर्य अधिक है, अतः लम्वन ऋण है ।

(४१) ग्रहण-मध्य-काल तथा तत्कालीन मध्यम शरका लाना । अमान्त-कालके भोग्य घटयादि १४ । १८ मेंसे उक्त स्फुट लम्बन घ. १ । ३५ । ४३ को ऋण होनेसे घटाया तो लम्बन-संस्कृत

अमान्त-काल घ. १२। ४२। १७ मिला। यही ग्रहणका मध्यकाल है। तात्कालिक मध्यम शर लानेके लिये हमें लम्बन-संस्कृत शर केन्द्र भी लाना होगा। राहु.रा. ८। १०। ५१। ४९ को चक्र शुद्ध कर शेष रा. ३। १९। ८। ११ में स्पष्ट चन्द्र रा. २। ४। ४४। २२ को जोडा तो शर-केन्द्र रा. ५। २३। ५२। ३३ हुआ। चन्द्र-गति अंशादि १३। १०। ३५ में राहु गति कलादि ३। ११ को वक्र होनेके कारण मिलानेसे शर-केन्द्रकी दैनिक गति अंशादि १३। १३। ४६ मिलती है, जिससे उसकी घटी-गति सुखार्थ १३ कला मानली जाती है। १३ से घटचादि लम्बन १। ३५। ४३ को गुणा कर गुणन-फल कलादि २०। ४४ को उक्त शर-केन्द्रमेंसे घटाया तो लं. सं. शर-केन्द्र रा. ५। २३। ३१। ४९ मिला, जिसको भुज किया तो अंशादि ६। २८। ११ आया। इसकी ज्या ११२ से २७० को गुण, गुणन-फल ३०२४० में १००० का भाग दिया तो कलादि मध्यम शर क. ३०। १४ मिला, जो शर-केन्द्रके मेषादि होनेसे उत्तर हुआ।

(४२) नति तथा स्पष्ट शर। शरको स्पष्ट करनेके लिये हमें ग्रहण-मध्यकालीन नतिकी आवश्यकता पडती है, जो तत्कालीन ही त्रिभोन-लग्नके नतांश पर आश्रित रहती है। अतः पूर्वानीत त्रिभोन-लग्नमें भी लम्बन-संस्कार किया। पृथ्वीके आवर्त्तनवश क्रान्ति-वृत्तके ३६० अंश ६० घटियोंमें एकबार घूम जाते हैं; अतः लग्नोंकी घटी-गति सुखार्थ ६ अंश मान ली। अब घटचादि लम्बन १। ३५। ४३ को ६ से गुणा किया तो त्रिभोन लग्नका लम्बन जन्य चालन अंशादि ९। ३४। १८ आया। इसे त्रिभोन लग्नमें घटाया तो लं. सं. त्रि. लग्न रा. १। १०। ५४। ५९ मिली। यही ग्रहण-मध्यकालीन त्रिभोन लग्न है। इसकी उत्तर क्रान्ति अं. २०। ५६। ३६। मिली इसे अक्षांश २५। १८। मेंसे घटाया तो दक्षिण नतांश ४। २१। २४ आये। नतांशसे नति लानेकी यह रीति है कि, उसकी ज्यासे परम नति कलादि ४८। ४६ को गुणकर गुणन-फलमें १००० का भाग देवे। अतः उक्त नतांशकी ज्या ७५। ३१ से कलादि ४८। ४६ को गुणकर

गुणन-फल ३६८२।४१।४६ में १००० का भाग दिया तो दक्षिण दिशाकी नति कलादि ३ । ४१ मिली। इसको मध्यम शर क. ३० । १४=मेंसे घटाया तो स्पष्ट शर कलादि २६ । ३३ उत्तर हुआ।

(४३) बिम्ब, मानैक्य-खण्ड तथा ग्रासका लाना । सूर्य की गति क. ५६ ।५९ में १० का भाग दिया तो क. ५ । ४२ लब्धि मिली। इसे सूर्यकी उक्तगतिमें जोड योग-फल क. ६२।४१ का आधा करनेसे सूर्य-बिम्ब क. ३१ । २१ आया । चन्द्र-गति क. ८१९। ११ को ३ से गुण, गुणन-फल क. २४५७।३३ में ७४ का भाग दिया तो चन्द्र-बिम्ब ३३ । १३ मिला। दोनों बिम्बोंको जोड, योग-फलका आधा करनेसे मानैक्य-खण्ड क. ३२। १७ मिला। मानैक्य-खण्डमेंसे स्पष्ट शर निकाल देनेसे ग्रास क. ५ । ४४ आया।

(४४) मध्य-स्थिति । मानैक्य-खण्ड क. ३२ । १७ का वर्ग किया तो क. १०४२।१२। ४९ आया । इसमेंसे स्पष्ट शर क. २६।३३ का वर्ग क. ७०४ । ५ । ४९ घटा; शेष क. ३३७ । १८ । ४० का वर्ग-मूल लिया तो वह क. १८ । २२=विक. ११०२ हुआ। इस वर्ग मूलमें सूर्यचन्द्र की घटी गत्यन्तरविक. ७६२ ।१२ का भाग दिया तो मध्य-स्थिति घ. १ । २७ मिली।

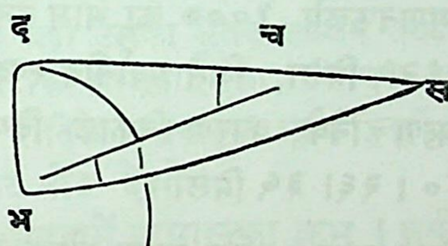
(४५) स्पर्श-काल और मोक्ष कालका लाना। गणितागत पर्वान्त घ. १४।१८ है। यह भूकेन्द्र स्थ द्रष्टा का ग्रहण-मध्यकाल है। इसमें मध्य-स्थिति घ. १ । २७ को एक जगह घटाया और दूसरी जगह जोडा तो भूकेन्द्रस्थ द्रष्टाके लिये क्रमशः स्पर्श-काल घ. १२।५१ और मोक्ष काल घ. १५ । ४५ मानो हुए।

(४६) स्पर्श-काल और मोक्ष-कालमें लम्बन-संस्कार करना। नियम ४५ में जो स्पर्श और मोक्षके काल निकाले गये हैं, उन्हें भूपृष्ठ गत द्रष्टाके लिये उपयोगी बनानेमें उनमें स्व-स्व-सम्बान्धी लम्बन-संस्कार भी करना पडेगा। अर्थात् स्पर्श-कालमें स्पर्श-कालीन लम्बनका और मोक्ष-कालमें मोक्ष-कालीन लम्बनका संस्कार करना होगा। पर हमें किसी-कालका लम्बन जाननेके लिये उस कालके सूर्य तथा त्रि-भोन लग्नका जानना जरूरी है। इसके लिये घट्यादि मध्य-स्थितिसे

सूर्यकी घटी-गति और त्रिभोन लग्नकी घटी गतिको गुण, गुणन फलोंको क्रमशः दर्शान्त (पर्वान्त) कालीन सूर्य और त्रिभोन लग्नमें एक जगह घटाने और दूसरी जगह जोडनेसे क्रमशः स्पर्शकालीन और मोक्षकालीन सूर्य और त्रिभोन लग्न आते हैं, जिनके द्वारा तत्तत्कालीन लम्बन नियम ३९ और ४० के अनुसार निकालना चाहिये । पुनः पूर्वोक्त स्पर्श-काल और मोक्ष-कालमें क्रमशः स्पार्शिक और मौक्षिक लम्बनका संस्कार करनेसे वे भूपृष्ठगत द्रष्टाके लिये स्पष्ट हो जाते हैं, जैसा कि आगेके नियमोंमें किया गया है ।

(४७) स्पार्शिक लम्बन और स्फुट स्पर्श-काल । सूर्यकी

लम्बनोपपत्ति ।



१ नोट–इस चित्रमें भ भू-केन्द्र, द भूपृष्ठ गत द्रष्टा का स्थान, च चन्द्र, स सूर्य, $\angle$ दचभ चन्द्रलंबन, $\angle$ दसभ सूर्य लंबन, $\angle$ च भस चन्द्रका आपेक्षिक लंबन, भद भूव्यासार्द्ध ७९० $\frac{१}{२}$ योजन, भच चन्द्र कर्ण ५१५६६ योजन और भस सूर्य कर्ण ६८९३७७ है ।

अब ज्या $\angle$ च $= \frac{\text{भद}}{\text{भच}} = \frac{७९०\frac{१}{२}}{५१५६६} \times १००० = १५\frac{१}{३}$ $\therefore \angle$ च $= ५३' । ५''$ । इसी प्रकार ज्या $\angle$ स $= \frac{\text{भद}}{\text{भस}} = \frac{७९०\frac{१}{२}}{६८९३७७} \times १००० = १\frac{१}{७} \therefore \angle$ स $= ३' । ५७''$ ।

पर $\angle$ च $= \angle$ भ $+ \angle$ स $\therefore \angle$ भ $= \angle$ च $- \angle$ स $= ५३'।५'' - ३'।५७ = ४९'८''$ जो चन्द्रसूर्यके मध्यम गत्यन्तरका लग-भग १५ वां भाग है । रेखा दचस क्षितिजके धरातलमें है; अतः उक्त लंबन क्षैतज हैं । नवीन मतसे चन्द्रलंबन ५७, सूर्य लंबन ८'' आपेक्षिकलंबन ५६' ५२''=घ. ४ । ४० है ।

घटी गति विक. ५६ ।५९× मध्य स्थिति घ. १ ।२७ = क. १ ।२२। पर्यान्त सूर्य राश्यादि २ ।४ । ४४ । २२–कलादि १ । २२=स्पर्श कालीन सूर्य राश्यादि २ । ४ । ४३ । ० । पुनः लग्नकी घटी-गति अं. ६ × १ । २७ = अंशादि ८ । ४२ । अमान्त कालीन त्रिभोन लग्न राश्यादि १ । २०।१९। १७–अं. ८ । ४२=स्पार्शिक त्रिभोन लग्न रा. १ ।११ । ४७ । १७ । विश्लेषांश अंशादि २२ । ५९ । ४३ पर मध्यम लम्बन घ. २ । २९ मिला । सायन स्पार्शिक त्रिभोन लग्नकी क्रान्ति अ० २१ । ६। ५३को काशीके अक्षांश २५ । १८ मेंसे घटाया तो नतांश ४ ।११ ।७ मिले, जिन्हें ९० अंशोंमेंसे घटाये तो उन्नतांश ८५ । ४८। ५३ मिले । इनकी ज्या ९९६ से मध्यम लबंन घ. २ । २९ को गुणकर गुणनफलमें १००० का भाग देनेसे स्पार्शिक स्फुट लम्बन घ. २।२४ ।२९ मिला, जिसे पूर्वानीत स्पर्श काल घ. १२ । ५१ मेंके लंबन ऋण होनेके कारण निकाल दिया तो स्फुट स्पर्श-काल घट्यादि १० । २६। ३५ मिला ।

(४८) मौक्षिक लम्बन और स्फुट मोक्ष-काल । दूसरी जगह सूर्य और त्रिभोन लग्नके पूर्वानीत मध्य-स्थिति-जन्य चालनोंको अमान्त-कालीन सूर्य और त्रिभोन-लग्नमें जोडनेसे क्रमशः मौक्षिक सूर्य रा. २ । ४ । ४५ । ४४ और मौक्षिक त्रिभोन-लग्न रा, १ । २९ । ११ । १७ मिले । इनके विश्लेषांश ५ । ३४ । २७ पर मध्यम लंबन घ. ०। ३९ मिला । सायन मौक्षिक त्रिभोन लग्नकी क्रान्ति २३ ।१२ । ३को काशीके अक्षांश २५ । १८ मेंसे निकाल दिया तो नतांश २ । ५ । ५७ मिले । इन्हें ९० अंशोंमेंसे घटा देनेपर उन्नतांश ८७ । ५४ । ३ आये । इनकी ज्या ९९८ से उक्त मध्यम लंबन घ. ०।३९ को गुण गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे मौक्षिक स्फुट लम्बन घ.०।।३८। ५६ आया । इसे पूर्वानीत मोक्ष-काल घ. १५ । ४५ । मेंसे निकाल देनेपर स्फुट मोक्ष काल घ. १५ । ६ । ४ आया ।

ता. १९ जून ई. स. १९३६ (आषाढ कृष्ण ३०
संवत् १९९३) का सूर्य-ग्रहण।

समय	स्पर्श-काल	मध्य-काल	मोक्ष-काल
घटयादि	१०।२६।३५	१२।४२।१७	१५।६।४
घंटादि	९।२४।२९	१०।१८।४६	११।१६।१६

(४९) लम्बन और नति विषयक प्राचीन और नवीन-मतमें भेद। भारतके प्राचीन ज्योतिर्विदोंके मतानुसार सभी ग्रहोंकी योजनात्मिका गति एक है और वह ११८५८।४५ योजन है तथा भूव्यासार्द्ध ७९०। ३० योजन है जो उक्त गति योजनोंका १५ वां भाग है; अतः क्षितिजस्थ ग्रह स्वकक्षामें अपनी गतिका १५ वां भाग लम्बित रहता है। यही उसका क्षैतज लम्बन तथा उसकी नति भी है पर नवीन मतमें ग्रहोंकी योजनात्मिका गति एक नहीं है; अतः उनके नति-लंबन उक्त रीतिके आधारपर सूक्ष्म नहीं लाये जासकते। पृष्ठ १५७ का फुट नोट देखो।

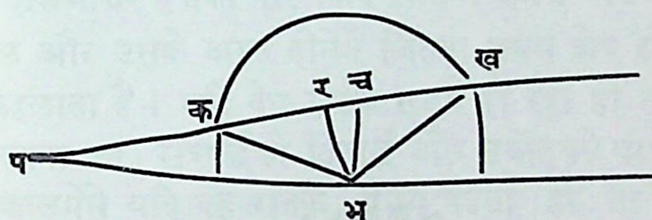
(५०) सूर्य-ग्रहणमें खग्रासका क्रम। सूर्य ग्रहणमें कदाचित् ही खग्रास (पूर्ण-ग्रास) होता है। पर यदि कभी ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाये तो, वहाँपर चन्द्र ग्रहणकी तरह मानान्तर खण्ड और स्फुट-शरके द्वारा मर्द्द-स्थिति लाकर उसे एक जगह अमान्त कालमेंसे घटावे और दूसरी जगह जोडे तो क्रमशः सम्मीलन-काल और उन्मीलन-काल स्थूल रूपसे आते हैं। पुनः अमान्त कालीन सूर्य और त्रिभोन-लग्नमें मर्द्द-स्थिति जन्य अपने-अपने चालनको एक जगह घटाकर और दूसरी जगह जोडकर उन्हें क्रमशः सम्मीलन-कालीन और उन्मीलन-कालीन बनावे। तत्पश्चात् उनके द्वारा स्वकालीन स्फुट-लम्बन लाकर उनका संस्कार उक्त स्थूल संमीलन और उन्मीलन कालमें कर, उन्हें सूक्ष्म बना लेवे। सारांश यह कि, जैसी क्रिया मध्य-स्थितिके द्वारा की जाती है, वैसी हीं क्रिया मर्द्द-स्थितिके द्वारा करनी चाहिये।

(५१) पूर्वोक्त सूर्य ग्रहणमें सारी गणित-क्रिया बिम्बादिकोंके विना अंगुलादिमें परिवर्तित किये ही की गई हैं। जिन्हें उन्हें अंगुलादिमें बदलना हो, वे उनके कलादि मानोमें ३ का भाग देकर उन्हें अंगुलादिमें बदल लेवें, जैसे रवि-बिम्ब कलादि ३१ । २१ = अंगुलादि १०। २७; चन्द्र-बिम्ब कलादि ३३ । १३ =अंगुलादि ११ । ४ ।२०; मानैक्य-खण्ड कलादि ३२ । १७ =अंगुलादि १० । ४५ । ४०; स्पष्ट शर कलादि २६ । ३३=अंगुलादि ८ ।५१ ; ग्रास कलादि ५ । ४४= अंगुलादि १ । ५५ ।

(५२) सूर्य-ग्रहणका, खण्ड-ग्रास और पूर्ण-ग्रासके अतिरिक्त एक तीसरा भी भेद होता है, जिसे वलयाकार वा कङ्कणाकार (Annular) ग्रहण कहते हैं। इसमें चन्द्र बिम्ब सूर्य म्बिबसे छोटा होकर उसके केवल मध्यम भागको अच्छादित कर देता है, जिससे सूर्य बिम्बका शेष भाग अंगूठी वा कङ्कणकी तरह चमकता मालूम होता है। भारतके प्राचीन ज्योतिविद् इसके लिये कोई विशेष गणित क्रिया नहीं कर गये हैं। ऐसा ग्रहण तब होता है, जब चन्द्रका स्फुट (नातिसंस्कृत) शर मानैक्य खण्ड और मानान्तर खण्ड दोनोंसे छोटा होता है। ऐसा ही एक ग्रहण २१ वीं अगस्त ई०स० १९३३ में हुआ था, जो उत्तर भारतके कतिपय स्थानोंसे कङ्कणाकार दीख पडा था।

(५३) चन्द्र-ग्रहण-सम्बन्धी गणित करते समय मध्यास्थिति स्थित्यर्द्ध) लानेकी यह विधि बतलाई गई है कि मानैक्य-खण्डके वर्गमेंसे शर-वर्गको घटाकर शेषका वर्ग-मूल ले इत्यादि। वस्तुत इसका अभिप्राय केवल चन्द्र-कक्षाके उस खंडका मान निकालना है; जिसे वह स्पर्श-कालसे लेकर ग्रहण-मध्य-काल तक चलकर तै करता, है। पर जिस त्रिभुजको समकोण कलपना कर यह क्रिया की जाती है, वह वास्तवमें समकोण नहीं रहता; क्योंकि यदि ऐसा होता तो मानैक्य-खण्ड-रूपी कर्णके सम्मुखका कोण जो शराग्रपर है, समकोण

होता। पर समकोण तो शरमूलमें क्रान्ति-वृत्तपर रहता है, शराग्रपर नहीं, यदि भास्कर आदि प्राचीन आचार्योंकी तरह इस क्रियाके द्वारा भूभाका भुजसंज्ञक मार्ग-खंड निकालें तो हमें इस कार्यके लिये स्पार्शिक शरका ज्ञान रहना आवश्यक है पर वह है नहीं। अतः प्राचीनोंका अनुकरण करनेमें हमें उन्हींकी तरह असकृत् क्रियाकी शरण लेनी पडेगी जो भारी झंझट है। अतः इन सब झंझटों तथा गणितकी स्थूलताके निवारणार्थ मानैक्य खंडके वर्गमेंसे शर वर्गको न घटाकर छाया शरके वर्गको घटाना चाहिये। छाया-शर उस लम्बकी संज्ञा है जो चन्द्र ग्रहणमें भूभाकेन्द्रसे और सूर्य-ग्रहणमें सूर्य-केन्द्रसे चन्द्र-कक्षापर डाला जाये। नीचेका चित्र देखिए।



इस चित्रमें प=पात-स्थान (राहु वा केतु); पचख=चन्द्र-कक्षा; पभ= क्रान्ति-वृत्त, च = पर्व्वान्त चन्द्र; भ = पर्व्वान्त भूभा वा सूर्य, चभ = चन्द्र-शर, भबिन्दुको केन्द्र मानकर मानैक्य-खण्डकी त्रिज्यासे एक वृत्त बनाया जो चन्द्र-कक्षाको क और ख-बिन्दुओंपर काटता है; भक और भख को दो सरल रेखाओंके द्वारा मिलादिया और भ बिन्दुसे चन्द्र-कक्षापर भर लम्ब गिरादिया। यही छाया-शर है।

अब भर को मालूम करना है. [रभच= इष्ट शरकेन्द्रपर विक्षेप-वलन; $\frac{\text{भर}}{\text{भच}}$ = कोटिज्या-विक्षेपवलन ∴ भर (छायाशर) = कोज्या विव × भच (शर) अर्थात् शरको विक्षेप-वलनकी कोटिज्या (१ त्रिज्या) से गुणदेनेपर छाया शर आता है। सूर्य ग्रहणमें नति संस्कृत शरसे यह गणित करना चाहिये।

इसी चित्रसे चरको जो पर्वान्त संस्कार मार्ग खण्ड है मालूम कर सकते हैं; यथा—$\frac{\text{चर}}{\text{भच}}$=ज्या विक्षेप वलन ∴ चर=ज्याविक्षेप-वलन×भच (शर) अर्थात् शरको विक्षेप वलनकी ज्या (१ त्रिज्या) से गुण देने पर चर निकल आता है ।

सुखार्थ शरको ९९७ और ७८ से अलग-अलग गुण १००० का भाग देनेसे क्रमशः छाया-शर और पर्वान्त संस्कार मार्ग खंड निकलते हैं । इस मार्ग खंडमें चन्द्रसूर्यके गत्यन्तरका भाग देनेसे पर्वान्त संस्कार आता है । शेष क्रिया पूर्ववत् कर सूक्ष्म स्पर्श स्थित्यादि निकाले ।

इति श्रीरजनीकान्तशास्त्रिकृतौ ज्योतिर्गणित–कौमुद्यां
" ग्रहणाधिकारो " नाम षष्ठः परिच्छेदः ।



सप्तम-परिच्छेद ।

परिलेखाधिकार ।

(१) पूर्व-कपाल और पश्चिम-कपाल । वेध-कर्त्ता (द्रष्टा)के दक्षिणोत्तर वृत्तसे पूर्वस्थ आकाश-भागका नाम पूर्व-कपाल और पश्चिमस्थ आकाश-भागका नाम पश्चिम-कपाल है ।

(२) नत-काल और उन्नत-काल । यदि पूर्व-कपालमें ग्रह हो तो उसके दक्षिणोत्तर (मध्याह्न वा निशीथ) वृत्त पर आनेमें जितना समय शेष हो उसको नत-काल और उदयसे जितना समय बीत गया हो उसको उन्नत-काल कहते हैं । और यदि पश्चिम-कपालमें ग्रह हो तो उसको दक्षिणोत्तर-वृत्तको पार किये जितना समय बीत गया हो, वही नत-काल और उसके अस्त होनेमें जितना समय शेष हो, वही उन्नत काल कहलाता है । यदि वेध रातके समय हो रहा हो तो रातको ही दिन कल्पना कर रात्र्यर्द्धको दिनार्द्ध और सूर्योदयसे बीते हुए घटचादि इष्ट-कालमेंसे यदि वह रातके समय पडता हो तो दिन-मानको निकालकर शेषको ही इष्ट काल मानना चाहिये ।

(३) नत-कालका लाना । दिनार्द्ध और इष्ट कालका अन्तर लेनेसे नत-काल मालूम होता है । यदि पूर्व-कपालमें ग्रह हो तो पूर्व नत-काल और पश्चिम-कपालमें हो तो पश्चिम नत-काल होता है । दिनार्द्धमेंसे नत-काल घटा देनेपर उन्नत-काल निकल आता है ।

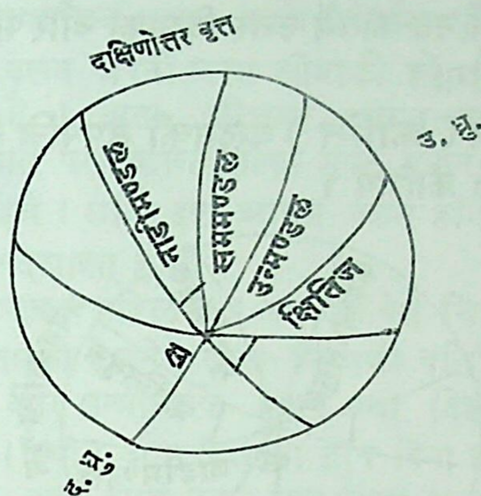
(४) वलन ।(Deflection of the Ecliptic from the Prime Vertical) वेधकर्त्ताकी पूर्वापर दिशा सममण्डल है । अतः सममण्डलके विचारसे क्रान्तिवृत्तस्थ ग्रह-बिम्ब-परिधिमें जो पूर्व-बिन्दु है, उससे क्रान्ति-वृत्तकी प्राचीका इष्ट नत-कालमें जितना चलन होता है; वही वलन है । यह चलन कभी उत्तर दिशामें होता है तो कभी दक्षिण दिशामें होता है । इस वलनको विद्वानोंने दो भागोंमें विभक्त कर, उसें

स्पष्ट किया है। एक आक्ष-वलन और दूसरा आयन (क्रान्ति) वलन है। सम-मण्डलकी प्राचीसे नाडी-मण्डलकी प्राची, उत्तर वा दक्षिण, जिस दिशामें जितना चलित होती है, उस दिशाका वह आक्ष वलन होता है। फिर नाडी-मण्डलकी प्राचीसे क्रान्ति-वृत्तकी प्राची, उत्तर वा दक्षिण, जिस दिशामें जितना चलित होती है; उस दिशाका वह आयन-वलन होता है। इन दो प्रकारके वलनोंका परस्पर संस्कार करनेसे स्पष्ट वलन आता है। अर्थात् यह मालूम होता है कि, इष्ट नत कालमें सममण्डलकी प्राचीसे क्रान्ति-वृत्तकी प्राची कितना और किस दिशामें चलित हुई है। स्पष्ट वलन लानेके लिये उक्त दोनों वलनोंको यदि वे एक दिशाके हों तो, जोडना और यदि वे भिन्न दिशाके हों तो बडेमेंसे छोटेको घटाना चाहिये। योग-पक्षमें वही दिशा रहती है; पर वियोग-पक्षमें बडे वलनकी दिशा रखी जाती है। प्राचीके चलित होनेपर शेष सब दिशायें भी अपने अपने हिसाबसे चलित हो जाती हैं।

(५) नतकालांश। पृथ्वीके आवर्त्तनके कारण ग्रह अपने अहोरात्र-वृत्तके ९० अंशोंको, जो उदयसे लेकर मध्याह्न तक वा मध्याह्नसे लेकर अस्ततक रहते हैं; दिनार्द्धमें भोगता है। अतः नतकालमें वह कितने अंशोंको भोगेगा, यह त्रैराशिक द्वारा, अर्थात् ९० अंशोंको नतकालसे गुण कर, गुणन-फलमें दिनार्द्धका भाग देकर निकालना चाहिये। जो लब्धि मिले, वही नतकालांश है। यदि रहे कि, नतांश और नतकालांशमें भेद है। ग्रहकी ख मध्यसे दूरीका नाम नतांश और मध्याह्न-वृत्तसे दूरीका नाम नतकालांश है।

(६) उन्मण्डल। यह दोनों ध्रुवों तथा द्रष्टाके क्षितिजस्थ पूर्वापर बिन्दुओंमें लगे वृत्तका नाम है। यह वस्तुतः निरक्षप्रदेशका क्षितिज है, जिसकी स्वदेशमें उन्नति वा अवनति स्वदेशके अक्षांश तुल्य होती है।

(७) आक्षवलनकी उपपत्ति। यह निम्नलिखित चित्रसे समझना चाहिये।

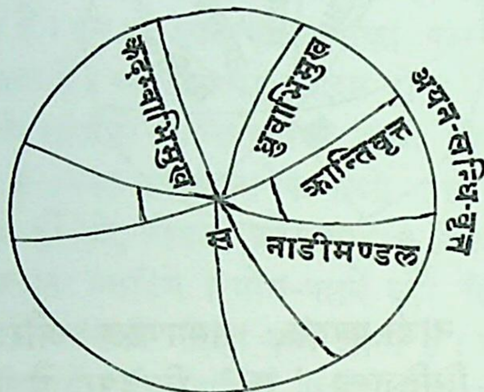


इस चित्रमें नाडी-मण्डल, सममण्डल और उन्मण्डल इन तीनोंका सम्पात क्षितिजस्थ 'स' बिन्दुपर है। इस बिन्दुपर नाडी-मण्डलकी दक्षिणोत्तर-दिशा उन्मण्डल, पर सममण्डलकी दक्षिणोत्तर दिशा क्षितिज है; जिनमें ध्रुवोन्नति अर्थात् अक्षांश-तुल्य अन्तर है। इससे स्पष्ट है कि, जब 'स' बिन्दुपर दोनों वृत्तोंकी दक्षिणोत्तर-दिशाओंमें अक्षांश तुल्य अन्तर है तो उनकी पूर्वापर दिशाओंमें भी उतना ही अन्तर रहेगा। अथवा यों कहिये कि, क्षितिजपर सम-मण्डलकी प्राचीसे नाडी-मण्डलकी प्राची पूरे अक्षांश तुल्य चलित होती है और यही परम आक्ष वलन है।

अब दक्षिणोत्तर-वृत्तपर आइये। यहां सममण्डल और नाडी-मण्डल दोनोंकी दक्षिणोत्तर-दिशा एकही दक्षिणोत्तर-वृत्त है। अतः दोनोंकी पूर्वापर दिशा भी एक ही होगी, जिससे आक्ष-वलनका अभाव होगा। फल यह निकला कि, ग्रहके नत-कालांश ज्यों-ज्यों बढेंगे, त्यों-त्यों उसका आक्ष-वलन भी बढता जायेगा। यहाँतक कि, क्षितिजपर जब उसके नत-कालांश पूरे ९० अंश हो जायँगे, उसका आक्ष वलन अपनी चरम-सीमाको प्राप्त होगी। अतः बीचका आक्ष वलन जाननेके लिये नतांशकी ज्यासे अक्षांशको गुणकर, गुणन-फलमें १००० का भाग देना चाहिये। जो लब्धि होगी, वही इष्ट नत-कालमें आक्ष-वलन होगा।

यह आक्ष-वलन पूर्व नत-कालमें उत्तर दिशाका और पश्चिम नत-कालमें दक्षिण दिशाका होगा।

(८) आयन (क्रान्ति) वलनकी उपपत्ति। निम्न लिखित चित्र पर दृष्टि-पात कीजिये।



इस चित्रमें ' स ' बिन्दुपर नाडी-मण्डल और क्रान्ति-वृत्तकी सम्पति है। यही क्रान्ति-पात है। यहांपर नाडी-मण्डलकी दक्षिणोत्तर दिशा ध्रुवाभिमुख, पर क्रान्ति-वृत्तकी दक्षिणोत्तर दिशा कदम्बाभिमुख है; जिससे दोनों वृत्तोंकी दक्षिणोत्तर दिशाओंमें यहाँपर परम-क्रान्ति तुल्य अन्तर है। इससे स्पष्ट है कि, ' स ' बिन्दुपर उक्त दोनों वृत्तोंकी पूर्वापर-दिशाओंमें भी उतना ही अन्तर होगा। अथवा यों कहिये कि, क्रान्ति-पातपर नाडी-मण्डलकी प्राचीसे क्रान्ति-मण्डलकी प्राची परम क्रान्ति तुल्य चलित होती है। पर जब सायन ग्रह अयन-सन्धिपर अर्थात् क्रान्ति-पातसे ९० अंशोंकी दूरीपर जहाँ दोनों अयनोंकी सन्धि होती है, पहुँचता है तो नाडी-मण्डल और क्रान्ति-वृत्त दोनोंकी दक्षिणोत्तर-दिशा एक (अयन-सन्धि-वृत्त) हो जाती है, जिससे दोनोंकी पूर्वापर-दिशा भी एक हो जाकर आयन-वलनका अभाव कर देती है। फल यह निकला कि, सायन-ग्रहके कोटयंश जो उसके भुजांशोंको ९० अंशोंमेंसे घटानेपर आते हैं। ज्यों-ज्यों बढते हैं, त्यों-त्यों उसका आयन वलन भी बढता है, यहांतक

कि, क्रान्ति-पातपर जब सायन ग्रहके कोटचंश पूरे९०अंश हो जाते हैं, उसका आयन वलन अपनी चरम सीमाको जो परम-क्रान्ति-तुल्य है, प्राप्त हो जाता है। अतः बीचका आयन-वलन जाननेके लिये कोटचंशकी ज्यासे परम-क्रान्त्यंशोंको गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देना चाहिये। लब्धि इष्ट आयन वलन होगी, जिसकी दिशा ग्रह की अयन-दिशावत् होगी।

(९) ग्रहणका परिलेख। यह एक ऐसे चित्र (Diagram) का नाम है, जिसको देखनेसे छाद्य—बिम्बकी परिधिपर ग्रहणके स्पर्श, मोक्ष, संमीलन और उन्मीलनके स्थान तथा दिशा एवं ग्रासका मान मालूम होते हैं। स्थान और दिशाका ज्ञान विना वलनके मालूम किये नहीं हो सकता, अतः आगे वलन स्पष्ट किया जाता है।

(१०) मान लिया कि, ८ वीं जनवरी ई० स० १९३६ के चन्द्र ग्रहणका परिलेख तैयार करना है तो पहले स्पार्शिक वलनको स्पष्ट किया। उस दिनका दिनमान घ. २६।२१।३२=सुखार्थ घ. २६।२२; रात्रि-मान घ. ३३।३८।२८=सुखार्थ ३३।३८; रात्र्यर्द्ध घ. १६।४९। स्पर्श-काल घ. ३७। २८ मेंसे दिनमान घ. २६। २२ को घटाया तो रातका इष्ट काल घ. ११।६ हुआ। इसे रात्र्यर्द्ध घ. १६।४९ मेंसे निकाल दिया तो पूर्व-नतकाल घ. ५ ।४३ आया। इससे ९० अंशोंको गुण, गुणन-फलमें रात्र्यर्द्धका भाग दिया तो नतकालांश अंशादि ३०।३९।४१। आये। इनकी ज्या ५०९ से अक्षांश २५।१८ को गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग दिया तो स्पार्शिक आक्ष-वलन अंशादि १२।९२।४० मिला। नतकाल पूर्व है, अतः यह वलन उत्तर हुआ।

अब स्पार्शिक आयन-वलन निकालते हैं। स्पर्श-स्थिति घ.४।-२० से चन्द्र-गति क. ७७९।४६ को गुण, गुणन-फलमें ६० का भाग देनेसे प्राप्त चालन कलादि ५६।२ को पर्वान्त-कालीन चंद्र रा. २।२४। १८।९८ मेंसे घटाया तो स्पार्शिक चन्द्र रा. २।२३।२२।५६ आया। इसमें अयनांश २३।४।१४ मिलाया तो सायन चन्द्र रा. ३।१६।२७।१०। हुआ। इसके भुजांश रा. २।१३।३२।

९० को ९० अंशोंमेंसे घटाया तो कोटचंश अं. १६। २७। १० मिले। इनकी ज्या २८३ से परम क्रान्त्यंश २३ । २९ को गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग दिया तो स्पार्शिक आयन वलन अंशादि ६ । ३८ । २८ आया । सायन चन्द्र कर्कादि है; अतः यह दाक्षिण वलन हुआ ।

उक्त दोनों वलन भिन्न दिशाके हैं; अतः इनका अन्तर लिया तो स्फुट स्पार्शिक वलन अंशादि ६ । १४ । १२ मिला, जो अधिक वलन (आक्ष) की दिशानुसार उत्तर हुआ ।

(११) मध्यवलन । ग्रहण-मध्यकाल घ. ४१ । ४८ मेंसे दिन-मान घ. २६ । २२ को घटाया तो रातका इष्टकाल घ. १५ । २६ आया । इसे रात्र्यर्द्ध घ. १६ । ४९ मेंसे निकाल दिया तो पूर्व नत-काल घ. १ । २३ मिला । इसे ९० अंशोंसे गुण, गुणन-फलमें रात्र्यंर्द्धका भाग दिया तो नतकालांश ६ । २४ । ४४ आये । इनकी ज्या १११ से अक्षांश २५ । १८ को गुण, गुणन फलमें १००० का भाग दिया तो मध्य-कालीन आक्ष-वलन अं. २ । ४८ । ३० मिला । यह भी पूर्व नतकाल होनेसे उत्तर हुआ ।

आयन वलन । पर्वान्त-कालीन चन्द्र रा. २ । २४ । १८।५८ में अयनांश २३ । ४ । १४ मिलाया तो सायनचन्द्र रा. ३ । १७। १९ । १२ हुआ, जिसके कोटचंश अं. १७ । १९ । १२ हुये । इनकी ज्या २९८ से परमक्रांत्यंश २३ । २८ को गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग दिया तो मध्य कालीन आयन वलन अंशादि ६ । ५९ । ३५ हुआ, जो सायनचन्द्रके कर्कादि होनेसे दाक्षिण हुआ ।

उक्त दोनों वलन भिन्न दिशाके हैं; अतः इनका अन्तर अं. ४ । ११ । ५ अधिक वलनकी दिशावत् दाक्षिण हुआ ।

(१२) मोक्ष-वलन । मोक्ष काल घ. ४९ । ५० मेंसे दिन-मान घ. २६ । २२ को निकाल दिया तो रातका इष्टकाल घ. १९ । २८ आया । इसमेंसे रात्र्यर्द्ध घ. १६ । ४९ को घटादिया तो पश्चिम नत-काल घ. २ । ३९ मिला । ९० अंश × घ. २ । ३९ ÷ १६ । ४९=

नत कालांश १४ । १० । ५६ । इनकी ज्या २४५×अक्षांश २५ । १८ ÷ १०००=मौक्षिक आक्ष वलन अं. ६ । ११ । ५५ । यह पश्चिम नत-काल होनेसे दक्षिण हुआ ।

आयन वलन । मोक्ष-स्थिति घ. ४।२× चन्द्रगति क. ७७५।४६ ÷६०=चालन क. ५२ । ९ । पर्वान्त चन्द्र रा. २।२४।१८।५८+क. ५२ । ९=मौक्षिक चन्द्र रा. २ । २५ । ११ । ७ । इसमें अयनांश जोड़ा तो सायन चन्द्र रा. ३ । १८ । १५ । २१ हुआ । कोटयंश ज्या ३१३×परम क्रान्त्यंश २३।२८÷१०००=मौक्षिक आयन वलन अं. ७ । २० । ४२ मिला, जो सायन-चन्द्रके कर्कादि होनेसे दक्षिण ही हुआ ।

उक्त दोनों वलनोंको एक दिशाके होनेके कारण जोडा तो स्फुट मौक्षिक वलन अं. १३ । ३२ । ३७ दक्षिण हुआ ।

(१३) वलनोंका अंगुली-करण । वलनोंकी अपनी-अपनी ज्यामें २५ का भाग देनेसे वे परिलेखमें दान-योग्य अंगुलादि बन जाते हैं । जैसे स्फुट स्पार्शिक-वलन अं. ६ । १४ । १२ की ज्या १०८ में २५ का भाग दिया तो वह अंगु. ४ । १९ । १२ हुआ । इसी प्रकार मध्य स्फुट वलन अंगु. २ । ५५ । १२ और स्फुट मौक्षिक वलन अंगु. ९ । २१ । ३६ मिले ।

उपपत्ति । अंशोंकी ज्याएं १००० की त्रिज्यासे बने वृत्तमें ज्यार्द्ध (नियम १८) के रूपमें रहतीहैं; पर हमें उक्त वलनोंको ४० अंगुलकी त्रिज्यासे बने वलन-वृत्त (नियम २०) में ज्यार्द्धवत् देना है; अतः त्रैराशिक किया—१००० में वलनांशोंकी ज्या तो ४० अंगुलमें कितना ? उत्तर हुआ $\frac{\text{४०×वलनांश-ज्या}}{\text{१०००}}$=वलनांश-ज्या ÷ २५ ।

(१४) शरकी गति लाना । शर-केन्द्रकी घटी-गति सुखार्थ १३ कला मानी गई है । नियम (४१) देखिये । १३ कलाओंपर विक-

लादि शर $\frac{१३\times३३}{७}$=६१ । १७=सुखार्थ १ कला होता है । इसी परिमाणसे प्रति घटी शरका उपचय वा अपचय हुआ करता है, जो ३ घटियोंमें ३ कला= १ अंगुल होता है ।

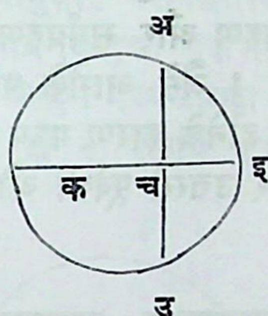
(१५) स्पार्शिक और मौक्षिक शरका लाना । स्पर्श-स्थिति और मोक्ष-स्थितिमें ३ का भाग देकर क्रमशः शरका स्पार्शिक और मौक्षिक चालन निकाले, फिर, शर-केन्द्र यदि विषम पादमें हो तो अंगुलादि पर्वान्त शरमेंसे स्पार्शिक चालनको घटानेसे और मौक्षिक चालनको जोडनेसे क्रमशः स्पार्शिक और मौक्षिक शर आते हैं। पर शर-केन्द्र यदि समपादमें हो तो उक्त चालनोंका विपरीत संस्कार करना चाहिये। जैसे-स्पर्श-स्थिति घ. ४ । २० ÷ ३=अंगुलादि १। २६ । ४०; एवं मोक्ष-स्थिति घ. ४।२÷३=अंगु १।२०।४० । शरकेन्द्र रा. ६ । ४ । ४६ । २९ विषम पादमें है; अतः स्पार्शिकशर=पर्वान्त शर अंगु. ७ । ३० । ४०—स्पार्शिक चालन अंगु. १।२६।४०= अंगु. ६।४ । एवं मौक्षिकशर=अंगु ७।३०।४०+अंगु १ । २० । ४०=अंगु. ८ । ५१ । २० ।

(१६) इष्ट परिलेख-रचनार्थ हमें ये सामग्रियां मिलीं—चन्द्र-बिम्बार्द्ध ९ । १४ । ३०; भूभार्द्ध १२ ।९८।३०; मानैक्यार्द्ध १८।१३; मानान्तरार्द्ध ७।४४; स्फुट स्पार्शिक वलन ४।१९।१२; स्फुट मध्य वलन २।५९।१२; स्फुट मौक्षिक वलन ९।२१।३६; स्पार्शिकशर ६।४; मध्यशर ७।३०।४०; और मौक्षिक शर ८।५१।२० ।

(१७) परिलेख-रचना । समतल भूमिपर किसी बिन्दुको केन्द्र मानकर उस केन्द्रपर ४० अंगुल, मानैक्यार्द्ध, मानान्तरार्द्ध और चन्द्र बिम्बार्द्ध, इन चार त्रिज्याओंसे क्रमशः वलन—वृत्त समास—वृत्त व्यास—वृत्त और बिम्ब—वृत्त नामक चार सम—केन्द्रक (Co-centric) वृत्त बनावे । जब पूर्ण—ग्रहण हो तभी व्यास—वृत्त बनावे, जैसे यहां बनाया गया है; अन्यथा नहीं । तत्पश्चात् पूर्वापर और दाक्षिणोत्तर दिशाओंकी सूचिकायें दो सीधी रेखायें उस केन्द्रपर एक दूसरेको

समकोणपर काटती और वलन-वृत्तकी परिधिको पूर्वादि चार दिग्-बिन्दुओंपर स्पर्श करती हुई खींचे। अङ्गुलके लिये कोई पैमाना (Scale) ठीक कर लेना चाहिये।

(१८) ज्या-स्वरूप-कथन। ज्या शब्दका अर्थ धनुषका गुण (रस्सी) है। अतः जो सीधी रेखा किसी वृत्त-खण्ड (चाप वा धनुष) के दोनों छोरोंको मिलावे, उसे भी ज्या कहते हैं। वृत्त-केन्द्रसे ज्यापर लम्ब गिरानेसे जिन दो तुल्य खण्डोंमें ज्या विभक्त हो जाती है, उनमेंसे प्रत्येकको ज्यार्द्ध कहते हैं।



जैसे इस चित्रमें चाप अइउकी ज्या अउ है। लम्ब कचसे उत्पन्न इसके दो खण्ड अच और उच ज्यार्द्ध हैं। कचको दोनों ओर परिधितक बढ़ानेसे वह व्यास बन जाता है, जिसपर ज्यार्द्ध लम्बवत् खड़े रहते हैं।

(१९) चन्द्र-ग्रहणके परिलेखमें बिम्ब वृत्तकी पूर्व-दिशामें स्पर्श और पश्चिम-दिशामें मोक्ष होता है। पर सूर्यग्रहणके परिलेखमें इसके विपरीत अर्थात् पश्चिममें स्पर्श और पूर्वमें मोक्ष होता है।

(२०) वलन-दान। चन्द्र-ग्रहणमें स्पार्शिक वलनको वलन-वृत्तकी पूर्वदिशामें पूर्वापर रेखापर यदि वह दक्षिण हो तो दक्षिणाभिमुख और उत्तर हो तो उत्तराभिमुख ज्यार्द्धवत् देवे। और मौक्षिक वलनको उक्त वृत्तकी पश्चिम दिशामें उक्त रेखापर

विपरीत अर्थात् वलन दक्षिण हो तो उत्तराभिमुख और उत्तर हो तो दक्षिणाभिमुख देवे। आगे बनाये हुए चन्द्र-ग्रहण-परिलेखमें वे१ले१ रेखा स्पार्शिक वलन और वे२ले२ रेखा मौक्षिक वलन है।

सूर्यग्रहणमें स्पार्शिक वलनको पश्चिमदिशामें विपरीत अर्थात् यदि वह दक्षिण हो तो उत्तराभिमुख और उत्तर हो तो दक्षिणाभिमुख देवे। और मौक्षिक वलनको यथावत् अर्थात् यदि वह दक्षिण हो तो दक्षिणाभिमुख और उत्तर हो तो उत्तराभिमुख देवे। स्पार्शिक और मौक्षिक वलनका दान वलन-वृत्तमें पूर्वापर रेखापर किया जाता है; पर मध्य वलनका दान उक्त वृत्तमें दक्षिणोत्तर रेखापर होता है। मध्य वलनको चन्द्र-ग्रहण और सूर्यग्रहणमें अपने अपने निम्नलिखित चक्रानुसार देवे। जैसे आगेके परिलेखमें मध्य वलन और मध्यशर दोनोंके दक्षिण होनेके कारण मध्य वलनकी वे३ले३ रेखा वलन वृत्तमें दक्षिणोत्तर रेखापर उत्तरसे पूर्वकी ओर दी गई है—

चन्द्र-ग्रहण.

मध्यवलन	मध्यशर	किधरसे किधर
द.	द.	उ – पू
उ.	उ.	द – पू
द.	उ.	द – प
उ.	द.	उ – प

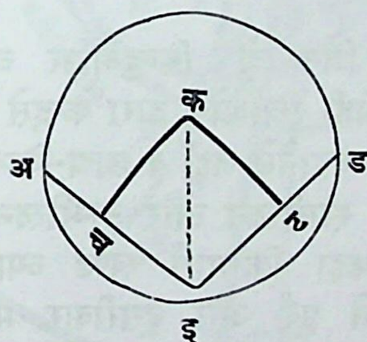
सूर्य-ग्रहण.

मध्यवलन	मध्यशर	किधरसे किधर
द.	द.	द – प
उ.	उ.	उ – प
द.	उ.	उ – पू
उ.	द.	द – पू

(२१) शर-दान। सूर्य-ग्रहणके परिलेखमें शरकी दिशानुसार उसका दान होता है अर्थात् शर यदि दक्षिण हो तो उसे दक्षिणाभिमुख और उत्तर हो तो उसे उत्तराभिमुख रखना चाहिये। पर चन्द्र ग्रहणमें

शरका दान विपरीत अर्थात् शर दक्षिण हो तो उत्तराभिमुख और उत्तर हो तो दक्षिणाभिमुख होता है; क्योंकि शराग्रमें चन्द्र और शर मूलमें भूभा रहती है और परिलेखमें बिम्ब-वृत्त द्वारा चन्द्रका स्थान मालूम रहता है; अतः चन्द्र-स्थितिके द्वारा भूभाकी स्थिति मालूम करनेके लिये शरको विपरीत देना जरूरी है।

अब शर कहाँपर देना चाहिये, सो बताया जाता है। वलन वृत्त-स्थ स्पार्शिक और मौक्षिक वलनाग्रबिन्दुओंको दो सीधी रेखाओंके द्वारा केन्द्रसे मिला देवे। ये दो रेखायें जिन दो बिन्दुओंपर समास-वृत्तकी परिधिको काटें, वहांसे क्रमशः स्पार्शिक और मौक्षिक शरका दान समास-वृत्तमें पूर्वोक्त नियमानुसार स्वनिर्द्धारित दिशामें उक्त रेखाओं पर ज्यावत् करे। मध्यवलनाग्र-बिन्दुको एक सीधी रेखा द्वारा केन्द्रसे मिला दे और इस रेखापर केन्द्रसे मध्य-शरका दान करे। आगेके परि-लेखमें श^{1} र^{1}, श^{3} र^{3} और श^{2} र^{2} रेखायें क्रमशः स्पार्शिक, मध्य और मौक्षिक शर है।



(२२) किन्हीं ऐसे तीन बिन्दुओंको स्पर्श करता हुआ एक वृत्त बनाना है, जो एक सीधमें नहीं हैं। मान लिया कि, अ, इ, उ उक्त प्रकारके तीन बिन्दु हैं, जिन्हें स्पर्श करता हुआ एक वृत्त बनाना है। इन बिन्दुओंको अ इ और इ उ दो सीधी रेखाओंके द्वारा मिलाकर उनके मध्य बिन्दु क्रमशः च और ट से दो लम्ब चक और टक खडा करे। इन दोनों लम्बोंके स्पर्श बिन्दु कको केन्द्र मान क इ त्रिज्यासे जो

वृत्त बनेगा, वही उक्त तीन बिन्दुओंको स्पर्श करता हुआ इष्ट वृत्त होगा।

(२३) परिलेखमें ग्राहक (भूभा) का मार्ग-खण्ड बनाना। नियम २२ में बतलाई हुई रीतिसे एक ऐसा वृत्त बनाओ, जो स्पार्शिक मध्य और मौक्षिक शर-मूलोंको स्पर्श करे। शराग्र न कहकर शर-मूल इस कारण कहा कि, भूभा शर-मूलमें ही रहती है। नियम २१ देखिये। आगेके परिलेखमें वृत्त खण्ड र१ र३ र२ भूभाका मार्ग-खण्ड है।

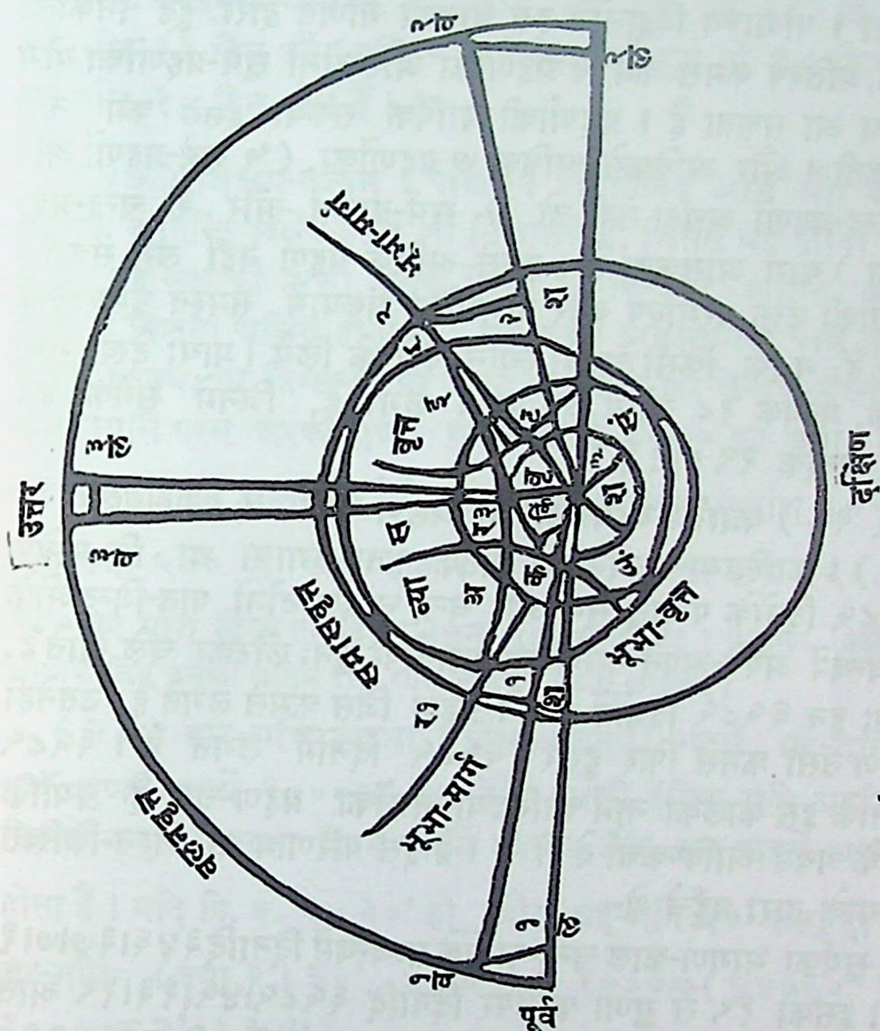
(२३क.) ग्रहणके स्पर्शादिका स्थान मालूम करना। स्पार्शिक और मौक्षिक शर-मूलोंको दो सीधी रेखाओंके द्वारा केन्द्रसे मिला देवे। ये रेखायें जिन दो बिन्दुओंपर छाद्य (चन्द्र) बिम्बको स्पर्श करेंगे वे ही क्रमशः स्पर्श और मोक्षके स्थान होंगे।

उपपत्ति-शर-मूल ही भूभाके केन्द्र हैं। समास वृत्तस्थ इन केन्द्रोंपर भूभार्द्धकी त्रिज्यासे जो वृत्त बनेंगे, वे छाद्य-बिम्बको बाहरसे स्पर्श करेंगे। आगेके परिलेखमें क और ट बिन्दु क्रमशः स्पर्श और मोक्षके स्थान हैं।

ग्राहक मार्ग-खण्ड जिन दो बिन्दुओंपर व्यास-वृत्तको क्रमशः स्पर्श करे, उन्हें दो सीधी रेखाओंके द्वारा केन्द्रसे मिलाकर उन रेखाओंको अपनी सीधमें बढानेसे जहाँ वे छाद्य-बिम्बकी परिधिको स्पर्श करें, वहाँ ही क्रमशः संमीलन और उन्मीलनके स्थान होंगे। क्रमशः इस लिये कहा कि मार्ग खण्ड व्यास-वृत्तकी परिधिको पहलीवार मध्यकालसे पूर्व और दूसरीवार मध्यके पश्चात् स्पर्श करेगा और ये ही दो स्पर्श-बिन्दु मार्ग-खण्ड और व्यासवृत्तकी परिधिके समान (Common) बिन्दु होंगे। इन्हें केन्द्र मानकर छादकार्द्धकी त्रिज्यासे जो दो वृत्त बनेंगे, वे बिम्ब-वृत्तको निगलकर उसकी परिधिको अपनेसे दूसरी ओर स्पर्श करेंगे। अर्थात् उनमें और बिम्बवृत्तमें आभ्यन्तर स्पर्श (Internal Contact) होगा। आगेके परिलेखमें अ और इ क्रमशः उक्त समान बिन्दु और तथा उं क्रमशः संमीलन और उन्मीलनके स्थान हैं।

ता० ८ जनवरी ई. सं. १९३६ के चन्द्र-ग्रहणका परिलेख

(तदनुसार विक्रमाब्द १९९२ पौष शुक्ल १५ बुधवार)।



नोट–क=स्पर्श; सं=संमीलन; उं=उन्मीलन; ट=मोक्षके स्थान हैं.

(२४) परिलेखमें परमग्रासका दिखलाना । मध्य शर मूलको केन्द्र मानकर भूभार्द्धकी त्रिज्यासे एक वृत्त बनावे। खण्ड-ग्रहणमें यह वृत्त छाद्य बिम्बका जितना भाग ढकेगा, उतनाही परम ग्रास होगा। पूर्ण ग्रहणमें यह वृत्त छाद्य-बिम्बको पूर्णतः स्वोदरस्थ

करलेगा और ग्रास और छाद्य-बिम्बके अन्तर तुल्य परम खग्रास उत्पन्न करेगा ।

(२५) प्रतिवर्ष ग्रहणोंकी परमाल्प और परमाधिक संख्या । पाश्चात्त्य विद्वानोंने इस बातको गणित द्वारा ढूंढ निकाला है कि, प्रतिवर्ष कमसे कम २ ग्रहणोंका और दोनों सूर्य-ग्रहणोंका योग अवश्य आ सकता है । ग्रहणोंकी वार्षिक संख्या इससे कम नहीं होसकती । और अधिकसे अधिक ७ ग्रहणोंका, (५ सूर्य-ग्रहणों और २ चन्द्र-ग्रहणों अथवा नहीं तो ४ सूर्य-ग्रहणों और ३ चन्द्र-ग्रहणोंका) योग आसकता है । इससे अधिक ग्रहण नहीं लग सकते । ग्रहणोंकी उक्त परमाल्प और परमाधिक संख्यायें समस्त भूमण्डलके लिये हैं; न कि, किसी देश वा स्थान विशेषके लिये । प्रायः देखा गया है कि, प्रत्येक १८ वर्षोंमें ७० ग्रहण लगते हैं, जिनमें सूर्यके ४१ और चन्द्रके २९ होते हैं ।

(२६) काल्डियावालोंका ग्रहण-चक्र (Chaldean Saros)। काल्डिया-वालोंने इस बातका पता लगाया था कि प्रत्येक ६५८५ दिनोंके पश्चात् सूर्य और चन्द्र चन्द्रके दोनों पात-बिन्दुओंके सम्बन्धमें अपने-अपने आपेक्षिक स्थानोंपर पुनः लौटकर चले आते हैं, अतः इन ६५८५ दिनोंमें जितने ग्रहण जिस क्रमसे लगते हैं, उतनेही ग्रहण उसी क्रमसे फिर दूसरे ६५८५ दिनोंमें लगते हैं । ६५८५ दिनोंके इस कालका नाम काल्डिया-वालोंका ग्रहण-चक्र है क्योंकि इसके प्रथम आविष्कर्त्ता वे ही थे । वे इस परिणाम पर निम्न-लिखित क्रियाके द्वारा पहुँचे थे—

सूर्यका भागण-काल चन्द्र-पातोंके सम्बन्धमें दिनादि ३४६।३७।७।१ है । इसको १९ से गुणा करनेपर दिनादि ६५८५।४५।१३।१९ आते हैं । और चन्द्रका भगण-काल सूर्यके सम्बन्धमें दिनादि २९ । ३१ । ५०।७ है । इसको २२३ से गुणा करनेपर दिनादि ६५८५।१५।१६।१ आते हैं । दोनों गुणन-फलोंमें केवल कुछ घटयादिकाही अन्तर है, पर दिन-संख्या दोनोंमें एक है । इससे यह मालूम हुआ कि ६५८५ दिनोंमें पातोंके सम्बन्धमें सूर्य और सूर्यके सम्बन्धमें चन्द्र अपने-अपने

भगणोंकी संख्या पूर्ण कर देते हैं, जिससे पातोंके सम्बन्धमें उनकी आपेक्षिक स्थिति पुनः पूर्ववत् होजाती है।

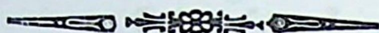
६५८५ दिनोंमें यदि ४ अधिकाह वर्ष हुए तो १८ क्रिस्तानी वर्ष और ११ दिन और यदि ५ अधिकाह वर्ष हुए तो १८ क्रिस्तानी वर्ष और १० दिन होते हैं।

(२७) विक्षेप-वलन । पाश्चात्य ज्योतिर्विद् आक्ष और आयन वलनके अतिक्ति विक्षेप-वलन भी निकालते हैं, जिससे यह जाना जाता है कि ग्रह कक्षाकी प्राची, उसके किसी इष्ट विन्दुपर क्रान्ति वृत्तकी प्राचीसे कितना चलित होती है। यह वलन पातस्थानपर परम विक्षेप (शर)तुल्य, पर त्रिभान्तर पर शून्य होता है। शर-केन्द्रके भुजांशकी कोटिज्यासे परम शरको गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे इष्ट विक्षेप वलन आता है; जैसे चन्द्रके शर-केन्द्रके भुजांश ६० की कोटिज्या ५०० से परम शर ५ को गुण, गुणन-फल २५०० में १००० का भाग दिया तो विक्षेप वलन २।३०' आया। चन्द्रका विक्षेप वलन जाननेके लिए उसकी गतिमें राहु गति जोडकर क्रिया कीजिए।

(२८) शर-गति लाना । विक्षेप-वलनकी ज्यासे ग्रह-गतिको गुण, गुणन-फलमें १०००का भाग देनेसे शरकी दैनिक गति आती है, जिसके अनुसार शरका विषम पादमें उपचय और सम पादमें अपचय होता है। यदि वि. व. २।३०' हो और ग्रह-गति ६०' कला हो तो शर-गति= (ज्या २।३०' × ६०')÷१०००=(४४×६०')÷१०००=क २'।३८"।

इति श्रीरजनीकान्तशास्त्रिकृतौ ज्योतिर्गणित—कौमुद्यां
"परिलेखाधिकारसे" नाम सप्तमः परिच्छेदः।

अष्टम-परिच्छेद।



विविध विषयाधिकार।

(१) इस परिच्छेदमें चन्द्र-दर्शन, शुक्र-मान, चन्द्र-शृङ्गोन्नति, चन्द्रोदयास्त-काल आदि विविध विषयोंपर विचार किया जायगा।

(२) चन्द्र-दर्शन। शुक्ल-प्रतिपदको चन्द्र-दर्शन होगा कि नहीं, इसे जाननेकी रीति यह है कि, अमावस्याके भोग्य घट्यादिको ६०घटियोंमेंसे घटाकर शेषको शुक्ल-प्रतिपद्के दिन-मानमें जोड देवे। फिर नीचेके चक्रमें राहुकी राशिके नीचे और सूर्यकी राशिके सामनेवाले अङ्कको निकालकर देखे कि, वह उक्त योग-फलसे कम है, वा अधिक। यदि वह अङ्क उक्त योगफलसे कम है तो शुक्ल-प्रतिपद्को चन्द्र-दर्शन होगा। यदि अधिक है तो दूजको होगा–

	रा.१	रा.२	रा.३	रा.४	रा.५	रा.६	रा.७	रा.८	रा.९	रा.१०	रा.११	रा.१२
सू. १	४३	५४	५५	५२	५६	५५	५४	५३	५२	५५	५३	५२
सू. २	४८	५१	५४	५८	५७	५७	५५	५३	५०	४६	४७	४७
सू. ३	४४	४७	५६	५७	५९	६३	६३	६१	५६	५१	४९	४४
सू. ४	४८	४९	५३	६०	६४	७३	७७	७७	७२	६६	६२	५२
सू. ५	६४	४८	५९	६४	७१	८२	८९	९४	९३	८२	८२	७२
सू. ६	७९	६९	६५	६५	६८	७८	८८	९७	१०२	१००	९७	८९
सू. ७	८४	७४	६६	६२	६४	६६	७५	८४	८२	९७	९७	९२
सू. ८	७८	७१	६३	५७	५४	५४	५७	६४	७३	७८	८२	६६
सू. ९	६६	६३	५७	५२	४८	४५	४२	४८	५३	५९	६३	६६
सू.१०	५८	५८	५६	५३	५०	४७	४६	४६	४८	५१	५४	५६
सू.११	५३	५६	५५	५४	५३	५२	५१	४९	५०	५१	५२	५३
सू.१२	५५	५३	५५	५६	५५	५५	५४	५६	५३	५३	५४	५४

(३) चन्द्र-दर्शन का उदाहरण। संवत् १९९३ आषाढ़ शुक्ल प्रतिपद् (तदनुसार २० वीं जून ई. स. १९३६) को चन्द्र-दर्शन होगा कि नहीं, इसके लिये गणित करते हैं। अमावस्याके भोग्य घट्यादि १४।१८ सूर्य-ग्रहणके प्रसङ्गमें निकाल चुके हैं। केवल २० वीं जून का दिन-मान निकालना है। वह पुस्तकमें बतलाई हुई रीतिके द्वारा घट्यादि ३३।५७ आया। अमावस्याके घट्यादि १४।१८ को ६० घटियोंमें से घटा, शेष घ. ४५।४२ में उक्तादिनमान मिलाया तो योग-फल घट्यादि ७९।३९ हुआ। २० वीं जूनको प्रातःकाल जेव-घड़ीसे ६ बजे स्पष्ट सूर्य रा. २।५।२९।३८ और राहु रा. ८। ११।५८।३२ है अर्थात् सूर्य ३ री राशि और राहु ९ वीं राशिमें है, जिससे चक्रमें ५६ घटी मिली जो उक्त योग-फल घ. ७९।३९ से कम है, अतः शुक्ल प्रतिपदको ही चन्द्र-दर्शन होगा।

(४) चन्द्र-दर्शन जाननेकी दूसरी रीति। शुक्ल प्रतिपदके सूर्यास्तकालीन सूर्य और चन्द्रको स्पष्ट करे। फिर चन्द्रमेंसे सूर्यको घटा देवे। यदि शेष १२ अंश वा उससे अधिक हो तो चन्द्र-दर्शन अवश्य होगा। यदि शेष १२ अंशोंसे कम हो तो शुक्ल-प्रतिपदके दिन चन्द्र-दर्शन नहीं होगा। ता.२०वीं जून ई स.१९३६ को आषाढ़ शुक्ल-प्रतिपद पड़ती है। उस दिनके सूर्यास्तकालीन सूर्य और चन्द्रको स्पष्ट किया तो वे क्रमशः अर्थात् सूर्य रा. २।५।५९। ५८, गति क. ५६।५८ तथा चन्द्र रा. २।२२।३९।६, गति क. ७९९।३५ हुए। चन्द्रमेंसे सूर्यको निकाल दिया तो शेष अंशादि १६।३९।८ मिला। शेष १२ अंशोंसे अधिक है, अतः शुक्ल प्रतिदको चन्द्र-दर्शन अवश्य होगा।

(५) शुक्ल-मान जानना। चन्द्रके सूर्य-किरणों द्वारा प्रकाशित भागके अङ्गुलादिमानका नाम शुक्ल-मान है। यह मान शुक्ल-पक्षमें प्रतिदिन बढ़ता और कृष्ण-पक्षमें प्रतिदिन घटता है। शुक्ल पक्षमें जिस दिनका शुक्ल-मान निकालना हो, उस दिनका इष्ट

कालिक सूर्य और चन्द्रको स्पष्ट करे । फिर चन्द्रमेंसे सूर्यको घटा शेषको कलादि बना उसमें ९०० का भाग देनेसे अंगुलादि मध्यम शुक्ल-मान आता है। फिर इसे अङ्गुलादि चन्द्र-बिम्बसे गुणकर गुणन-फलमें १२ का भाग देनेसे अङ्गुलादि स्फुट शुक्ल-मान निकलता है।

पूर्वोक्तशुक्ल-प्रतिपदका अस्त-कालीन शुक्ल-मान जानना है तो पूर्वोक्त चन्द्र-सूर्यान्तर अंशादि १६ । ३९ । ८ = कलादि ९९९ । ८ में ९०० का भाग दिया तो मध्यम शुक्ल-मान अङ्गुलादि १ । ६ । ३६ आया । फिर चन्द्र-गति कलादि ७९९ । ३६ में ७४ का भाग दिया तो चन्द्र-बिम्ब अङ्गुलादि १० । ४८ । १९ मिला । इससे उक्त शुक्ल-मानको गुण, गुणन--फल ११ । ५९ । ३८ में १२ का भाग दिया तो स्फुट शुक्ल-मान अङ्गुलादि ० । ५९ । ५८ (लग-भग १ अङ्गुल) आया ।

(६) कृष्ण-पक्षमें शुक्ल-मान जानना हो तो सूर्यमेंसे चन्द्रको घटा शेष क्रिया पूर्ववत् करनी चाहिये ।

(७) चन्द्र-शृङ्गोन्नति । चन्द्र बिम्बके आधेसे कम प्रकाशित रहनेपर वह शृङ्गाकार दीख पड़ता है । ऐसा दृश्य शुक्ल-पक्षमें अष्टमीसे पहले और कृष्ण-पक्षमें अष्टमीके बाद देखनेमें आता है। दोनों शृङ्गोंमेंसे कौनसा (उत्तर वा दक्षिणवाला) शृङ्ग उठा रहेगा, इसे मालूम करनेकी रीति।

यह स्पष्ट है कि जब चन्द्र और सूर्यमें केवल ऊर्ध्वाधर अन्तर रहता है,तब चन्द्रके दोनों शृङ्ग सम रहते हैं; और जब उनमें केवल दक्षिणोत्तर अन्तर रहता है तब चन्द्रके शृङ्ग ऊर्ध्वाधर रहते हैं । इन दोनों अवस्थाओंमेंसे किसी भी अवस्थामें शृङ्गोन्नतिकी उपलब्धि नहीं होती। यह उपलब्धि तब होती है,जब उनमें ऊर्ध्वाधर और दक्षिणोत्तर दोनों प्रकारके अन्तर रहते हैं अर्थात् जब चन्द्र और सूर्य एक दूसरेसे तिरछे रहते हैं। शृङ्गोन्नति जाननेके लिये दोनों प्रकारके अन्तर निकालने पडते हैं । इसके लिये सूर्य और चन्द्र सम्बन्धी अग्रा, शङ्कु, शङ्कु-

तल आदि विविध उपकरण त्रिप्रश्नाधिकारमें बताई हुई रीतियोंके द्वारा निकालने चाहिये। मान लिया कि २० वीं जून ई. स. १९३६ (तदनुसार संवत् १९९३ आषाढ शुक्ल प्रतिपद्) की सूर्यास्तकालीन चन्द्र-शृङ्गोन्नति जाननी है तो–

(क) सूर्य-सम्बन्धी उपकरण। सूर्यास्त कालीन स्पष्ट सूर्य रा. २।५।५९।५८॥ अयनांश २३।४।३९॥ सायन सूर्य रा. २।२९।४।३७॥ उत्तर क्रान्ति २३।२६।४६॥ विषुवांश रा. २।२८।५९।३९॥ क्रान्ति ज्या ३९८॥ क्रान्ति कोटिज्या (द्युज्या) ९१७॥ अग्रा=३९८×(१३।१६)÷१२=४४० उत्तर॥ कुज्या= ३९८ × (५।४०) ÷ १२=१८८॥ चरज्या=(१०००× १८८) ÷ ९१७=२०५ ॥ चरांश ११। ४९।३७॥ सूर्य क्षितिजस्थ है, अतः उसका शंकु और शंकु-तल दोनों ० (शून्य) है।

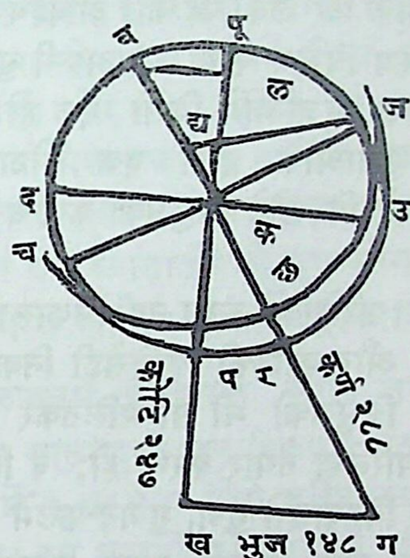
(ख) चन्द्र-सम्बन्धी उपकरण। सूर्यास्तकालीन स्पष्ट चन्द्रा. २।२२।३९।६ अयनांश २३।४।३९॥ सायन चन्द्र रा. ३। १५।४३।४५॥ मेषादि॥ भुजांश ७४।१६।१५॥ कोटी गुणक १२०॥ कर्ण-गुणक १००७॥ राहु रा. ८।११।५०।२९॥ चक्रशुद्ध राहु रा. ३।१८।९।३१॥ स्पष्ट चन्द्र रा. २।२२।३९। ६ शर-केन्द्र रा. ६।१०।४८।३७ तुलादि ॥ चन्द्र-शर कलादि ५०।३० दक्षिण; कोटी-संस्कार क. ६।४ ऋण॥ कर्ण-संस्कार क. ५०।५१ दक्षिण॥ कोटीसंस्कृत चन्द्र रा. २।२२।३३।२॥ अयनांश २३।४।३९॥ को. सं. सायन चन्द्र रा. ३।१५।३७। ४१॥ भुजांश ७४।२२।१९॥ विषुवांश-फल अंशादि १।१९। ३६ धन॥ चन्द्र विषुवांश रा. ३।१६।५७।१७॥ को. सं. सायन चन्द्र रा. ३।१५।३७।४१ पर क्रान्ति अं. २२।३१।२८ उत्तर। कर्ण संस्कार क. ५०।५१ को उक्त क्रान्ति अं. २२।३१। २८ मेंसे घटाने पर चन्द्रकी स्पष्ट क्रान्ति अं. २१।४०।३७ मिली। यह भी उत्तर है। क्रान्तिज्या ३६९; क्रान्ति कोटिज्या (द्युज्या) ९२८

अग्रा = ३६९ × (१३ । १६) ÷ १२ = ४०८ उत्तर । कुज्या = ३६९ ×(५ । ४०) ÷ १२ = १७४ ॥ चरज्या=(१७४×१०००)÷ ९२८ = १८८ ॥ चरांश १० । ५० । ४६ ॥ उन्मण्डल शंकु १५८॥ उन्नतकालांश १६ । ५८ । ४७ ॥ निरक्षीय उन्नतकालांश ६ । ८ १ ॥ सूत्र १०६ ॥ कला ९८ ॥ यष्टि (९८ × १२) ÷ १३ । १६ = ८९ ॥ स्पष्ट शंकु = १५८ + ८९ = २४७ ॥ शंकुतल = २४७ × (५ । ४०) ÷ १२ = ११६ । दक्षिण; त्रिप्रश्नाधिकार, नियम ५८-७८ देखिये ।

(ग) भुज और स्पष्ट भुज । शंकु-मूल और पूर्वापर सूत्रका दक्षिणोत्तर अन्तर भुज कहलाता है, जो अग्रा और शंकु तलका एक-दिशामें योग और भिन्न दिशामें वियोग करनेसे निकलता है । यहाँ सूर्यकी क्रान्ति उत्तर होनेसे उसकी अग्रा ४४० भी उत्तर हुई और शंकु-तल शून्य है; अतः उसकी अग्रा ४४० ही भुज हुई । चन्द्र-क्रान्ति भी उत्तर है; अतः उसकी भी अग्रा उत्तर हुई और उसका शंकु-तल उसके अहोरात्र वृत्तके दक्षिण झुकावके कारण दक्षिण हुआ; अतः चन्द्र-भुज = ४०८ (अग्रा) – ११६ (शंकुतल) = २९२ । अब चन्द्र और सूर्यका परस्पर दक्षिणोत्तर अन्तर उनके भुजोंके द्वारा जो निकले, वही स्पष्ट भुज होगा । इसके लिये उनके भुजोंका सम-दिशामें अन्तर और भिन्न दिशामें योग लेवे । योग लेनेपर किम्बा चन्द्र-भुजमेंसे सूर्य-भुजको घटाकर अन्तर लेनेपर चन्द्रभुजकी दिशा ही स्पष्ट भुजाकी दिशा होती है । पर यदि सूर्य-भुजमेंसे चन्द्र-भुज घटाकर अन्तर लिया गया हो तो चन्द्र-भुजसे स्पष्ट भुजकी दिशा विपरीत होगी और चन्द्र सूर्यके भुजोंकी दिशा इस प्रकार जाननी चाहिये कि, यदि अग्रा और शंकुतलका योग लिया गया हो तो भुजकी दिशा भी अग्रा और शंकुतलकी समदिशाही होती है और यदि उनका अन्तर लिया गया हो तो दोनोंमेंसे जो अधिक हो, उसीकी दिशा भुजकी दिशा होती है। और जहाँ शंकुतलका अभावहो, वहाँ अग्राकी दिशा ही भुजकी

दिशा होती है। इन सब बातोंके विचारसे स्पष्ट भुज = सूर्य भुज उत्तर ४४०—चन्द्र भुज उत्तर २९२ = स्पष्ट भुज दक्षिण १४८।

(घ) शृङ्गोन्नति-क्षेत्र। यह वह समकोण त्र्यस्र है जिसकी, क्षितिजस्थ सूर्यमें, चन्द्र-शंकु कोटि, स्पष्ट भुज भुज और दोनोंके वर्ग-योगका वर्गमूल कर्ण है। अतः प्रस्तुत शृङ्गोन्नति क्षेत्रकी कोटि २४७; भुज= १४८ और कण $= \sqrt{२४७^२ + १४८^२} =$ २८८।



(ङ) शृङ्गोन्नति-परिलेख। इस चित्रमें कखग एक समकोण त्रिभुज है, जिसकी कोटि २४७, भुज १४८ और कर्ण २८८ है। कोटि और कर्णके संपात बिन्दु क को केन्द्र मान ६ अंगुलकी त्रिज्या से एक वृत्त पूदपउ चन्द्र-बिम्बका सूचक बना उसकी परिधिपर चतुर्दिग् ज्ञापक उक्त चार बिन्दु बना दिये। पुनः कोटि और कर्णको संपात बिन्दु क के आगे अपनी अपनी सीधमें बिम्ब परिधिस्थ क्रमशः पू और ब बिन्दु तक बढाया और बिम्ब-वृत्तमें कर्णके साथ समकोण बनाती हुई एक व्यास-रेखा जच खींची। तत्पश्चात् मध्यम शुक्ल-मान अंगु- १ ६। ३६ (नियम ९) को सुखार्थ १ अंगुल मानकर उसका बिम्बमें

कर्ण-प्रवेशबिन्दु रसे कर्णस्थ छ बिन्दुतक दानकिया । अब जो वृत्त च छ ज इन तीन बिन्दुओंको स्पर्श करता हुआ बनेगा, उससे बिम्बका जितना भाग खण्डित होगा, वह शृंगाकार देख पड़ेगा और सूर्यकी दिशावाला शृंग उन्नत और चन्द्रकी दिशावाला शृंग नत होगा। यहाँ उत्तर शृंग उन्नत है, क्योंकि, चन्द्रसे सूर्य उत्तर दिशामें हैं । जिस वृत्तसे चन्द्र-वृत्त खण्डित होता है, उसे 'परिलेखवृत्त' कहते हैं। इसे सप्तम परिच्छेद, नियम २२ के अनुसार बना लेवे। परिलेखके लिये कोई पैमाना ठीक कर लेवे। यह कोई आवश्यक नहीं है कि, शृङ्गोन्नति-क्षेत्र (परिलेखस्थ त्रिभुज क ख ग) अपनी भुजाओंके पूर्णमानसे बनाया जाय। वल्कि भुजाओंमें किसी एक ही भाजक का भाग देकर लब्धितुल्य भुजाओंके द्वारा एक छोटा त्रिभुजभी बना सकते हैं; पर ध्यान रहे कि, छोटे त्रिभुजका कर्ण चन्द्र बिम्बार्द्धसे छोटा न होने पावे।

(७ क) वलन। परिलेखमें वलन नहीं निकाला गया है। वलनका काम त्रिभुजके कर्ण और कोटिकी वृद्धिसेही निकाला गया है और इसीलिये परिलेखमें त्रिभुजको भी सम्मिलितकर लिया गया है । जिन्हें वलन द्वारा परिलेख तैयार करना हो, वे त्रिभुजको छोड देवें और उसके भुजको बिम्बार्द्धसे गुण, गुणन-फलमें कर्णका भाग देकर लब्धि-तुल्य वलनका दान मासके प्रथम चरणमें पूर्वबिन्दुसे और मासके चतुर्थ चरणमें पश्चिम बिन्दुसे, भुजकी दिशामें करे। वलनाग्रसे वलन-सूत्र नामक व्यास खींचकर उसपर शुक्लका दान, शुक्लपक्षमें पश्चिमकी ओरसे तथा कृष्ण-पक्षमें पूर्वकी ओरसे कर शेषक्रिया पूर्ववत् करे। विचाराधीन परिलेखमें वलन अंगु. ३ । ९ का दान पूर्वबिन्दुसे बल ज्यावत् देकर वकर व्यासको वलन-सूत्र कल्पना करे ।

(८) विभा और स्वभा। परिलेख-निर्माणमें परिलेख वृत्तका केन्द्र सप्तम परिच्छेद नियम २२ के अनुसार निकाला गया है। यह केन्द्र दूसरे प्रकारसे भी लाया जा सकता है। एक ऐसे समकोणत्र्यस्त्रकी कल्पना करो कि, जिसका कर्ण परिलेखवृत्तका व्यासार्द्ध, भुज बिम्ब–

व्यासार्द्ध कज वा कच=६ और कोटिकर्णान्तर = शुक्लोनितबिम्ब-व्यासार्द्ध (६–१)=५ है । इन उपकरणोंसे कर्ण और कोटिको निकाला । भुज^2=कर्ण^2–कोटि^{2}=(कर्ण+कोटी) (कर्ण–कोटी); अर्थात् ३६=(कर्ण+कोटि) ×५ जिससे (कर्ण+कोटि)=$\frac{३६}{५}$=७।१२। इसमें (कर्ण-कोटि) =५ को जोडा तो २ कर्ण=१२।१२ और घटाया तो २ कोटि=२।१२ जिससे कर्ण=६।६ और कोटि=१ । ६ इसी कोटिको 'विभा' और कर्णको 'स्वभा' कहते हैं। विभाका दानवलन सूत्रपर इस प्रकार करे कि, उसे मासके प्रथम चरणमें बिम्ब–केन्द्रसे पूर्वकी ओर अन्त चरणमें पश्चिमकी ओर करे । इसके अनुसार कार्य किया तो परिलेख वृत्तका केन्द्र घ मिला। घको ज वा चसे मिलाया तो घज वा घच इष्ट त्र्यस्रका कर्ण हुआ; यही परिलेख वृत्तका व्यासार्द्ध है । घ को केन्द्र मानकर घज वा घच व्यासार्द्धसे जो वृत्त बनेगा, वही परिलेख वृत्त होगा और उसीसे बिम्ब खण्डित होकर शृङ्गाकार देख पड़ेगा ।

(८ क) शुक्लपक्षमें चन्द्रास्त काल जानना । चन्द्रका सूर्यास्तकालीन उन्नत कालांश त्रिप्रश्नाधिकारमें बतलाई हुई रीतियोंके अनुसार लाकर उसमें ६ का भाग देनेसे लब्धितुल्य घट्यादि चन्द्रास्त काल आता है । पुनः इस घट्यादिको घंटादिमें परिणत कर सूर्यास्त-कालमें जोड़ देनेसे चन्द्रास्त कालके घंटादि मालूम होते हैं । इस प्रकार साधित चन्द्रास्तकालके स्पष्ट सूर्य और चन्द्रके चरांश-संस्कृत विषुवांशान्तरमें फिर ६ का भाग देकर असकृत् कर्मके द्वारा उसे सूक्ष्म करे । संवत् १९९३ आषाढ शुक्ल प्रतिपद्के सूर्यास्तकालीन चन्द्रके पूर्वोक्त उन्नत कालांश १६°।५८'।४७" में ६ का भाग देकर लब्धि घट्यादि २।४९।४८=घण्टादि काल १ । ७ । ५५ को सूर्यास्त घं.६ । ४८ । ४३ में जोड़ा तो चन्द्रास्तकालके घंटादि । ७ । ५६ । ३८ हुए । इसपर असकृत्-कर्म द्वारा चन्द्रास्त-कालको सूक्ष्म बना लेवे ।

(९) चन्द्रास्त-काल जाननेकी दूसरी-रीति । सूर्यास्त-कालीन-सायनसूर्यमें ६ राशियोंको मिलानेसे सूर्यास्त-कालीन लग्न आती है । इसी प्रकार सूर्यास्त-कालीन सायन-चन्द्रमें ६ राशियोंको मिलानेसे चन्द्रास्त-कालीन लग्न मालूम होती है । दोनों लग्नोंके इष्ट-कालों (परि॰ ९ नि. ४७) का अन्तर लेनेसे भी यह मालूम हो जाता है कि, सूर्यास्तके कितने घट्यादिके बाद चन्द्रास्त होगा ।

जैसे पूर्वोक्त शुक्ल-प्रतिपद्के सायन सूर्य रा. २ । २९ । ४ । ३७ (सूर्यास्त-कालीन) में ६ राशियोंको जोड़ा तो तत्कालीन-लग्न (सायन) रा. ८ । २९ । ४ । ३७ हुई, जिसका इष्टकाल पलादि २८०९ । ६ हुआ । फिर तत्कालीन-सायन चन्द्र रा. ३।१९ । ४३ । ४९ में ६ राशियोंको मिलाया तो चन्द्रास्त-कालीन लग्न (सायन) रा. ९ । १९ । ४३ । ४९ हुई, जिसका इष्टकाल २९७८।३० हुआ । दोनों इष्टकालोंका अन्तर लिया तो पलादि १६९ । २४ = घट्यादि २ । ४९ । २४=घंटादि १ । ७ । ४६ आया, जिसे सूर्यास्तकालके घंटादि ६ । ४८ । ४३ में मिलानेसे चन्द्रास्तकालके घंटादि ७। ५६। २९ आये । दोनों रीतियोंसे लग-भग एक ही फल आया ।

(१०) कृष्ण-पक्षमें चन्द्रोदय-काल जानना । सन्ध्याकालीन सूर्यमें ६ राशियोंको मिलाकर उसे सषड्भ बनावे । फिर सन्ध्या कालीन चन्द्र और सषड्भ सूर्यके विषुवांश ला, उनमें६ का भाग देनेसे जो उनके विषुव-काल मिलें, उनमें अपने-अपने चर-पलका विपरीत संस्कार करने अर्थात् सायनसूर्यके मेषादि और चन्द्र-क्रान्तिके उत्तर होने पर ऋण तथा सायन सूर्यके तुलादि और चन्द्र-क्रान्ति दक्षिण होनेपर धन करनेसे, वे क्षितिजस्थ होते हैं । फिर शेष क्रिया चन्द्रास्त-कालकी तरह करनी चाहिये ।

(११) चन्द्रोदय-काल, चन्द्रास्त-कालकी तरह, दो लग्नोंके इष्ट-कालोंका अन्तर लेनेसे भी मालूम होता है । सन्ध्याकालीन सषड्भ सूर्य और चन्द्रको सायन बना देनेसे वे क्रमशः सूर्यास्त-कालीन

और चन्द्रोदय-कालीन लग्न (सायन) होते हैं। फिर इन लग्नोंके इष्ट-कालोंका अन्तर ले शेष क्रिया चन्द्रास्त-कालकी तरह करे।

नोट—किसी लग्नका इष्ट-काल ज्ञानार्थ स्वतंत्र गणितसे उसे लानेके बदले सुखार्थ स्वदेशके तिथि-पत्रमें दी हुई लग्न-सारिणीका आश्रय ले सकते हैं।

उदाहरण। विक्रम-सम्वत् १९६३, शकाब्द १८२८, माघकृष्ण ४, गुरुवारका चन्द्रोदय-काल स्वर्गीय श्री पं० सुधाकर द्विवेदिरचित सूर्य-सिद्धान्तमतानुसारी तिथि-पत्रके द्वारा निकालते हैं। दिनमान घ. २६। ९ रात्रिमान घ. ३३। ५१; रात्र्यर्द्धमान घ. १६। ५५। उक्त तिथिके निशीथ कालीन सूर्यारा. ८।१९।४१।४ और चन्द्र रा. ४।५। १९। ११ में क्रमशः तिथि ३ के निशीथ कालीन सूर्य और चन्द्रको निकाल देनेसे सूर्यगति अंशादि १।१।२६ और चंद्र-गति अंशादि १२। ३७।४८ मिली। इन गतियोंको उक्तरात्र्यर्द्ध-मानसे गुणकर, गुणन-फलोंमें ६० का भाग देनेसे क्रमशः सूर्यका चालन क. १७।१९ और चन्द्रका चालन अंशादि ३।२३।३८ मिला। तिथि ४ के निशीथ-कालीन उक्तसूर्य और चन्द्रमेंसे अपने-अपने उक्तचालनोंको निकाल देनेसे उक्त तिथिके सूर्यास्त-कालीन सूर्य रा. ८। १९। २३। ४५ और चन्द्र रा. ४। १। ४१। ३३। मिला। इस सूर्यमें ६ राशियोंको जोड़ा तो सषड्भ सूर्य रा. २।१९।२३।४५ हुआ। सषड्भ सूर्य और उक्त चन्द्रमें तत्कालीन अयनांश २२।२१।५२ जोड़ा तो क्रमशः सूर्यास्त-कालीन सायनलग्न रा. ३।११।४५।३७ और चन्द्रोदय-कालीन सायनलग्न रा. ४।२४।३।२५ मिली। इन लग्नोंके इष्टकाल उक्ततिथिपत्रमें दी हुई सारणीके अनुसार सानुपात क्रमशः घटयादि १५। १२। ४१ और घटयादि २३।१८।३६ आये, जिनके अन्तर घटयादि ८।५।५५ को घंटादिमें परिणत करनेपर घं. ३।१४ मिला। इसे सूर्यास्त काल घं. ५। १४ में जोड़ा तो चन्द्रास्त-काल घं. ८। २८ आया। तिथि-पत्रमें भी चन्द्रोदय-काल घं. ८।२८ लिखा है, जो ठीक वही है, तो यहाँ निकाला गयाहै।

(१२) चन्द्रास्त-काल तथा चन्द्रोदय-काल जाननेकी सरल किन्तु स्थूलरीति । शुक्ल-पक्षमें सूर्यास्त-कालीन चन्द्र और सूर्यके अन्तरांशोंको रात्र्यर्द्ध-मानसे गुणकर गुणन-फलमें ९० का भाग देनेसे जो घट्यादि मिले, वही चन्द्र-सूर्यका अस्तान्तर-काल है । इसी-प्रकार कृष्ण पक्षमें सूर्यास्त-कालीन सषड्भ सूर्य और चन्द्रके अन्तरांशोंको रात्र्यर्द्ध मानसे गुण, गुणन-फलमें ९० का भाग देनेसे सूर्यास्त-काल और चन्द्रोदय कालके अन्तर-घट्यादि मालूम होते हैं । शेष क्रिया पूर्ववत् करनी चाहिये ।

उदाहरण—२० वीं जून ई. स० १९३६ का चन्द्रास्तकाल जानना है तो सूर्यास्त-कालीन चन्द्र और सूर्यके अन्तरांशों १६ । ३९ । ८ को रात्र्यर्द्ध घ. १३।१।३० से गुण, गुणन-फल घ. २१६।९३।४२ में ९० का भाग दिया तो लब्धि घ. २।२४।३६ मिली । इसी प्रकार संवत् १९९३ माघ कृष्ण ४ का चन्द्रोदय-काल जाननेके लिये सूर्यास्त कालीन चन्द्र और सषड्भ सूर्यके अन्तरांश४२।१७।४८को रात्र्यर्द्ध घ. १६।५५ से गुण, गुणन-फल घ. ७१५।३१।७ में ९० का भाग दिया तो लब्धि घ. ७।५७।१ मिली । इन दो लब्धियोंके द्वारा क्रमशः चन्द्रास्त-काल और चन्द्रोदय-काल, शेष क्रिया पूर्ववत् कर, निकाल लेवे ।

(१३) यदि चन्द्रकी स्पष्टक्रान्ति सूर्यकी परमक्रान्तिसे अधिक हो तो निम्नलिखित चक्रसे उसका चर-पल साधन करे—

चरपल—सारणी (घट्यादि) ।

		अक्षांश					
		२०	२३	२५	२८	३०	३३
क्रान्ति	१०	०।३७	०।४३	०।४७	०।५४	०।५८	१। ६
	१५	०।५६	१। ५	१।१२	१।२२	१।२९	१।४०
	२०	१।१६	१।२९	१।३८	१।५४	२। १	२।१७
	२५	१।३८	१।५४	२। ६	२।२३	२।३६	२।५६
	३०	२। १	२।२२	२।३६	२।५६	३।१३	३।३८
	३५	२।२६	२।५२	३। ८	३।३३	३।५३	४।२६

उदाहरण। मानलिया कि क्रांत्यंश २७ पर अक्षांश २९ का चर-पल निकालना है तो इष्ट क्रान्त्यंश २५ और ३० के बीचमें है। पहले क्रान्त्यंश २५ पर अक्षांश २९ का चरपल निकाला तो वह घ. २।२९।३० (सानुपात) हुआ। फिर क्रान्त्यंश ३० पर अक्षांश २९ का चर-पल निकाला तो वह घ. ३।५४।३० (सानुपात) हुआ। इष्ट क्रान्त्यंश २७ के, २५ और ३० के बीचमें होनेके कारण, उसका अक्षांश २९ पर चर-पल उक्त चर-पलोंके द्वारा सानुपात घ. २।५३।३० निकला। ऐसे ही सर्वत्र समझना चाहिये।

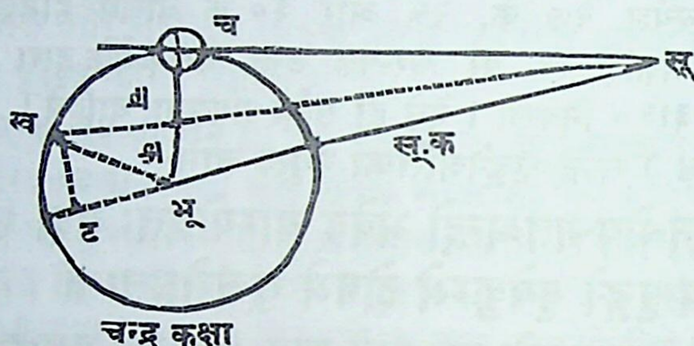
(१४) चन्द्र-शृङ्गोन्नतिका स्थूल ज्ञान-

मीन-मेष-गतश्चन्द्रो भवेद् याम्योन्नतः सदा।
समशृङ्गो वृषेकुम्भे शेषभे तूत्तरोन्नतः॥

अर्थ—अमावस्याके बाद पहले पहल जिस दिन चन्द्र-दर्शन होता है, उसी दिन उसकी शृङ्गोन्नति जाननेके लिये यह श्लोक है। मीन और मेषके चन्द्रका दाक्षिण शृङ्ग उन्नत होता है। वृष और कुंभके चन्द्रके दोनों शृङ्ग सम रहते हैं। शेष राशियोंके चन्द्रका उत्तर शृङ्ग उन्नत होता है। संवत् १९९३ आषाढ़ शुक्ल प्रतिपद (२० वीं जून ई. स. १९३६) के सूर्यास्तकालीन स्पष्ट चन्द्र रा. २।२२।३९।६ का दर्शन हुआ है। चन्द्र मिथुन राशिका है; अतः उसका उत्तर शृङ्ग उन्नत हुआ। नियम (७) के अनुसार भी उत्तर-शृङ्ग ही उन्नत आया है।

(१५) भास्कराचार्यके मतसे चन्द्रका शुक्ल-मान। अमावस्याके दिन चन्द्र-सूर्यका अन्तर शून्य और चन्द्रका शुक्ल-मान भी शून्य रहता है। पुनः शुक्ल पक्षमें जैसे-जैसे उक्त अन्तरमें वृद्धि होती है, वैसे-वैसे शुक्ल-मानका भी उपचय होता है; यहाँ तककी पूर्णिमाको जब चन्द्र-सूर्यके अन्तरांश १८० हो जाते हैं तो चन्द्रका पूर्ण विम्ब शुक्ल होजाता है। पुनः कृष्णपक्षमें चक्रशुद्ध अन्तरांशोंके ह्रासके साथ-साथ शुक्लका भी ह्रास होता है। अतः स्थूल विचारसे

यह अनुमान होता है कि ९० अंशोंके अन्तरपर, न कि उससे कमपर, चन्द्रका आधा बिम्ब शुक्ल होता होगा; जैसा कि भास्कराचार्यसे पूर्वके आचार्य माना करते थे । पर भास्कराचार्यके मतसे ८९ । ४५' के अन्तरांशोंपर ही बिम्बार्द्ध शुक्ल हो जाता है, जो नीचेके चित्रसे स्पष्ट है–



चन्द्र कक्षा

भू (पृथ्वी) बिन्दुको केन्द्र मान चन्द्रकर्ण (५१५६६) की त्रिज्यासे चन्द्रकक्षा बनाई । भूबिन्दुसे सूर्य-कर्ण (६८९३७७) के तुल्य एक भूसू रेखा खींची और सूबिन्दुसे चन्द्रकक्षापर एक स्पर्श-रेखा सूच खींच भूच बिन्दुओंको एक सीधी रेखासे मिला दिया । ज्यामितिके नियमानुसार भूच और सूच रेखाएँ परस्पर लंब हैं और ∠भूचसू सम कोण है । चन्द्रका वह गोलार्द्ध जो सूर्य-सम्मुख है, सदा पूर्ण-शुक्ल रहता है । अब ऐसे दो धरातलोंकी कल्पना करो, जिनमेंसे एक तो भूच रेखाको और दूसरा सूच रेखाको धारण करता है और जो चन्द्र मध्यमें जाकर परस्पर लंब होते हैं । भूच रेखावाला धरातल चन्द्रगोलपर जाकर अन्धकार (कृष्ण) और प्रकाश (शुक्ल) का विभेदक होगा । इसी प्रकार सूच रेखावाला धरातल चन्द्र गोलपर जाकर सूर्य-सम्मुखस्थ पूर्ण-शुक्लको दो तुल्य भागोंमें खंडित करेगा, जिनमेंसे नीचेवाला खंड भूवासियोंको शुक्ल बिम्बार्द्धके रूपमें दीख पडेगा ।

चन्द्र और सूर्यका अन्तरांश ∟ च भूसू है। यह अन्तर ∟ भूचसू- ∟ चसूभू=९०-चसूभूके तुल्य है। ∟ चसूभूको मालूम करना है। ज्या ∟ चसूभू= $\frac{\text{चभू}}{\text{सूभू}}$ ×१००० = $\frac{\text{चन्द्रकर्ण}}{\text{सूर्यकर्ण}}$ ×१००० = $\frac{५१५६६×१०००}{६८९३७७}$ = ७४·८

इसका धनु, ४ । १६' । ९६"= सुखार्थ ४ । १९' ∟ चसूभूका मान है। अतः अन्तरांश ∟ चभूसू=९०-४ । १९ = ८९ । ४९' हुआ।

(१६) चन्द्रशृंगोन्नति परिलेख रचनामें पूर्ण चन्द्रबिम्ब १२ अंगुलका माना जाता है, जो १८० में १५ का भाग देनेसे आता है। पर ८९ । ४९' में १९ का भाग देनेसे शुक्ल ६ अंगुल नहीं आता, जो आना चाहिये; अतः उसमें फल-संस्कार ४ । १९' जोडकर ९० बना १९ का भाग देते हैं। फल यह निकला कि, किसी भी इष्ट अन्तरांशको शुक्लानयनोपयुक्त बनानेके लिये उसमें तात्कालिक फलका संस्कार करना चाहिये, जिसके लिये नियम यह है-

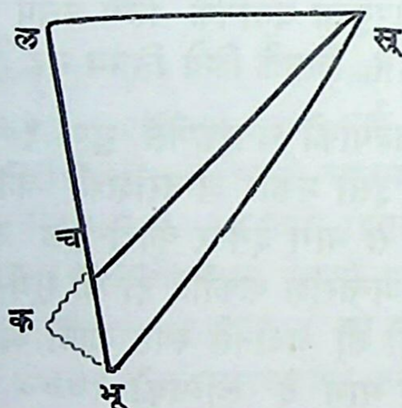
अन्तरांशकी भुजज्याको चन्द्रकर्णसे गुण १००० से भाग देनेपर भुजफल आता है। इसी प्रकार अन्तरांशकी कोटी ज्याको चन्द्रकर्णसे गुण १००० से भाग देनेपर कोटी-फल आता है। पुनः इस कोटी-फलको यदि अन्तरांश कर्कादि हो तो सूर्य-कर्णमें जोड़नेसे, पर यदि वह मकरादि हो तो घटानेसे स्पष्ट कोटी आती है। पुनः भुजफलमें स्पष्ट कोटीका भाग दे लब्धिको १००० से गुण देनेपर इष्ट फलकी स्पर्श-रेखा निकलती है, जिसका धनु इष्ट फल होता है। इस इष्ट फलको शुक्ल पक्षमें अन्तरांशमें जोड़नेसे, पर कृष्णपक्षमें घटानेसे अन्तरांश स्पष्ट हो जाता है। पर कृष्ण-पक्षीय स्पष्ट अन्तरांशको चक्रशुद्ध करनेपर ही वह काममें लाने योग्य होता है।

उदाहरण-अन्तरांश १९०; भुजांश ३०; भुजफल= $\frac{५००×५१५६६}{१०००}$ = २५७८३; कोटीफल= $\frac{८६६×५१५६६}{१०००}$ =४४६५६;

स्पष्ट कोटी=४४६९६+६८९३७७=७३४०३३; स्प. रे. फल= $\frac{२५७८३}{७३४०३३}$×१०००=३५ जिसका धनु=२ ; स्पष्ट अन्तरांश १५०°+२°= १५२ ; शुक्लमान=१५२÷१५= अंगुलादि १० । ८ । पूर्वोक्त चित्रमें खट=भु. फ. भूट=को. फ. सूट= स्प. को. और ∠ खसूट फल है।

नोट–पाश्चात्य मतसे सूर्यकर्ण=९२७०००००मील तथा चन्द्रकर्ण= २३८००० मील है; अतः परम फल ज्या= $\frac{२३८०००×१०००}{९२७०००००}$=२·६ जिसका धनु ८'।५५" जो अगण्य है। अतः पाश्चात्य ज्यौतिष तथा सूर्यसिद्धान्त इस प्रकारका फल–संस्कार नहीं मानते।

(१७) **सितांश।** सितांश वह बहिः कोण है, जो चन्द्रपर पृथ्वी और सूर्यसे वहाँ तक खींची हुई दो रेखाओंसे उत्पन्न होता है।



इस चित्रमें भू=पृथ्वी; च=चन्द्र; सू=सूर्य; सूल बढ़ाई हुई भूच रेखापर सू बिन्दुसे लम्ब; अतः च विन्दु पर बहिः कोण ∠ सूचल= सितांश और ∠ सू भूल=अन्तरांश है। एवं सूल=भु. फ. भूल=को. फ. और लच=स्प. को. है।

अन्तरांश जानकर सितांश जानना। पाश्चात्य ज्योतिर्विदोंके मतसे सूर्यकर्ण ९२७००००० मील और चन्द्रकर्ण २३८००० मील है।

गणित लाघवके लिये दोनोंका ९२७० से अपवर्त्तन किया तो सूर्य-कर्ण १०००० और चन्द्रकर्ण २६ के आसन्न हुआ । अन्तरांशकी ज्याको सूर्य कर्णसे गुण १००० का भाग देनेसे भुजफल आता है। इसी प्रकार अन्तरांशकी कोटी ज्याको सूर्य कर्णसे गुण १००० का भाग देनेसे कोटीफल आता है। फिर इस कोटी फलमेंसे चन्द्रकर्णको यदि अन्तरांश मकरादि हो तो घटानेसे पर यदि वह कर्कादि हो तो जोड़नेसे स्पष्ट कोटी होती है। फिर भुजफलमें स्पष्ट कोटीका भाग दे लब्धिको १००० से गुण देनेसे सितांशकी स्पर्श-रेखा होतीहै जिसका धनुसितांश होताहै ।

उदाहरण-अन्तरांश १७।४१'; भुजफल=$\frac{३०४\times१००००}{१०००}$=३०-४०; कोटीफल $\frac{९५३\times१००००}{१०००}$=९५३० स्पष्टकोटी=९५३०-२६=९५०४; स्प. रे. सितांश=$\frac{३०४०}{९५०४}\times१०००$=३२०, इसका धनु, १७।४४' सितांश हुआ ।

नोट-यह पाश्चात्य रीतिसे हुआ; जिन्हें प्राच्य रीतिसे गणितकरना हो वे चन्द्रकर्णको ९१९६६ और सूर्यकर्णको ६८९३७७ योजन मान कर सारी क्रिया उक्त रीतिसे करें ।

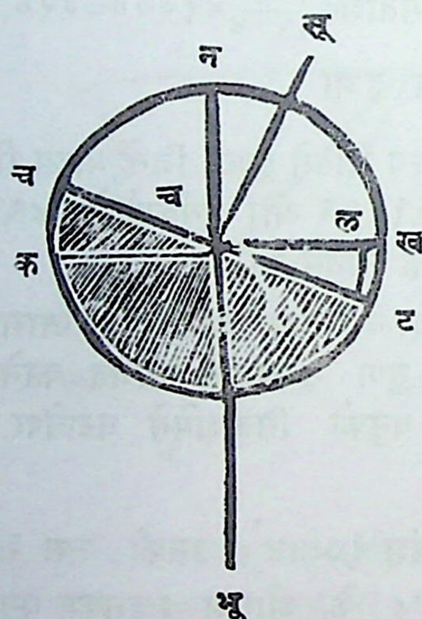
(१७) सितांश जानकर अन्तरांश जागना । सितांशकी ज्याको चन्द्रकर्णसे गुण सूर्यकर्णसे भाजित करनेपर फलकी ज्या आती है जिसके धनुको सितांशमेंसे घटानेपर अन्तरांश मालूम होता है।

उदाहरण-सितांश १७।४४'; इसकी ज्या ३०९; फल ज्या=$\frac{३०५\times२६}{१००००}$=·७९३=·८ के आसन्न । इसका धनु. ·$\frac{८\times६०}{१७}$'=$\frac{४८}{१७}$=३'।०" ; अन्तरांश=१७।४४'-३'०"=१७।४१' ।

उपपत्ति। पूर्वोक्त सितांशचित्रमें सितांश ∠ लचसू = ∠ चभूसू+∠ चसूभू ; अतः ∠ चभूसू (अन्तरांश) = ∠ लचसू-∠ चसूभू ।

[चसूभू फल है जिसे मालूम करना है । सूचरेखाको बढ़ाकर उसपर भूबिन्दुसे भूकलंब गिराओ । ज्यासितांश=ज्या. [भूचक=$\frac{\text{भूक}}{\text{भूस}}$ ∴ भूक= ज्यासितांश×चन्द्रकर्ण; फलज्या=ज्या [चसूभू=ज्या [कसूभू=$\frac{\text{भूक}}{\text{भूस}}$= $\frac{\text{ज्यासितांश×चन्द्रकर्ण}}{\text{सूर्यकर्ण}}$ ।

(१८) सितांशके द्वारा शुक्ल-मान का लाना । सितांश की उत्क्रमज्यासे बिम्बार्द्धको गुण त्रिज्याका भाग देनेसे सूक्ष्म अंगुलादि शुक्ल आता है । उदाहरण—सितांश १९ ; इसकी उत्क्रम ज्या= १०००−९६६ (कोटी ज्या)=३४ ∴, शुक्लमान=$\frac{३४×६}{१०००}$=अंगुलादि ०।१२ ।



उपपत्ति—इस चित्रमें वृत्त चन्द्रबिम्बका द्योतक है । सूच रेखा सूर्यसे चन्द्र मध्यतक और भूच रेखा पृथ्वीसे चन्द्रमध्यतक खींची गई है । चट रेखा कृष्ण-शुक्लका विभेदक है । कख रेखा

शुक्लको दो भागोंमें खंडित करता है जिसका अधोभाग चखट भूवासियोंको दीखता है। इस दृश्य शुक्ल भागकी सबसे बड़ी चौड़ाईका मापक चाप खट है। पर खटकी दृश्य चौड़ाईका मापक लख रेखा है, जो चाप खटका कख रेखापर निकास (Projection) है और यह लख । खचट की उत्क्रम ज्या है जो सितांश । नचसू के तुल्य है। अनुपात किया—यदि त्रिज्यामें बिम्बार्द्ध तो उत्क्रमज्यामें $\frac{\text{उत्क्रमज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times$ बिम्बार्द्ध। इस नियमसे बिम्बार्द्धतकका शुक्लमान लाया जा सकता है अधिकका नहीं; इसके लिए कुछ विशेष क्रिया करनी होगी।

इति श्रीरजनीकान्त शास्त्रिकृतौ ज्योति-र्गणित-कौमुद्यां "विविध-विषयाधिकारो" नाम अष्टमः परिच्छेदः ॥



नवम-परिच्छेद ।



स्थूल क्रियाधिकार ।

इस परिच्छेदमें ज्यौतिष-सम्बन्धी कुछ ऐसी स्थूल क्रियाएं बतलाई जायगी जिनसे किसी भी इष्ट ईसवी सन्‌में भूमण्डल भरमें निःशेषग्रहणोंका लगना, संभव होना, लगने पर उनके ख-ग्रास वा खण्ड-ग्रासका होना, किसी भी इष्ट तारीखकी तिथि, नक्षत्र आदि विविध बातें सरलता-पूर्वक मालूम होंगी । इनमें पहले ग्रहण-सम्बन्धी स्थूल क्रिया बतलाई जायगी ।

(१) विराहु-सूर्य और विकेतु-सूर्यकी पूर्णायु, अर्द्धायु, भुक्तायु और भोग्यायु । सूर्यको राहुसे चलकर फिर राहुपर आनेमें, वा केतुसे चलकर पुनः केतुपर आनेमें जितना समय लगता है उतने समयको विराहु-सूर्य वा विकेतु सूर्यकी पूर्णायु कहते हैं । दोनोंकी पूर्णायु समान है । इसका मान दिनादि ३४६।३७।७।१ है । इसका आधा अर्थात् दिनादि १७३ । १८ । ३३ । ३० दोनोंकी अर्द्धायु है । किसी इष्ट कालतक पूर्णायुका जितना भाग बीत जाता है उसे भुक्तायु और जो बीतनेको बाकी रहता है उसे भोग्यायु कहते हैं ।

(२) चन्द्रायु—सूर्यके प्रकाशसे निकलकर पुनः उसके प्रकाशमें लीन हो जानेमें चन्द्रको जितना समय लगता है उतने समयको 'चन्द्रायु' कहते हैं । इसका मान चान्द्र-मास अर्थात् दिनादि २९ । ३१ । ५० । ७ है; अतः इसका आधा दिनादि १४ । ४५ । ५५ । ३ चन्द्रकी अर्द्धायु है । किसी इष्ट-कालतक चन्द्रायुका जितना भाग बीत जाता है उतने भागको भुक्त चन्द्रायु और शेषको भोग्य चन्द्रायु कहते हैं । निम्न-लिखित चक्रसे यह मालूम होगा कि इ० स० १९०० में १ ली जनवरीको जेब घड़ीसे ६ बजनेपर भोरके समय काशीमें विराहु सूर्य, विकेतु-सूर्य और चन्द्रकी कितनी भोग्यायु थी—

भोग्यायु-चक्र ।

ग्रह	विराहु-सूर्य	विकेतु-सूर्य	चन्द्र
भोग्यायु	दि.३२६।२१।५४।१६	दि. १५३।३।२०।४६	दि. ०।१३।१०।११

(३) **किसी इष्ट ईसवी सन्‌की १ ली जनवरीकी उक्त विविध भोग्यायुओंका मान निकालना** । इष्ट ईसवी सन् और १९०० का अन्तर ले, उस अन्तरसे दिनादि १८।२२।९२।९९ को गुण, गुणन-फलमें दोनों ईसवी सनोंके मध्य-वर्त्ती अधिकाह वर्षोंकी संख्या जोड़, योग-फलको यदि इष्ट सन् ज्यादा हो तो विराहु सूर्य और विकेतु-सूर्यकी उक्त चक्रस्थ भोग्यायुओंमें घटा देनेपर और यदि इष्ट सन् कम हों तो जोड़देनेपर इष्ट सन्‌में क्रमशः उनकी-उनकी १ ली जनवरीकी भोग्यायु निकलती है । इसी प्रकार उक्त अन्तरसे दिनादि १०।३७।९८।३६ को गुण, गुणन-फलमें पूर्ववत् मध्यवर्त्ती अधिकाह वर्षोंकी संख्या जोड़, योगफलको यदि इष्ट सन् ज्यादा हो तो उक्त चक्रस्थ चन्द्रकी भोग्यायुमेंसे घटानेसे और यदि इष्ट सन् कम हो तो जोड़नेसे इष्ट सन्‌की १ ली जनवरीकी भोग्य चन्द्रायु मालूम होती है।

नोट-यदि उक्त योग-फल,स्व-सम्बन्धित पूर्णायुसे अधिक हो तो उसमें उक्त पूर्णायुका भाग दे शेषको ही घटाना वा जोड़ना चाहिये, । घटानेके पक्षमें यदि चक्रस्थ भोग्यायु कम हो तो उसमें स्व-सम्बन्धित पूर्णायु जोड़ कर घटावे । विराहु सूर्यकी भोग्यायुमें केवल अर्द्धायु मिला देनेसे भी विकेतु-सूर्यकी भोग्यायु निकल आती है ।

उदाहरण-ई. स. १९३६ में १ ली जनवरीकी विराहु-सूर्यादिकोंकी भोग्यायु निकालनी है । १९३६-१९००=अन्तर ३६॥ ३६× १८।२२।९२।९९=दिनादि ६६१।४३।४७।२४ । इसमे मध्यवर्त्ती अधिकाह वर्षोंकी संख्या ८ जोड़ा तो योग-फल दिनादि ६६९ ।

४३।४७।२४ हुआ । यह विराहु-सूर्यकी पूर्णायुसे अधिक है; अतः इसमें उक्त पूर्णायुका भागदे शेष दिनादि ३२३।६।४०।२३ को चक्रस्थ भोग्यायु दिनादि ३२६।२१।५४।१६ मेंसे घटाया तो विराहु-सूर्यकी इष्ट कालीन (१-१-१९३६ की) भोग्यायु दिनादि ३ । १५ । १३ । ५३ आई । उक्त शेषसे विकेतु-सूर्यकी चक्रस्थ भोग्यायु कम है; अतः उसमें पूर्णायु जोड़ योग-फलमेंसे उक्त शेषको घटाया तो विकेतु-सूर्यकी इष्ट कालीन भोग्यायु दिनादि १७६ । ३३ । ४७ । २४ मिली । पुनः अन्तर ३६×१० । ३७ । ५८ । ३६+८=योग-फल दिनादि ३९० । ४७ । ९ । ३६ । यह सम्बन्धित पूर्णायुसे अधिक है अतः इसमें उक्त पूर्णायुका भाग दे शेष दिनादि ६।५३। १८।५को ग्रहण किया । चन्द्रकी चक्रस्थ भोग्यायु शेषसे कम है; अतः उसमें पूर्णायु जोड, योग फलमेंसे उक्त शेषको घटाया तो चन्द्रकी इष्ट कालीन भोग्यायु दिनादि २२ । ५१ । ४२ । १३ आई ।

(३ क) भोग्यायुओंको निकालनेकी कुछ सूक्ष्मरीति । इष्ट तारीखके राहुमेंसे मध्यम सूर्यको घटा गति-योगका भाग देवे । इस रीतिसे १ । १ । १९३६ को विराहु सूर्यकी भोग्यायु दि. ३ । १९ । ३४ । ३९ हुई । पुनः मध्यम सूर्यमेंसे मध्यम चन्द्रको घटा शेषमें गत्यन्तरका भाग देकर चन्द्रकी भोग्यायु निकाले । इस क्रियासे उक्त तारीखको चन्द्रकी भोग्यायु दि. २२ । ५३ । २०, । ७ आई ।

किसी इष्ट ई. स. में १ ली जनवरीकी जो चन्द्रकी भोग्यायु है उससे पता यह चल जाता है कि १ ली जनवरीसे कितने दिनादिके बाद इष्ट इसवी सन्‌में पहली अमावस्या पड़ेगी । यदि चन्द्रकी यह भोग्यायु उसकी अर्द्धायुसे अधिक हो तो उसमेंसे अर्द्धायु घटानेसे और यदि कम होतो उसमें अर्द्धायु जोड़नेसे इष्ट ईसवी सन्‌में पहली पूर्णिमाके दिनादि मालूम होंगे । जैसे यहाँपर चन्द्रकी भोग्यायु दिनादि २२ । ५१ । ४२ । १३ निकली है जो उसकी अर्द्धायुसे अधिक है; अतः इसमेंसे अर्द्धायु दिनादि १४ ।

४९।५९।३ घटाया तो ई. स. १९३६ में पहली पूर्णिमाके दिनादि ८।९।४७।१० आये अर्थात् यह पता चला कि ई. स. १९३६ में पहली पूर्णिमा १ ली जनवरीसे इतने दिनादिके बाद पड़ेगी ।

(४) निम्नि लिखित चक्रसे यह मालूम होता है कि किसी इष्ट सन्में विराहु-सूर्य और विकेतु--सूर्यकी १ ली जनवरीकी भोग्यायुकी समाप्तिसे पूर्व वा पश्चात् कितने दिनादिके भीतर अमावस्या वा पूर्णिमा पडनेसे क्रमशः सूर्य और चन्द्रका ग्रहण अवश्य वा सम्भव, ख-ग्रास वा खण्ड-ग्रास होगा ।

ग्रहण-सीमा (Ecliptic Limit) चक्र-

ग्रहण	ख-ग्रास		खण्ड-ग्रास	
	अवश्य	संभव	अवश्य	संभव
सूर्य	दि. ९।५०।५२।१२	दि. ११।४५।१२।१३	दि. १४।५६।२९।३३	दि. १७।४९।५७।३५
चन्द्र	दि. ४।१४।४९।४९	दि. ५।२४।१०।४१	दि. ९।८।५१।५६	दि. ११।३८।१३।४८

(५) निम्न-लिखित चक्रसे यह मालूम होता है कि चान्द्र-मासकी कितनी आवृत्तियोंमें कितने दिनादि होते हैं ।

चान्द्र-मासकी आवृत्ति-चक्र-

आवृत्ति	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
दिनादि मान	२९।३१।५०।७	५९। ३।४०।१४	८८।३५।३०।२१	११८। ७।२०।२८	१४७।३९।१०।३५	१७७।११। ०।४२	२०६।४२।५०।४९	२३६।१४।४०।५६	२६५।४६।३१। ३	२९५।१८।२१।१०	३२४।५०।११।१७	३५४।२२। १।२४	३८३।५३।५१।३१

(६) १ ली जनवरीके बाद दिए हुए दिनोंके अन्तर पर किस महीनेकी कौन तारीख पडेगी, यह जाननेकी रीति। दी हुई दिन–संख्यामेंसे घटनेवाली सबसे बडी संख्या नीचेके चक्रसे लेकर घटावे; जो शेष बचे वही तारीख, जिस महीनेके नीचेसे चक्रस्थ संख्या लीगई है उसके बादके महीनेकी होगी।

महीना।	जनवरी	फरवरी	मार्च	एप्रिल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितंबर	अक्टूबर	नवंबर	डिसंबर
साधा वर्ष	३०	५८	८९	११९	१५०	१८०	२११	२४२	२७२	३०३	३३३	३६४
अधि-वर्ष	३०	५९	९०	१२०	१५१	१८१	२१२	२४३	२७३	३०४	३३४	३६५

नोट–जिस महीनेके नीचे जितनी दिन-संख्या है उतनी उस महीनेके अन्ततककी है। उदाहरण १ ली जनवरीके बाद २७० दिनोंके अन्तरपर साधारण वर्षोंमें २७०–२४२=२८ वीं तारीख तथा अधिकाह वर्षोंमें २७०–२४३=२७ वीं तारीख सितम्बर महीनेकी होगी।

(७) इष्ट ईसवी सन्‌में लगनेवाले सूर्य–चन्द्रके ग्रहणोंकी तारिखें मालूम करना। सूर्य और चन्द्र, ग्रहण, राहु और केतु, बिन्दुओंपर वा उनके समीप लग सकते हैं। राहु-सम्बन्धित ग्रहणको 'राहु-पर्व' और केतु-सम्बन्धित ग्रहणको 'केतु-पर्व' कहते हैं। चन्द्र-ग्रहण निकालनेके लिये पहली पूर्णिमाके दिनादिसे और सूर्य-ग्रहण निकालनेके लिये पहली अमावस्याके दिनादिसे क्रिया प्रारंभ करनी चाहिये। यदि कोई ग्रहण जनवरी मासमेंही पड़े तो उसकी तारीख जाननेके लिये तत्सम्बन्धित पहली पूर्णिमा वा अमावस्याके दिनादिकी दिन-संख्यामें १ जोड़ देवे और जो ग्रहण जनवरीमें न पड़कर फरवरी आदि महीनोंमें पड़ें तो उनकी तारीखें तत्सम्बन्धित पूर्णिमाओं और अमावस्याओंके दिनादिकी दिन-संख्याके द्वारा चक्र (६) से निकाल लेवे।

इष्ट ईसवी सन् में चन्द्र-ग्रहणकी तारीखें मालूम करनेके लिये १ ली जनवरीकी विराहु-सूर्य और विकेतु-सूर्यकी भोग्यायुओंका अन्तर, उसके पूर्व और पश्चात् पड़नेवाली क्रमशः गत और गम्य दोनों पूर्णिमाओंसे निकाले। यदि यह अन्तर चक्र (४) में दी हुई परमाधिक ग्रहणसीमा दिनादि ११।३८।१३।४८ से कम हो तो जिस सीमा-विशेषके भीतर हो उसीके अनुकूल ग्रहण तथा ग्रास होंगे। उक्त अन्तर सर्व–प्रथम पहली पूर्णिमाके दिनादिसे निकालना चाहिये। तत्पश्चात् पहली पूर्णिमाके दिनादिमें चक्र (९) में दी हुई आवश्यक संख्याकी आवृत्ति जोड़कर उक्त भोग्यायुओंसे पूर्व और पश्चात् पड़नेवाली क्रमशः गत और गम्य दोनों पूर्णिमाओंके दिनादि निकाले और इससे पूर्ववत् उक्त भोग्यायुओंका अन्तर साधन कर ग्रहण लगने वा न लगनेकी जाँच करे।

सूर्य-ग्रहण की तारीखें मालूम करनेके लिये निःशेष क्रिया चन्द्र-ग्रहणवत् करे। केवल अन्तर यही है कि इसमें पहली अमावास्याके दिनादि और सूर्य-ग्रहण-सम्बन्धी विविध सीमाओंका उपयोग करना चाहिये।

उक्त सभी बातोंका सार यह है कि विराहु-सूर्य और विकेतु-सूर्यकी भोग्यायुओं और उनके पूर्वापर-वर्त्तिनी क्रमशः गत और गम्य पूर्णिमाओं एवं अमावस्याओंके दिनादिकोंका अन्तर निकालकर देखना चाहिये कि वह अन्तर सीमाओंसे कम है वा नहीं। हमें ईसवी सन् १९३६ में होनेवाले ग्रहणोंको निकालनेके लिये नियम (३) के द्वारा निम्नलिखित सामग्री मिली है, जिसपर हमें गणित करना होगा—

विरा सू. भोग्यायु	विके सू. भोग्यायु	१ ली अमावास्या	१ ली पूर्णिमा
दि. ३।१५।१३।५३	दि.१७६।३३।४७।२४	दि. २२।५१।४२।१३	दि. ८।५।४७।१०

(८) चन्द्र-ग्रहणका उदाहरण—

(क) राहु-पर्व । विराहु-सूर्यकी भोग्यायु और गम्य पूर्णिमाके दिनादिमें, जो ऊपरके चक्रमें लिखे हैं, दि. ४।५०।३३।१७ का अन्तर है जो खग्रासकी संभव-सीमाके भीतर है; अतः ८+१=९ वीं जनवरीको खग्रास चन्द्र-ग्रहणका संभव हुआ । गत पूर्णिमा गत वर्ष (ई. स. १९३९) में पड़ी थी अतः उसे छोड़ दिया ।

(ख) केतु-पर्व । पहिली पूर्णिमाके उक्त चक्रस्थ दिनादिमें चान्द्र-मासकी ५ और ६ आवृत्तियोंको अलग-अलग जोड़ा तो क्रमशः गत पूर्णिमाके दिनादि १५५ । ४४ । ५७ । ४५ और गम्य पूर्णिमाके दिनादि १८५ । १६ । ४७ । ५२ मिले । गत पूर्णिमाका अन्तर ग्रहणके परमाधिक सीमासे भी अधिक है; अतः गत पूर्णिमापर चन्द्र-ग्रहण न हो सकेगा; पर गम्य पूर्णिमाका अन्तर दिनादि ८ । ४३ । ० २८ खण्ड-ग्रासकी अवश्य सीमाके भीतर है; अतः दिन संख्या १८५=४ थी जुलाईको खण्ड चन्द्र-ग्रहण अवश्य होगा ।

(९) सूर्य-ग्रहणका उदाहरण ।

(क) राहु-पर्व । पूर्वोक्त चक्रस्थ विराहु सूर्यकी भोग्यायु और पहली अमावास्याका अन्तर दिनादि १९ । ३६ । २८ । २० सूर्य-ग्रहणकी परमाधिक सीमासे भी अधिक है; अतः गम्य अमावास्याको सूर्य-ग्रहण नहीं होगा और गत अमावास्या गत वर्षमें पड़ी थी अतः उसे छोड़ दिया । सारांश यह कि इस स्थितिमें सूर्य-ग्रहण होगा ही नहीं ।

(ख) केतु-पर्व । पहली अमावास्याके दिनादिमें चान्द्र मासकी ५ और ६ आवृत्तियोंको जोड़ा तो क्रमशः गत अमावास्याके दिनादि १७० । ३० । ५२ । ४८ और गम्य अमावास्याके दिनादि २०० । २ । ४२ । ५५ मिले । गत अमावास्याका अन्तर दिनादि ६ । २ । ५४ । ३६ खग्रासकी अवश्य सीमाके भीतर है; अतः दिन-संख्या

१७०=१९ जूनको खग्रास सूर्यग्रहण कहीं न कहीं अवश्य होगा। गम्य अमावास्याका अन्तर ग्रहण सीमासे बाहर है अतःउसपर ग्रहण न होगा।

(१०) विराहु सूर्य वा विकेतु सूर्यकी १ ली जनवरीकी भोग्यायु यदि साधारण वर्षोंमें दिनादि ३६। १२। ५०। ३४ से तथा अधिकाह वर्षोंमें दिनादि ३७। १२। ५०। ३४ से अधिक न होतो वह वर्षके भीतरही अपनी आयुकी द्वितीय आवृत्तिमें प्रवेश कर जाता है। इस दशामें उसकी १ ली जनवरीवाली भोग्यायुमें पूर्णायु जोड़ उसकी दूसरी भोग्यायु निकाले और इस दूसरी भोग्यायुसे गत और गम्य पूर्णिमा तथा अमावास्याके दिनादिके अन्तर और ग्रहण-सीमाओंके द्वारा ग्रहणका निर्णय पूर्ववत् करे।

जैसे ई. स. १९३६। अधिकाह वर्ष है और विराहु-सूर्यकी भोग्यायु दिनादि ३७। १२। ५०। ३४ से अधिक नहीं है; अतः उसमें पूर्णायु जोड़ा तो दिनादि ३४९। ५२। २०। ५४ उसकी दूसरी भोग्यायु आई।

(क) चन्द्र-ग्रहण-पहली पूर्णिमाके दिनादि ८। ९। ४७। १० में चान्द्र मासकी ११ और १२ आवृत्तियोंको जोड़ा तो क्रमशः गत पूर्णिमाके दिनादि ३३२। ५५। ५९। २७ और गम्य पूर्णिमाके दिनादि ३६२। २७। ४८। ३४ मिले। दोनों पूर्णिमाओंका अन्तर ग्रहण-सीमासे अधिक है, अतः किसीपर ग्रहण नहीं होगा।

(ख) सूर्य-ग्रहण-पहली अमावास्याके दिनादि २२। ५१। ४२। १३ में चान्द्र मासकी ११ और १२ आवृत्तियोंको अलग-अलग जोड़ा तो क्रमशः गत अमावास्याके दिनादि ३४७। ४१। ५४। ३० और गम्य अमावास्याके दिनादि ३७७। १३। ४३। ३७ आये। गत अमावास्याका अन्तर अवश्य खग्रास-सीमाके भीतर है; अतः दिन संख्या ३४७=१३ वीं दिसम्बरको खग्रास सूर्य-ग्रहण; अवश्य होगा। गम्य अमावास्या आगामी वर्ष (१९३७) में पडेगी अतः उसका हिसाब नहीं किया।

उक्त सूर्य-ग्रहण केवल राहु-पर्व है । विकेतु-सूर्यकी भोग्यायुकी इष्ट इसवी सन्‌में द्वितीयावृत्ति न होनेसे केतु-पर्व दुबारा न होगा । इष्ट ई. स. १९३६ में सब मिलकर हमें निम्नलिखित ४ ग्रहण मिले—

(१) खग्रास चन्द्र-ग्रहणका संभव ता० ९ वीं जनवरी। नोट पढिये ।

(२) खण्ड-ग्रास चन्द्र-ग्रहण ता० ४ थी जुलाई ।

(३) खग्रास सूर्य-ग्रहण (कहीं न कहीं) ता० १९ जून ।

(४) खग्रास सूर्य-ग्रहण (कहीं न कहीं) ता० १३ दिसंबर ।

नोट—पूर्वोक्त ग्रहण-गणित केवल स्थूल है, संभव है कि ग्रहणकी तारीख एकाधिक वा एकोन हो; किन्तु प्रायः वह ठीक ही निकलती है ।

(११) ईसवी सन्, महीना और तारीख जानकर तिथि मालूम करना । इष्ट ईसवी सन् और १९०० के अन्तरको ११ से गुण गुणन-फलमें, उक्त अन्तरके १९ वें भागको जोड़, योग-फल यदि ३० से अधिक हो तो उसमें ३० का भाग देनेसे जो शेष प्राप्त हो वही, यदि इष्ट सन् १९०० से अधिक हो तो १ ली जनवरीकी तिथि होती है । यदि इष्ट सन् १९०० से कम हो तो उस शेषको ३० में से घटा देनेपर १ ली जनवरी की तिथि आती है । फिर १ ली जनवरीकी तिथिमें निम्नलिखित चक्रमें दी हुई इष्ट मासके नीचेकी तिथि मिला दनेसे उस मास की १ ली तारीखकी तिथि निकलती है । किसी भी मासकी प्रारम्भिक तिथिमें इष्ट तारीखको एकोन कर जोड़ देनेसे इष्ट तारीखकी तिथि निकल आती है । उक्त दो सनोंके अन्तरका १९ वां भाग लेते समय यदि शेष ९ से अधिक हो तो लब्धिको एकाधिक कर लेवे— .

तिथि चालन-चक्र ।

महीना	जनवरी	फरवरी	मार्च	एप्रिल	मे	जून	जुलाई	आगस्ट	सितंबर	अक्टूबर	नवंबर	दिसंबर
तिथि	०	२	०	२	२	४	४	६	७	८	९	१०

उदाहरण । ई. स. १९३६ में १९ वी जूनकी तिथि निकालनी है तो १९३६--१९०० =३६ । ३६×११=३९६ । ३६÷१९=१+१=२ । ३९६+२=३९८ । ३९८÷३०=८ शेष । यह इष्ट सन् में १ ली जनवरीकी तिथि हुई । अब ८+४+(१९--१)= ३० अमावस्या इष्ट तिथि मिली ।

(१२) दूसरी रीति । चक्र (६) के द्वारा गत मासके अन्ततककी दिन संख्या निकाल, उसमें इष्ट तारीख जोड़, योग-फलको ६४ से गुण, गुणन-फलमें ६३ का भाग देनेसे जो लब्धि मिले उसमें १ ली जनवरीकी तिथि मिलानेसे भी इष्ट तिथि निकलती है; जैसे गत मासकी दिन संख्या १५१+१९ (इष्ट तारीख) = १७० । १७०× ६४=१०८८० । १०८८०÷६३=१७२ । १७२+८ (१ ली जनवरीकी तिथि, =१८०÷३०=शेष शून्य=अमावास्या । तीसरी रीतिके लिये नियम २० देखो ।

(१३) ईसवी सन्, महीना और तारीख जानकर चान्द्र (दैनिक) नक्षत्र जानना । ईष्ट सन् और १९०० के अन्तरको १० से गुण, गुणन-फलमेंसे अन्तरका १७ वाँ भाग घटा, शेषमें १९ जोड़ देनेसे इष्ट सन्की १ ली तारीखका नक्षत्र आता है । पुनः चक्र (६) के द्वारा १ ली जनवरीके बाद इष्ट तारीखतक बीते हुए दिनोंकी संख्यामेंसे उसका ८२ वँ भाग घटा शेषको इष्टसन्की १ ली जनवरीकी नक्षत्र-संख्यामें जोड़ देनेसे इष्ट नक्षत्रकी संख्या निकल

आती है । यदि यह संख्या २७ से अधिक हो तो उसमें २७ का भाग दे शेषको ग्रहण करना चाहिये ।

उदाहरण । ई० स० १९३६ में १९ वीं जूनका नक्षत्र निकालना है तो १९३६-१९००=३६ । ३६×१०=३६० । ३६÷१७=लब्धि २ । ३६०-२=३५८ । ३५८+१९=३७७ (१ ली जनवरीकी नक्षत्र-संख्या)। पुनः चक्र (६) से प्राप्त इष्ट तारीखतककी दिन-संख्या १७०-२ (८२ वाँभाग) = १६८ । ३७७+१६८=५४५ । ५४५÷२७=शेष ५ मृगाशिरा नक्षत्र ।

(१४) तिथि जानकर दैनिक नक्षत्र जानना । कार्त्तिककी पूर्णिमासे लेकर गत पूर्णिमातक बीती हुई पूर्णिमाओंकी संख्याको २$\frac{१}{८}$ से गुण, गुणन-फलमें गत तिथिगणको मिलादेनेसे योग-फल तुल्य अश्विन्यादि नक्षत्र आते हैं । यहाँ गततिथि गणसे उन तिथियोंकी संख्याका अभिप्राय है जो गतपूर्णिमाके बाद इस तिथितक बीत चुकी हैं।

उदाहरण-आषाढ़की अमावास्याका नक्षत्र मालूम करना है तो कार्तिकसे लेकर ज्येष्ठतक बीतीहुई पूर्णिमाओंकी संख्या ८×२$\frac{१}{८}$= १७ । १७+१५=३२ । ३२÷२७= शेष ५ मृगशिरा नक्षत्र ।

(१५) नक्षत्र जाननेकी तीसरी रीति । इष्ट तारीखकी निकटतमवर्त्तिनी अमावास्या तथा सौर नक्षत्रकी तारीख और घटी पल निकाले । पुनः दोनों तारीखोंके दिनात्मक अन्तरको ३६० से गुण, गुणन-फलमें ७३ का भाग दे घटयादि लब्धि निकाले । यदि यह लब्धि अमावास्याके घटी-पलसे कम न हो तो उक्त सौर नक्षत्रही अमावास्याकी तारीखका औदयिक नक्षत्र होगा और यदि कम हो तो उक्त सौर नक्षत्रमेंसे १ घटा देवे । अमावास्याकी तारीखका औदायिक नक्षत्र इस प्रकार जानकर इष्ट तारीखका औदयिक नक्षत्र, उक्त नक्षत्रमें इन दोनों तारीखोंके अन्तर तुल्य और नक्षत्र जोड़ वा घटा लेवे ।

उदाहरण-ई० स० १९३६ में १९ वीं जूनका चान्द्र नक्षत्र जानना है तो तृतीय परिच्छेदके नियम २४ द्वारा आर्द्रा नक्षत्रमें

सूर्यके प्रवेश करनेकी तारीख २१ वीं जून और घटी-पल २२ । ० मिले । पुनः पहली अमावस्याके दिनादिमें चान्द्र-मासकी ९ आवृत्तियोंको मिलानेसे निकटतम अमावास्याके दिनादि १७० । ३० । ५२ । ४८=१९ वीं जून घटी-पल ३० । ५२ । ४९ । इन दोनों तारीखोंके अन्तर २ × ३६०= ७२० । ७२० ÷ ७३ = लब्धि घट्यादि ९ । ५१ । ४७ । अमावास्याके घटीपलसे लब्धिके घटी-पल कम हैं; अतः आर्द्रामेंसे १ घटाया तो अमावास्या (१९ वीं जून) का औदयिक नक्षत्र मृगाशिरा हुआ । किसी अन्य तारीखका नक्षत्र जानना हो तो दोनों तारीखोंके अन्तर तुल्य मृगाशिरासे आगे बढ़ना वा पीछे हटना चाहिये ।

(१६) निम्न-लिखित चक्रसे क्रान्ति-पातिक सौर मासों (सायन संक्रान्तियों) के प्रारम्भ होनेकी अङ्गरेजी तारीखें, उनकी दिन-संख्या तथा वर्षका षड्ऋतु-विभाग और ऋतुओंकी दिन-संख्या मालूम होती हैं—

षड् ऋतु-चक्र ।

सायन संक्रांति	मेष	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनु	मकर	कुंभ	मीन
महीना तारीख	मार्च २१	एप्रिल २०	मई २१	जून २१	जुलाई २३	अगस्त २३	सितंबर २३	अक्तूबर २३	नवंबर २२	दिसंबर २२	जनवरी २०	फरवरी १९
दिन	३०	३१	३१	३२	३१	३१	३०	३०	३०	२९	३०	३०
ऋतु	वसन्त		ग्रीष्म		वर्षा		शरद्		हेमन्त		शिशिर	
दिन	६०		६२		६३		६१		६०		५९	

नोट—सायन मेषादि संक्रान्तियोंको क्रमशः सायन वैशाखादि मास समझना चाहिये, जिनकी दिन-संख्या उनके नीचे लिखी है। १९ वीं फरवरीको शिशिर समाप्त होजाता है। उसके बाद २० वीं एप्रिल-तक वसन्त चलता है, जिसकी दिन-संख्या ६० उसके नीचे दीगई है। इस प्रकार अन्य ऋतुओंके भी विषयमें समझना चाहिये। सायन सौर मासों तथा तद्वशात् षड् ऋतुओंके प्रारंभ तथा समाप्तिकी अंगरेजी तारीखें, क्रिस्तानी वर्षके क्रान्ति-पातिक होनेके कारण, सर्वदाके लिये प्रायः निश्चित है। वर्षका षड्ऋतु-विभाग सायन सौर मासोंके द्वारा करना इस कारण उत्तम हैं कि शैत्य-तापमें न्यौनाधिक्य तथा तज्जन्य ऋतु-परिवर्त्तन सूर्यकी क्रान्ति-पात एवं विषुवद्रेखासे दूसरीपर मुख्य-तया निर्भर है। एक और भी कारण है. यदि चान्द्र या नाक्षत्रिक सौर मांसोंके भी द्वारा ऋतु-विभाग किया जाय तो कुछ समयके बाद ऋतुओंके महीने बदल जायँगे. चान्द्र-वर्षोंको अधिमासोंके द्वारा नाक्षत्रिक सौर वर्षोंके तुल्य तो बना लेते हैं; पर फिर भी अयन-गतिके कारण ऋतुओंके नाक्षत्रिक सौर मास भी धीरे-धीरे बहुत कालके पश्चात् बदल जाते हैं। एक समय था जब सूर्यके मृगशिरा नक्षत्रमें रहनेपर प्रचण्ड उत्तापका अनुभव होता था;पर अब तो मृगशिरामें ही प्रायः वर्षाकी बहार देखनेमें आती है।

(१७) अङ्गरेजी तारीखोंकी गोल-संज्ञा। २१ वीं मार्चसे लेकर २३ वीं सितम्बरतककी तारीखें उत्तरगोलीय और २३ वीं सितम्बरसे लेकर २१ वीं मार्चतककी तारीखें दक्षिणगोलीय कह-लाती हैं। स्वयं २१ वीं मार्च और ३३ वीं सितम्बर शून्यगोलीय हैं। जैसे ८ वीं जनवरी दक्षिण-गोलीय हैं।

(१८) अङ्गरेजी तारिखोंका भुज बनाना। इष्ट तारीखका दिनात्मक अन्तर २१ वीं मार्च और २३ वीं सितम्बर दोनोंसे निकाले। दोनों अन्तरोंमें जो अल्प हो वही इष्ट तारीखका भुज होता है। भुजमें जितनी गत वा गम्य संक्रांतियाँ होवें उतने ही क्रमशः गत वा गम्य मास

तथा गत वा गम्य मासोंकी दिन-संख्याओंको जोड़ योग-फलको भुजमेंसे निकाल देनेपर शेष गत वा गम्य दिन संख्या होती है। जैसे ८ वीं जनवरीका दिनात्मक अन्तर २३ वीं सितंबरसे १०७ तथा २१ वीं मार्चसे ७२ है; अतः ८ वीं जनवरीका भुज ७२ हुआ जिसमें गम्य संक्रान्तियों (कुम्भ और मीन) की संख्या-तुल्य दो मास और ७२–(३०+३०)=१२ दिन-संख्या हुई।

(१९) **अङ्गरेजी तारीखके द्वारा दिन–मान लाना** । इष्ट तारीखके भुजमें जितनी मास-संख्या हो उतनेही गत चरखण्डोंका योग करे । पुनः भुजस्थ दिन-संख्यासे वर्त्तमान चरखण्डको गुण, गुणन-फलमें वर्त्तमान संक्रांतिकी दिन-संख्यासे भाग देनेपर जो लब्धि मिले उसे उक्त योगफलमें मिला देनेसे इष्ट तारीखका चर आता है । इस चरको द्विगुणित कर यदि स्वदेश उत्तर गोलार्द्धमें हो और इष्ट तारीख भी उत्तरगोलीय हो तो ३० घटियोंमें जोड़नेसे, पर यदि इष्ट तारीख दक्षिणगोलीय हो तो उसे ३० घटियोंमेंसे घटानेसे इष्ट तारीखका दिन-मान निकलता है । जैसे ८ वीं जनवरीका भुज मासादि २ । १२ है तो चर=५७+४६+$\frac{१२\times१९}{२९}$=१११ पल=घटचादि १ । ५१ । द्विगुणितचर=घ. ३ । ४२ । स्वदेश उत्तर गोलार्द्धमें और इष्ट तारीख दक्षिणगोलीय है; अतः दिन-मान=३०–३।४२=घटचादि २६ । १८ । फिर दिन-मानसे रात्रिमान, सूर्योदय-काल और सूर्यास्त-काल त्रिप्रश्नाधिकारमें बतलाई हुई रीतिसे निकाल लेवे ।

(२०) **ईसवी सनादिके द्वारा तिथि निकालनेकी एक तीसरी रीति** । जो स्थूल होनेपर भी अन्य स्थूल रीतियोंकी अपेक्षा अधिक शुद्ध है । इसके द्वारा सैकडों वर्ष आगे वा पीछेकी तिथियाँ अधिक शुद्धतापूर्वक निकाल सकते हैं । इष्ट ईसवी सन् मेंसे १ घटा शेषमें ४००, १००, ४ और १ का लगातार भाग देनेसे जो क्रमशः चार लब्धियां प्राप्त हों उनसे निम्न-लिखित चक्रमें दिये हुए अपने अपने भाजकोंके चालनोंको गुण, कुल गुणन फलोंको जोड़, योग-फलमेंसे दिनादि बीज १०।१७।५९ घटा देनेसे इष्ट सन्‌की प्रारम्भिक

(१ ली जनवरीकी) भुक्त चन्द्रायु निकलती है। यदि यह भुक्त चंद्रायु पूर्णायुसे अधिक हो तो उसमें पूर्णायुका भाग दे शेषको ही प्रारम्भिक भुक्त चन्द्रायु माने। फिर इस भुक्तायुकी दिन-संख्या तुल्य इसमें घटी मिला देनेसे गत तिथि और उसके गत घटी-पल निकलते हैं। पुनः गत तिथिमें १ जोड़ देनेसे १ ली जनवरीकी वर्त्तमान तिथि मालूम हो जाती है। तत्पश्चात् नियम (११) में दिये हुए चक्रके द्वारा इष्ट महीनेकी प्रारम्भिक तिथि और उससे उस महीनेकी इष्ट तारीखकी तिथि निकाल लेवे।

भाजक	४००	१००	४	१
चालन	दिनादि ९।१०।५३	दिनादि २४।११।३६	दिनादि १४।०।१४	दिनादि १०।३७।५९

उदाहरण। ई. स. ६२२ में १ ली जनवरीकी तिथि निकालनी है तो ६२२ − १= ६२१। ६२१ ÷ ४०० = लब्धि १ शेष २२१। २२१ ÷ १०० = लब्धि २ शेष २१। २१÷४ = लब्धि ५ शेष १। १ ÷ १=लब्धि १ शेष ०। तत्पश्चात् १ ×९। १०। ५३ = गु. फ. ९। १०। ५३। २×२४। ११। ३६= गु. फ. ४८। २३। १२। ५×१४। ०। ४ = गु. फ. ७०। ०। २०। १ × १० । ३७। ५९= गु. फ. १०। ३७। ५९। कुल गुणन-फलोंका योग-फल= दिनादि १३८।१२।२४। इस योग-फलमेंसे पूर्वोक्त बीज निकाल दिया तो शेष दिनादि १२७।५४।२९ इष्ट सन् की प्रारम्भिक भुक्त चन्द्रायु-हुई। यह पूर्णायुसे अधिक है; अतः दि. १२७।५४।२९÷पूर्णायु=दि ९।४७।९ शेष। पुनः दि. ९। ४७। ९ + घटी ९= दि. ९।५६।९। पुनः। ९ + १ = १० तिथि ई. स. ६२२ की प्रारम्भिक तिथि हुई।

इति श्रीरजनीकान्तशास्त्रिकृतौ ज्योति-गणित-कौमुद्यां
" स्थूलक्रियाधिकारो " नाम नवमपरिच्छेदः ।

दशम-परिच्छेद ।

ग्रहयुत्यधिकार ।

(१) **ग्रह-युति ।** आकाशमें दो ग्रहोंके परस्पर मिलनका नाम 'युति' है । यह युति दो प्रकारकी होती है—क्रान्ति-वृत्तीय और विषुवद्‌ वृत्तीय । यदि दोनोंके क्रान्ति-वृत्तीय भोग तुल्य हो जाएं तो उनकी युति 'क्रान्ति वृत्तीय' और यदि दोनोंके विषुवांश तुल्य हो जाएं तो उनकी युति 'विषुवद्‌ वृत्तीय' होती है । कोई-कोई सम प्रोत वृत्तीय एक तीसरा युति-भेद भी मानते हैं । क्षितिजके दक्षिणोत्तर बिन्दु प्रोत वृत्तका नाम 'सम प्रोत वृत्त' है ।

(२) **गत और ऐष्य युति ।** जो युति हो गई हो उसे 'गत' और जो युति होनेवाली हो उसे 'ऐष्य' युति कहते हैं। नीचेके चक्रसे यह मालूम होताहै कि गणनाधीन युति गत है अथवा ऐष्य—

मार्गी वा वक्र	दोनों ग्रहमार्गी		दोनों ग्रह वक्र		एक ग्रह वक्र	
आगे वा पीछे	आगे	पीछे	आगे	पीछे	आगे	पीछे
शीघ्रगामी	गत	ऐष्य	ऐष्य	गत	ऐष्य	गत

नोट—यदि एक ग्रह शीघ्रगामी वा वक्र हो तो अर्थापत्तिसे यह समझना चाहिये कि दूसरा मन्दगामी वा मार्गी है। इस चक्रको शीघ्रगामी तथा वक्र ग्रहकी दृष्टिसे देखना चाहिये; जैसे यदि दोनों ग्रह मार्गी हों और शीघ्रगामी ग्रह आगे (अधिक) हो तो युति गत होगी । एवं यदि एक मार्गी और दूसरा वक्र हो तो वक्र ग्रहके आगे रहनेपर युति ऐष्य होगी ।

(३) शुक्र और गुरुकी युति । शुक्र और गुरुकी युति–साधनार्थ उन्हें १४ नवम्बर ईसवी सन् १९३६ (कार्त्तिक कृष्ण अमावस्या ३० शनिवार संवत् १९९३) घड़ीसे ६ बजे, प्रातःकाल, काशीके लिये स्पष्ट किया । उस दिन चक्र ३ तथा द्युगण १४१८ हुआ जिसके द्वारा मध्यम सूर्य सम मध्यम शुक्र रा. ६।२९।९०।४८; शुक्रका प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. ९।४।२७।५९ और मध्यम गुरु रा. ८।१४।२६।११ आए । चक्र शुद्ध शुक्र प्र. शी. केन्द्र २।२९।३२।९।

(४) शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत शुक्रका लाना । शुक्रका प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. ९।४।२७।५५ तुलादि और मकरादि । भुजांश रा. २।२५।३२।५ ॥ कोटचंश रा. ०।४।२७।५५ ॥ ज्या ९९६ ॥ कोटि ज्या ७७ ॥ स्पष्ट कोटि ८०१ ॥ प्रथम शीघ्र कर्ण १२७८ ॥ प्रथम शीघ्र फल अं. ३४।२१।४९ धन ॥ तदर्द्ध अं. १७।१०।५५ ॥ इसे मध्यम शुक्रमें युत किया तो शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत शुक्र रा. ७।१७।१।४३ आया ।

(५) मन्द स्पष्ट शुक्रका लाना । शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत शुक्र रा. ७।१७।१।४३ ॥ शुक्रका मन्दोच्च रा. ९।१७।२९।२४॥ मन्द केन्द्र रा. ९।२९।३६।१९। तुलादि और मकरादि ॥ भुजांश २।०।२३।४१॥ कोटचंश अं. २९।३६।१९॥ ज्या ८६९ ॥ कोटिज्या ४९४ ॥ स्पष्ट कोटि ५२४ ॥ मन्द कर्ण१०१९॥ कोटि–फल १९ ॥ मन्दफल अं. १। २७।१० धन । इसे मध्यम शुक्रमें जोडा तो मंद स्पष्ट शुक्र रा. ७।१।१७।५८ हुआ ॥ गति-फल=(१५ × ५९' । ८") ÷१०००=विकला ५३ ऋण ॥ इसे मध्यम गति क. ५९।८ मेंसे घटाया तो मन्द स्पष्ट गति क. ५८।१९ मिली ॥ पुनः इस मन्द स्पष्ट गतिको शुक्रकी शीघ्रोच्च–गति कलादि ९६।८ मेंसे निकाल दिया तो शीघ्र केन्द्रगति क. ३७।५३ मिली ।

(६) स्पष्ट शुक्रका लाना । प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. ९ । ४ । २७ । ५५ में उक्त मन्द फल मिलाया तो शुक्रका द्वितीय शीघ्र केन्द्र रा. ९ । ५ । ५५ । ५ तुलादि और मकरादि आया । भुजांश रा. २ । २४ । ४ । ५५ । कोटचंश रा. ० । ५ । ५५ । ५ ॥ ज्या ९९४ ॥ कोटिज्या १०३ ॥ स्पष्ट कोटि ८२७ ॥ द्वितीय शीघ्र कर्ण १२९३ ॥ द्वितीय शीघ्रफल अं. ३३ । ५१ । ३३ धन । इसे मन्द स्पष्ट शुक्र रा. ७ । १ । १७ । ५८ में जोड़ा तो स्पष्ट शुक्र रा. ८ । ५ । ९ । ३१ आया । द्वितीय शीघ्रफलकी कोटि ज्या ८२९ ॥ शीघ्र गति फल $\frac{८२९ \times ३७' । ५३''}{१२९३}$ = २४' । १७" । इसे शीघ्रोच्च गति ९६' । ८" मेंसे घटा दिया तो स्पष्ट गति ७१' । ५१" मिली ।

(७) शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत गुरुका लाना । मध्यम गुरु रा. ८ । १४ । २६ । ११ मेंसे उसका शीघ्रोच्च मध्यम सूर्य रा. ६ । २९ । ५० । ४८ घटा दिया तो गुरुका प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. १ । १४ । ३५ । २३ मेषादि और मकरादि आया । भुजांश अं. ४४ । ३५' । २३" और कोटचंश अं. ४५ । २४' । ३७" हुए । ज्या ७०१ ॥ कोटि ज्या ७११ ॥ स्पष्टकोटि ९१० ॥ प्रथम शीघ्रकर्ण ११५८ ॥ प्रथम शीघ्र फल ज्या १२१०५ ॥ प्रथम शीघ्रफल अं. ७ । ० । ३५ ॥ इसका आधा अं. ३ । ३० । १८ ॥ केन्द्र मेषादि होनेसे फल ऋण । फलार्द्धको उक्त मध्यम गुरुमेंसे घटा दिया तो शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत गुरु रा. ८ । १० । ५५ । ५३ हुआ ।

(८) मन्द स्पष्ट गुरुका लाना । शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत गुरु-मेंसे उसका मंदोच्च रा. ५ । २० । १३ । ७ निकाल दिया तो उसका मन्द केन्द्र रा. २ । २० । ४२ । ४६ मेषादि और मकरादि मिला । भुजांश अं. ८० । ४२ । ४६ और कोटचंश अं. ९ । १७ । १४ हुए । ज्या ९८५ ॥ कोटिज्या १६१ ॥ स्पष्टकोटि २५० ॥ मन्द कर्ण १०१६ ॥ मन्दफल ज्या ८६ ॥ मन्द फल अं. ४ । ५७ । ४१ ऋण । इसे पूर्वोक्त मध्यम गुरुमेंसे घटाया तो मन्द स्पष्ट गुरु रा. ८ । ९ ।

२८ । ३० आया । कोटि फल १४ ॥ गति फल विकला ४ ॥ इसे गुरुकी मध्यम गति ४'। ५९" मेंसे निकालदिया तो उसकी मन्द स्पष्ट गति क. ४ । ५५ मिली ॥ फिर इस मं. स्प. गतिको शीघ्रोच्च गति क. ५९ । ८ मेंसे घटाया तो शीघ्र केन्द्र गति क. ५४ । १३आई ।

(९) स्पष्ट गुरुका लाना । प्रथम शीघ्र केन्द्र रा. १ । १४ । ३९ । २३ ॥ मन्द फल अं. ४ । ५७ । ४१ ऋण ॥ द्वितीय शीघ्र केन्द्र रा. १ । ९ । ३७ । ४२ ॥ भुजांश ३९ । ३७ । ४२ ॥ कोट्यंश अं. ५० । २२ । १८ ॥ ज्या ६३७ ॥ कोटि ज्या ७६९ ॥ स्पष्ट कोटि ९६८ ॥ द्वितीय शीघ्र कर्ण ११५९ ॥ द्वितीय शीघ्र फल ज्या १०९॥ द्वि. शी. फल अं. ६ । १० । ११ ऋण ॥ इसे पूर्वोक्त मन्द स्पष्ट गुरुमेंसे निकाल दिया तो स्पष्ट गुरु रा.८ । ३ । १८ । १९ आया । शीघ्रफलांशकी कोटि ज्या ९९४ ॥ शीघ्र गति फल

$$\frac{९९४\times(५४'।१३")}{११५९}=४६'।३०"$$ । इसे शीघ्रोच्चगति ५९'। ८" मेंसे निकाल दिया तो गुरुकी स्पष्ट गति कलादि १२ । ३८ आई ।

(१०) क्रान्ति-वृत्तीय युति गत है । स्पष्ट शुक्र रा. ८।९।९।३१ और उसकी स्पष्ट गति कलादि ७१।५१ है तथा स्पष्ट गुरु रा. ८।३। १८ । १९ और उसकी स्पष्ट गति कलादि १२ । ३८ है; अतः यहाँ शीघ्रगामी ग्रह शुक्रके आगे निकल जानेके कारण युति गत है ।

(११) विशिष्ट गति । यदि दोनों ग्रह एक दिशामें जा रहे हों तो उनका गत्यन्तर और यदि एक दूसरेसे प्रतिकूल दिशामें जा रहे हों तो उनका गति-योग लेनेसे उनकी विशिष्ट गति आती है । यहां पर शुक्र और गुरु दोनों एकही दिशा पूर्वमें जा रहे हैं; अतः उनका गत्यन्तर क. ५९'।१३" उनकी विशिष्ट गति हुई ।

(१२) युति-कालानयन। दोनोंग्रहोंके अन्तरमें उनकी विशिष्ट गतिका भाग देनेसे जो दिनादि प्राप्त हो उसे दिन पूर्वक घंटादिमें परि-णतकर यदि युति ऐष्य हो तो इष्ट तारीखादिमें मिलानेसे और यदि युति-गति हो तो घटानेसे युतिकाल मालूम होता है । शुक्र और गुरुके

अन्तर अं. १।५१।१२ में क. ५९।१३ का भाग दिया तो लब्धि १ दिन तथा घट्यादि ५२।४०।१५=१ दिन और घंटादि २१।४।६ मिले। युति गत है, अतः इस लब्धिको ता. १४ नवम्बर ६ घंटोंमेंसे निकाल दिया तो क्रान्ति-वृत्तीय युति-काल ता० १२ नवम्बर घड़ीसे घंटादि ८।५५।५४ प्रातः काल आया। इस प्रकार लाया हुआ युति-काल स्थूल है। उसे सूक्ष्म करनेके लिये इष्ट ग्रहोंको उस स्थूल युतिकालके स्पष्ट कर पुनः उनकी युति निकाले। यह क्रिया वार-वार करनेसे असकृत् कर्म द्वारा उनका सूक्ष्म युति-काल सिद्ध होता हैं और वे आकाशमें कदम्ब-प्रोत एक ही सूत्रमें देख पड़ते हैं। नियम २६ भी देखिये।

(१३) तारा-ग्रहोंका शर और क्रान्तिका लाना। तारा-ग्रहोंकी विषुवद् वृत्तीय युति लानेमें कुछ और भी क्रियायें करनी पड़ती हैं। इसके लिये उनका विषुवांश और यदि उनका ध्रुवीय दक्षिणोत्तर अन्तर मालूम करना अभीष्ट हो तो उनकी क्रान्ति स्पष्ट करनी पड़ती है। निम्नलिखित चक्रमें तारा-ग्रहोंके परम शर और उनके पात-स्थान मालूम होते हैं। सूक्ष्मगणितार्थी पातोंमें चक्रसंख्यागुणित चक्र-गति मिला सकते हैं–

भौम	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	ग्रह
११।३।४५।२८	११।५।२०।१९	९।१३।५।१९	१०।६।४७।८	८।२९।३९।५५	पात
१।५१।५	७।०।१६	१।१८।२९	३।२३।१९	२।२९।२३	शर
+ ६'।१०"	+ ३'।२४"	+ ४'।२७"	+ ५'।१८"	+ ५'।७"	च. पा. ग.

नोट–पात राश्यादि और शर अंशादि हैं। दोनों सूक्ष्म यूरोपीय वेधानुसार हैं।

(१४) शर-केन्द्रका लाना। मन्द स्पष्ट तारा-त्रयीमें उनका पात जोड़ देनेसे उनका शर-केन्द्र चला आता है; पर तारा-द्वयीका शर-केन्द्र लानेके लिये उनके मन्द स्पष्ट भोगमें उनका चक्रशुद्ध प्रथम शीघ्र-केन्द्रयुक्त पात जोड़ना चाहिये; कारण यह है कि तारा-द्वयीका जो शीघ्रोच्च है वही वास्तविक (पारमार्थिक) बुध और शुक्र है जो उनके मन्द स्पष्ट भोगसे उनके चक्रशुद्ध प्रथम शीघ्रकेन्द्र तुल्य अन्तर पर रहता है। मन्द स्पष्ट गुरु रा. ८।९।२८।३० में उसका पात रा. ९।१३।५।१९ मिलाया तो उसका शर-केन्द्र रा. ९।२२।३३।४९ मेषादि मिला और मन्द स्पष्ट शुक्र रा. ७।१।१७।५८ में उसका पात रा. १०।६।४७।८ और उसका चक्रशुद्ध प्रथम शीघ्रकेन्द्र २।२५। ३२।५ इन दोनोंको मिलाया तो उसका शरकेन्द्र रा. ८।३।३७।११ तुलादि आया। इसका भुजांश=६३।३७'।११"।

(१५) मंद स्पष्ट शर(सूर्य-केन्द्रक)शरका लाना। शर-केन्द्रकी भुज-ज्यासे परम शरको गुण, गुणन-फलमें १००० का भाग देनेसे ग्रहका मन्द स्पष्ट शर आता है अर्थात् यह मालूम होता है कि सूर्यसे देखनेपर ग्रह क्रान्ति-वृत्तके धरातलसे कितना उत्तर वा कितना दक्षिण देख पड़ेगा। उपपत्ति--पातसे ९० अंशोंकी दूरीपर ग्रहका परम शर होता है; इष्ट भुजांशके लिये अनुपात किया कि ९० अंशोंकी ज्या १००० पर तो परम शर, इष्ट भुज-ज्या पर क्या? फल हुआ $\frac{\text{भुज्या}\times\text{प. शर।}}{१०००}$ गुरुका शर-केन्द्र रा. ९।२२।३३।४९॥ भुजांश अं. ७।२६।११॥ भुजज्या १२९॥ गुरुका मन्द स्पष्ट शर= $\frac{१२९\times१।१८'।२९"}{१०००}$=कलादि १०।७। शुक्रका शर-केन्द्र रा. ८।३।३७।११॥

भुजांश ६३।३७'।११"। भुजज्या ८९५। शुक्रका मन्द स्पष्ट शर= $\frac{८९५\times३।२३'।१९"}{१०००}$= अंशादि ३।१'।५८"॥

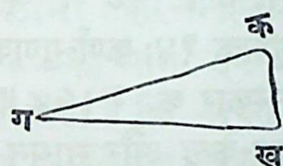
(१६) शीघ्र स्पष्ट (भूकेन्द्रक) शर। मन्द स्पष्ट शरको १००० से गुण गुणन-फलमें द्वितीय शीघ्र कर्णका भाग देनेसे लब्धि शीघ्र स्पष्ट शर होती है जिससे यह मालूम होता है कि पृथ्वीसे देखनेपर ग्रह क्रान्ति वृत्तके धरातलसे कितना उत्तर वा कितना दक्षिण देख पड़ेगा। गुरुका शीघ्र स्पष्ट शर= (१०'।७"×१०००)/११५९ =कलादि ८। ४४ हुआ। इसी प्रकार शुक्रका शीघ्र स्पष्ट शर = (३।१'५८"×१०००)/१२९३ =अंशादि २। २०। ४४ हुआ। शीघ्र स्पष्ट शरही स्पष्ट शर कहलाता है। गुरुशर (मेषादि) उत्तर और शुक्रशर (तुलादि) दाक्षिण है।

(१७) शुक्रकी स्पष्ट क्रान्ति तथा विषुवांश लाना। स्प. शु. ८।९।९।३१॥ अयनांश २३।९।४॥ सायन शुक्र रा. ८। २८। १४। ३९॥ भुजांश ८८।१४'।३९" कोटी-गुणक १४; कर्ण-गुणक १०००॥ कलादि शर १४०।४४॥ कोटी-संस्कार क. १।५८॥ कर्ण-संस्कार क. १४०।४४=अं.२।२०।४४॥ शर-केन्द्र और सायन ग्रह एक गोलीय तथा पाद विषम है; अतः कोटी-संस्कार ऋण हुआ। को. सं. शुक्र रा. ८।९।७।३३॥ इसमें उक्त अयनांश मिलाया तो को. सं. सा. शुक्र=८।२८।१२।३७॥ भुजांश ८८।१२'।३७"॥ क्रान्ति २३।२९'।३७" दाक्षिण और कर्ण-संस्कार अं. २।२०।४४ दक्षिण॥ स्पष्ट क्रान्ति दोनोंका योग= २९।४६'।२१"॥ विषुवांश फल क. ९।३७ विषम पाद होनेसे ऋण अतः इसे उक्त को. सं. सा. शुक्रमेंसे निकाल दिया तो शुक्रके विषुवांश रा. ८।२८।३।० मिले।

(१८) गुरुकी स्पष्ट क्रान्ति तथा विषुवांश लाना। स्प. गुरु ८।३।१८।१९॥ अयनांश २३।९।४॥ सायन गुरु रा. ८।२६।२३।२३॥ कोटी-गुणक २७॥ कर्ण-गुणक १०००॥

कलादि शर ८ । ४४ ॥ कोटी-संस्कार १४ विकला धन ॥ कर्ण-संस्कार ८'। ४४" ॥ को. सं. गुरु रा. ८ । ३ । १८ । ३३ ॥ को. सं. सा. गुरु ८ । २६ । २३ । ३७ ॥ क्रान्ति अं. २३ । २३ । ११ ॥ इसमें कर्ण-संस्कार ऋण किया तो गुरुकी स्पष्ट क्रान्ति अं. २३ । १४ । २७ आई ॥ विषुवांश-फल १९' । २२" ऋण । इसे को. सं. सा. गुरुमेंसे निकाल दिया तो गुरुका विषुवांश रा. ८ । २६ । ४ । १९ आया ॥

(१९) ग्रहोंकी विषुव-गति । ग्रहोंकी स्पष्ट गतिको १०००,००० से गुणकर गुणन-फलमें उनके कर्ण-गुणक और क्रान्ति-कोटि ज्याके गुणन-फलका भाग देनेसे उनकी कलादि विषुव-गति आती है जिससे यह मालूम होता है कि, इष्ट ग्रहके विषुवांश प्रतिदिन किस दरसे बढ़ रहे हैं ।



इस चित्रम ग=ग्रह; गक=उसकी क्रान्ति-वृत्तीय एक दिनकी गति; गख=ग्रहसे होता हुआ एक विषुवद् वृत्तका समानान्तर वृत्त-खण्ड; कख=गखपर ध्रुव-प्रोत लम्ब; ग बिन्दुपर गक क्रान्ति वृत्तीय पूर्व रेखा और गख विषुवद् वृत्तीय पूर्व रेखा है; अतः कोण कगख आयन वलन है । अब कखग सम-कोण त्रिभुजमें $\frac{\text{गख}}{\text{गक}}$=कोटिज्या आयन वलन=$\frac{1}{\text{छे. रे. आ. व.}}$ ∴ गख=

$\frac{\text{गक}}{\text{छे. रे. आ. व.}}=\frac{\text{स्पष्ट गति}}{\text{कर्ण-गुणक}}$ । यह गख का मान हुआ । अनुपात

किया—१ कर्ण मान पर तो $\frac{\text{स्प. ग.}}{\text{क. गु}}$ तो १००० कर्ण मान पर कितना ?

उत्तर आया गख=$\frac{\text{स्प. ग}\times 1000}{\text{क. गु}}$ । गख का यह मान क्रान्त्यग्रपर

---

१ शर-कन्द्र और सायन ग्रहके भिन्न गोलीय तथा पादके विषम होनेसे ।

हुआ; अतः इसे क्रान्ति-मूलपर अर्थात् विषुवद् वृत्तपर लानेके लिये दूसरा अनुपात किया—क्रान्तिकोटिज्या पर $\frac{\text{स्प. ग.} \times \text{१०००}}{\text{क. गु.}}$ तो १००० की ज्या पर कितना ? उत्तर आया—$\frac{\text{स्प. ग} \times \text{१०००} \times \text{१०००}}{\text{क. गु.} \times \text{क्रांकाज्या}}$ इस नियमके अनुसार शुक्रकी विषुव-गति=$\frac{\text{७१'।५१''} \times \text{१०००, ०००}}{\text{१००० (क. गु)} \times \text{९०० (क्रांकाज्या)}}$= ७९'।९०''॥ इसी प्रकार गुरुकी विषुवगति=$\frac{\text{१२'।३८''} \times \text{१००००००}}{\text{१०००(क. गु} \times \text{९१९ (क्रांकोज्या)}}$ =१३'। ४५''।

(२०) **विशिष्ट विषुवांशगति**। नियम ११ के ही अनुसार शुक्रकी विषुवगति ७९'। ९०'' मेंसे गुरुकी विषुवगति १३'। ४५'' घटाया तो विशिष्ट विषुवांश गति ६६'। ९'' मिली।

(२१) **विषुवद्वृत्तीय युति-कालका लाना**। शीघ्रगामी शुक्रके विषुवांश गुरुके विषुवांशोंसे अधिक हैं; अतः यह युति भी गत है। दोनों ग्रहोंके विषुवांशान्तर अं. १।९८।४९ में विशिष्ट विषुवांश गति ६६'।९'' का भाग दिया तो लब्धि १ दिन तथा घटयादि ४७। ४९= १ दिन तथा घंटादि १९।८ मिले। इन्हें १४ नवंबर ६ घंटोंमेंसे निकाल दिया तो विषुवद्वृत्तीय युतिकाल १२ नवंबर घड़ीसे प्रातः—कालीन घंटादि १०।९२ आया। पुनः असकृत् कर्मद्वारा इसे सूक्ष्म करे। युति—काल और इष्ट कालका लब्धि-तुल्य यह अन्तर कालान्तर कहलाता है।

(२२) **क्रान्ति-गति लाना**। नियम १९ का चित्र देखिए। वहाँ लम्ब खक क्रान्तिका एक दिनका उपचय अर्थात् वृद्धि है। क्रान्तिका समपादमें अपचय तथा विषम पादमें उपचय होता है। विचाराधीन ग्रह तृतीय अर्थात् विषम पादमें हैं; अतः उनकी क्रान्तिका प्रतिदिन उपचय होगा। अब लम्ब खकका मान निकालना है। खक=कग× $\frac{\text{कख}}{\text{कग}}$ = कग× $\frac{\text{कख} \div \text{खग}}{\text{कग} \div \text{खग}}$ =स्पष्टगति × $\frac{\text{स्प. रे.}}{\text{छे. रे.}}$ आयन

वलन = स्प. ग × $\frac{\text{को. गु.}}{\text{क. गु}}$ अर्थात् ग्रहकी स्पष्ट गतिको उसके कोटी-गुणकसे गुण गुणन-फलमें कर्ण-गुणकका भाग देनेसे लब्धि उसकी क्रान्ति-गति होती है । इस रीतिसे शुक्रकी क्रांति-गति= $\frac{\text{७१' । ५१'' × १४}}{\text{१०००}}$ = १ कला और गुरुकी क्रान्ति-गति= $\frac{\text{१२' । ३८''० × २७}}{\text{१०००}}$ = २० विकला ।

(२३) ग्रहोंकी विषुवद्वृत्तीय युति-कालकी स्पष्ट-क्रान्ति लाकर उनका आकाशमें ध्रुव-प्रोत दक्षिणोत्तर अन्तर जानना। ग्रहोंकी क्रांतिगतिको पूर्वोक्त (नियम २१ में कथित) कालान्तरसे गुण, गुणनफलको उनकी स्पष्ट क्रान्तिमें निम्न-लिखित चक्रानुसार धन ऋण करनेसे उनकी युति-कालीन स्पष्ट क्रान्ति आती है । पुनः किसी भी दो ग्रहोंकी उक्त युति-कालीन स्पष्ट क्रान्तियोंका, यदि वे एक दिशाके हों तो अन्तर लेनेसे और यदि वे भिन्न दिशाके हों तो, योग करनेसे उनका ध्रुव प्रोत दक्षिणोत्तर अन्तर मालूम होता है—

क्रान्तिका उपचय		क्रान्तिका अपचय	
गत युति	ऐष्य युति	गत युति	ऐष्य युति
ऋण	धन	धन	ऋण

शुक्रकी क्रान्ति--गति १ कलाको कालान्तर दिन घट्यादि १।४७। ४९ से गुण, गुणन-फल कलादि १ । ४८ को शुक्रकी पूर्वोक्त स्पष्ट क्रान्ति अं. २५ । ४६ । २१ में, क्रान्तिका उपचय और युतिका गत होनेसे, ऋण किया तो शुक्रकी युति-कालीन स्पष्ट क्रान्ति अं. २५ । ४४ । ३३ दक्षिण मिली । इसी प्रकार गुरुकी क्रान्ति-गति २० विकलाको उक्त कालान्तरसे गुण, गुणन--फल ३६ विकलाको गुरुकी

पूर्वोक्त स्पष्ट क्रान्ति २३ । १४ । २७ में ऋण किया तो गुरुकी युति-कालीन स्पष्ट क्रान्ति अं. २३ । १३ । ९१ दक्षिण आई । दोनों ग्रहोंकी इन युति-कालीन क्रान्तियोंका अन्तर लेनेसे इनका ध्रुवप्रोत दक्षिणोत्तर अन्तर अं. २ । ३० । ४२ प्राप्त हुआ । नियम २५ भी देखिये । उतने अंशादिके फासलेपर शुक्र गुरुसे दक्षिणकी ओर देख पड़ेगा ।

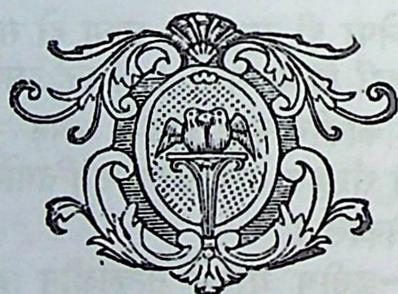
(२४) यह युति-गणित यूरोपीय वेधानुसार सूक्ष्म पातों और परम शरोंके आधारपर किया गया है । जो भारतके प्राचीन ज्योतिर्विदोंके मतानुसार युति-गणित करना चाहें वे भौमादि पञ्चताराओंके पात और परमशर इस प्रकार मानें—भौमपात रा. ११ । ८; बुधपात रा. ११ । ९; गुरुपात रा. ९ । ८; शुक्रपात रा. १० । ० और शनिपात रा. ८ । १७ । तथा भौम-परम शर १ । ९०'; बुध प. श. २ । ३२'; गुरु प. श. १ । १६'; शुक्र प. श. २ । १६' और शनि प. श. २ । १०' ॥

(२५) नियम २३ में जो युति-कालीन स्पष्ट क्रान्तियां लाई गई हैं वे इस कल्पनापर लाई गई हैं कि ग्रहोंके शर और कर्ण-संस्कार ज्योंके त्यों हैं। पर वस्तुतः वैसी बात नहीं होती । ग्रह-शर तथा उसके साथ-साथ कर्ण-संस्कारका भी शर-केन्द्रके सम-विषमपादानुसार क्रान्तिकी ही तरह अपचय-उपचय तथा गतैष्य युत्यनुसार ऋण-धन हुआ करता है, अतः उक्त स्पष्ट-क्रान्तियां कालान्तर-चालित कर्ण संस्कारसे संस्कृत होनेपर ही सूक्ष्माति सूक्ष्म हो सकती हैं,पर स्वल्पान्तरके कारण वैसा नहीं किया गया । जिन्हें इससे सन्तोष न होवे विषुवद्वृत्तीय युति कालीन स्पष्ट ग्रहोंके स्पष्ट शरके द्वारा कर्ण-संस्कार लाकर उससे संस्कृत तत्कालीन क्रान्तियोंके अन्तर वा योगसे दक्षिणोत्तर अन्तर निकालें ।

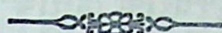
(२६) क्रान्ति--वृत्तीय युतिमें तत्कालीन ग्रहोंके स्पष्ट शरोंके अन्तर वा योगसे, अर्थात् एक दिशामें अन्तर और भिन्न दिशामें योगसे, उनका कदम्बीय दक्षिणोत्तर अन्तर निकल आता है ।

(२७) लम्बन और नति। पूर्वोक्त द्विविध युति-काल और दक्षिणोत्तर अन्तर भूकेन्द्रस्थ द्रष्टाके लिए हैं; भूपृष्ठगत द्रष्टाके लिए नहीं। उन्हें भूपृष्ठगत द्रष्टाके लिए बनानेमें उनमें सूर्य-ग्रहणवत् क्रमशः लंबन और नति संस्कार करने पड़ते हैं। ऊर्ध्वस्थग्रहको सूर्य और अधःस्थ ग्रहको चन्द्र कल्पना करे; पर त्रिभोन लग्न वास्तविक सूर्यसे ही निकाले। इस त्रिभोन लग्न और कल्पित सूर्यके अन्तर (विश्लेषांश) तथा त्रिभोन लग्नके उन्नतांशके द्वारा स्फुट लंबन निकाल उससे युतिकालको संस्कृत करे। क्रान्ति वृत्तीय युतिमें युति कालीन ग्रहोंके शर लाकर उन्हें अपनी अपनी नति से संस्कृत करे। नति-संस्कृत शरोंका, एक दिशामें अन्तर पर भिन्न दिशामें योग करनेसे, ग्रहों का कदम्बीय दक्षिणोत्तर अन्तर मालूम होगा। विषुवद् वृत्तीय युतिमें युतिकालीन शरोंको नति-संस्कृत करके ही उनसे कर्ण संस्कार लावे और इन्हीं कर्ण संस्कारोंसे ग्रहोंकीअपनी क्रान्तियोंको संस्कृत कर उनके योग वा अन्तर द्वारा ग्रहोंका ध्रुवीय दक्षिणोत्तर अन्तर मालूम करे।

इति श्रीरजनीकान्त शास्त्रिकृतौ ज्योति--र्गणित--कौमुद्यां
" ग्रहयुत्यधिकारो " नाम दशमपरिच्छेदः॥



एकादश-परिच्छेद ।



मुसलमानी (हिजरी) जंत्री । (Hijri Calendar) ।

(१) उत्पत्ति । मुसलमानोंका सन् 'हिजरी सन्' कहलाता है । हिजरी शब्द अरबी भाषाके हिज्र शब्दसे निकला है जिसका अर्थ जुदाई (वियोग) है । कहते हैं कि इस्लाम धर्मके प्रवर्त्तक पैगम्बर मुहम्मद साहब जिस दिन मक्केसे जुदा होकर स्वप्रचारित इस नवीन धर्मके विरोधियोंसे अपनी जान बचानेके लिए मदीने चले गये उसी दिनसे हिजरी सन्‌का आरम्भ हुआ । यह तो ठीक है कि हिजरी सन् मुहम्मद साहबकी हिजरतसेही सम्बन्ध रखता है; पर वे जिस दिन मक्का छोड़कर मदीने चले गये उसी दिनसे हिजरी सन्‌का प्रारम्भ मानना वा उसी दिनको उसका प्रवत्तन (जारी होना) मानना भारी भूल है । वस्तुतः हिजरतके दिन हिजरी सन्‌का प्रारम्भ वा प्रवर्त्तन दोनोंमेंसे कोई भी न हुआ । अरबवालोंमें हिजरतके बहुत काल पहलेसेही मुहर्रम आदि १२ चान्द्र मास प्रचलित थे और वर्षका प्रारम्भ भी १ ली मुहर्रमसेही माना जाता था; पर उनमें किसी एक खास सन्‌का प्रचार न था । जब कभी कोई भारी लड़ाई वा वैसीही कोई अन्य सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना हुई तभीसे उस घटना विशेषसे सम्बन्ध रखनेवाले लोग अपना एक सन् जारी कर बैठे । पर महीने वेही मुहर्रम आदि चलते थे । अरबी ग्रन्थोंके अवलोकनसे पता चलता है कि मुहम्मद साहब सफर (अरबी वर्षका दूसरा महीना) की २९ वीं तारीखको मक्केसे जुदा हुए थे जो अरबी वर्षके प्रारम्भ-दिवस १ ली मुहर्रमसे ३०−१+२९=५८ दिनोंके बाद पड़ती है; अतः स्पष्ट है कि हिजरत १ ली मुहर्रमको न होकर २९ वीं सफरको हुई जब सम्बन्धित सालके प्रारम्भसे प्रायः २ महीने बीत चुके थे । इसके अतिरिक्त हिजरी सन्‌का प्रवर्त्तन भी हिजरतके साथही न हुआ । उसका प्रवर्त्तन तो वस्तुतः १७ वर्षोंके बाद हुआ जब दूसरे खलीफा

उमर (प्रथम) को अपने दफ्तरोंके हिसाब-किताब ठीक रखनेके लिये एक सन्‌की आवश्यकता पड़ी । उन्होंने अपने यहाँके विद्वानोंकी सम्मतिसे पैगम्बर साहबकी हिजरतके सालको पहला हिजरी सन् माना और हिजरतके पूर्वके २ महीनोंको भी उसीमें सम्मिलित कर-लिया जिसमें हिजरी सनोंका प्रारम्भ और अवसान अरबी प्रथाकेही अनुसार अर्थात् क्रमशः मुहर्रम और जिलहिज्जके साथ ही चलता रहे। सारांश यह कि हिजरत तो वस्तुतः २९ वीं सफर को हुई पर खलीफा उमर (प्रथम) ने उससे २ महीने पीछे हट कर १ ली मुहर्रमको ही पहले हिजरी सन् का प्रारम्भ माना। उस साल १ ली मुहर्रमको, ग्रेगरीय जंत्रीके अभावसे, जूलीय जंत्रीके अनुसार ईसवी सन् ६२२ की १६ वीं जुलाई थी जो गणितार्थ ग्रेगरीय मतमें परिणत होनेपर १९ वीं जुलाई होती है ।

(२) ई. स. ६२२ में निरयण मेषार्ककी अंगरेजी तारीख निकालना ।१९००–६२२=१२७८॥ १२७८×२०७=२६४५४६॥ २६४५४६÷८००=दिनादि ३३० । ४० । ५७ ॥ मध्यवर्त्ती अधि-काह वर्षोंकी संख्या ३१० ॥ दोनोंका अन्तर दि. २० । ४० । ५७ ॥ यही इष्ट चालन हुआ । ईसवी सन् १९०० में मेष संक्रमणकी अंग-रेजी तारीख एप्रिल १२ । ३९। ४ थी । इसमेंसे उक्त चालनको निकाल दिया तो ईसवी सन् ६२२ में निरयण मेषार्ककी अंगरेजी तारीख मार्च २२। ५८। ७ = मार्च २३ मिली।

(३) ई. स. ६२२ का प्रारम्भिक अयनांश लाना । १९००–६२२=१२७८। १२७८÷३०=४२ । ३६ । १२७८–४२ । ३६=१२३५ । २४ ॥ १२३५ । २४÷६०=अंशादि चालन २० । ३५ । २४ ॥ अंशादि २२ । २९ । २६–अंशादि २० । ३५ । २४= इष्ट अयनांश १ । ५४ । २ । सूर्य-सिद्धान्तके मतसे इष्ट अयनांश १ । ५० । ४२ है । दोनों प्रायः एक हैं।

(४) अयनांश जानकर निरयण मेषार्ककी अंगरेजी तारीख लाना । वासन्त क्रान्ति-पात (सायन मेषार्क) की अंगरेजी

तारीख २१ वीं मार्च प्रायः सदाके लिये निश्चित है और ई. स. १९३६ में निरयण मेषार्ककी अंगरेजी तारीख १३ वीं एप्रिल है; अर्थात् दोनों में २३ दिनोंका अन्तर है और उक्त ईसवी सन्में अयनांश भी २३ ही है । इससे यह नियम निकला कि २१ वीं मार्चमें इष्ट ईसवी सन्के अयनांश तुल्य दिनादि मिला देनेसे उस ईसवी सन्में निरयण मेषार्क की अंगरेजी तारीख निकल आती है । इस नियमके अनुसार भी २१ वीं मार्चमें ई. स. ६२२ के अयनांश १ । ५४ । २ तुल्य दिनादि मिला देनेसे उस ईसवी सन्में निरयण मेषार्ककी अंगरेजी तारीख मार्च २२ । ५४ । २=मार्च २३ ही आई । नियम (२)और(४)दोनोंसे एक ही फल आया; अतः वह ठीक है ।

(५)ई. स. ६२२ में १ ली जनवरीकी चान्द्र तिथि और उससे उक्त सन्में संवत्, निरयण मेषार्ककी तिथि, मास और पक्ष मालूम करना । ६२२−१=६२१ ॥ ६२१÷४००=लब्धि १ शेष २२१ ॥ २२१÷१००=लब्धि २ शेष २१ ॥ २१÷४=लब्धि ५ शेष १ ॥ १÷१=लब्धि १ शेष ० ॥ फिर लब्धि १×९ । १० । ५३= दि. ९ । १० । ५३ ॥ लब्धि २×२४ । ११ । ३६=दि. ४८ । २३ । १२ ॥ लब्धि ५×१४ । ० । ४=दि. ७० ।०। २० ॥ लब्धि १×१०। ३७ । ५९=दि. १० । ३७ । ५९ ॥ कुल गुणन-फलोंका योग-फल= दि. १३८ । १२ । २४ । इसमेंसे ऋण बीज दि. १० । १७ । ५५ निकाल दिया तो ई. स. ६२२ की प्रारम्भिक भुक्त चन्द्रायु दि. १२७ । ५४ । २९ मिली । इसमें पूर्णायुका भाग दिया तो शेष दि. ९ । ४७ । ९ हुआ । इसमें दिन-संख्या ९ तुल्य ९ घटिगां मिलाईं तो ई. स. ६२२ के प्रारम्भिक तिथ्यादि ९ । ५६ । ९ मिले जो १० तिथिके तुल्य हुए । इसके द्वारा मेषार्क (निरयण) की अंगरेजी तारीख २३ वीं मार्चकी तिथि १०+० (मार्चका चालन) + (२३-१)=३२=शुक्ल २ हुई । पर यह निश्चय है कि जब निरयण मेषार्ककी तिथि कृष्ण है तो वह चैत्र शुक्लकी है और यदि वह कृष्ण है तो वह वैशाख कृष्ण

की है। इससे सिद्ध हुआ कि ई. स. ६२२ में सूर्यका निरयण मेषमें संक्रमण चैत्र शुक्ल २ को हुआ। जिससे चैत्रकी अमावस्याकी अंगरेजी तारीख मार्च २१ मिली। अब १ ली जनवरीसे २१ वीं मार्च तक ६२२+५६=६७८ (विक्रमीय संवत्) तथा २१ वीं मार्चके बाद ३१ वीं दिसम्बर तक ६२२+५७=६७९ (विक्रमीय संवत्) मिला।

(६) उक्त गणित-क्रियासे यह मालूम होगया कि हिजरी सन्की प्रारम्भिक अंगरेजी तारीख १९ वीं जुलाई होनेके कारण वह विक्रमीय संवत् ६७९ में प्रारम्भ हुआ। अब यह मालूम करना है कि हिजरी सन्का प्रारम्भ किस चान्द्र-मासके किस पक्षमें किस तिथिको हुआ था। मार्च २१ के बाद १९ वीं जुलाई तककी दिन-संख्या १२०=४ चान्द्र मास २ तिथि=श्रावण शुक्ल २ हिजरी सन्के प्रारम्भिक चान्द्र मास, पक्ष और तिथि हुई।

(७) **हिजरतकी अंगरेजी तारीख तिथि मास और पक्ष निकालना।** हिजरत १९ वीं जुलाईसे ५८ दिनोंके बाद हुई, यह लिख चुके हैं। अतः १९ वीं जुलाईसे ५८ दिनोंके बाद, जुलाईमें शेष १२ दिन + अगस्त ३१ दिन + सितम्बरमें १९ दिन = १९ वीं सितम्बर ग्रेगरीय मतसे = १२ वीं सितम्बर जूलीय मतसे हुई; अतः १२ वीं सितम्बर ई. स. ६२२ में हिजरत हुई। मार्च २१ (चैत्रकी अमावस्या) के बाद १९ वीं सितम्बर (ग्रेगरीय) तककी दिन संख्या १७८ = ६ चान्द्रमास १ तिथि=आश्विन शुक्ल प्रतिपद् हुई।

(८) **ईसवी सन् महीना और तारीख जानकर हिजरी सन्, महीना और तारीख जानना।** इष्ट ईसवी सनादिमेंसे हिजरीके प्रारम्भिक सनादिको घटा, शेषस्थ वर्ष-संख्याको ७ से गुण; गुणन-फलमें २२८ का भाग दे, लब्धिके वर्षादिको उक्त शेषमें जोड़ देवे। फिर योग-फलमें १ वर्ष १ मास तथा योग-फलस्थ मास संख्या तुल्य दिन मिलानेसे इष्ट हिजरी सनादि आते हैं पर हिजरी तारीखोंके निकालनेमें यह विशेषता है कि इष्ट अंगरेजी तारीख तुल्य तिथि निकाल कर उसमेंसे २ घटा देवे।

उदाहरण। ईसवी सन् १९३६ जून १९ तुल्य हिजरी सन्, महीना और तारीख निकालना है तो १९३६। ६। १९–६२२। ७। १९ =१३१३। ११। ०॥ १३१३ × ७ = ९१९१ ॥ ९१९१ ÷ २२८= वर्षादि ४०। ३। २२॥ १३१३। ११। ० + ४०। ३। २२ = १३५४। २। २२॥ इसमें वर्षादि १। १। २ मिलाया तो वर्षादि १३५५।३। २४ आया अर्थात् इष्ट हिजरी सन् १३५५ महीना रविउल् औवल और तारीख २४ वीं आई। पर इस तारीखको न ग्रहण कर इष्ट अंगरेजी तारीखकी तिथि अमावस्या ३० मेंसे २ घटा शेष २८ वीं तारीख रवि-उल्-औवल महीनेकी ग्रहण की।

(९) विक्रमीय संवत्, चान्द्र-मास और तिथि जानकर हिजरी सन्, महीना और तारीख जानना। इष्ट विक्रमीय संवत् आदिकी संख्याओंमेंसे वर्षादि ६७९। ५। २ को घटाकर शेषके साथ सब वेही क्रियायें करनी चाहियें जो नियम (८) में बतलाई गई हैं। किसी चान्द्रमासकी संख्या जाननेके लिये वैशाखसे प्रारम्भ कर अमान्त चान्द्रमासोंको गनना चाहिये; जैसे वैशाखकी अमावस्था तक १ ज्येष्ठकी अमावस्यातक २ इत्यादि।

उदाहरण। विक्रमीय संवत् १९९३ आषाढ़की अमावस्या (३०) वीं तिथि के तुल्य हिजरी सन् आदि निकालना है तो १९९३। ३। ३०–६७९। ५। २=१३१३। १०। २८॥ १३१३ ×७÷२२८= वर्षादि ४०। ३। २२॥ पुनः १३१३। १०। २८ + ४०। ३। २२=१३५४। २। २०॥ १३५४। २। २०+१। १। २=१३५५। ३। २२= हिजरी सन् १३५५ महीना रवि-उल्-औवल और तारीख ३०–२=२८ वीं हुई।

(१०) मुसलमानी त्योहार और उनके हिजरी महीने और तारीखें। (१) ताजिया=१० वीं मुहर्रम। (२) चेहलुम=२० वीं सफर। (३) आखिरी चहारशम्बा=सफरके महीनेमें अन्तिम बुध।

(४) फातेहा द्वाजदहुम (मुम्हमद साहबका जन्म-दिन) और बारहबफात (मुहम्मद साहबका मृत्यु-दिन) दोनों=रबि-उल् औवलकी १२ वीं तारीख। (५) ११ वीं शरीफ=११ वीं रबि–उस्–सानी। (६) शबे-बरात = सन्ध्या तक शाबानकी १४ वीं समाप्त और रातमें शाबान की १५ वीं तारीख। (७) ईद-उल-फित्र (ईद) = १ ली शौआल। (८) ईद-उज-जोहा। (बकरीद) = १० वीं जिलहिज। (९) जुमा-तुल-वेदा = रमजानका अन्तिम शुक्रवार।

(११) यहूदी जंत्री (Jewish Calendar)। यहूदी जंत्रीका वर्ष क्रान्ति पातिक सौर वर्ष है जिसमें १२ चान्द्रमास होते हैं। पर क्रान्ति पातिक सौर वर्ष लग भग ३६५$\frac{१}{४}$ दिनोंका होता है और १२ चान्द्रमासोंमें केवल ३५४ दिन होते हैं; अतः यहूदियोंमें भी हिन्दुओंकी तरह निश्चित समयपर अधिमास घुसेड़कर चान्द्र-वर्षको उक्त सौर वर्षके तुल्य कर लेनेकी प्रथा है। जिस वर्षमें अधिमास लिया जाता है उस वर्षमें १३ चान्द्रमास = ३८४ दिन होते हैं अन्यथा साधारणतया वर्षमें केवल १२ चान्द्रमास = ३५४ ही दिन होते हैं। १९ वर्षोंके प्रत्येक चक्रमें १२ बारह–मासवाले और ७ तेरहमासवाले वर्ष होते हैं जो उक्त चक्रके क्रमशः ३ रा, ६ ठा, ८ वां, ११ वां, १४ वां, १७ वां और १९ वां वर्ष हैं।

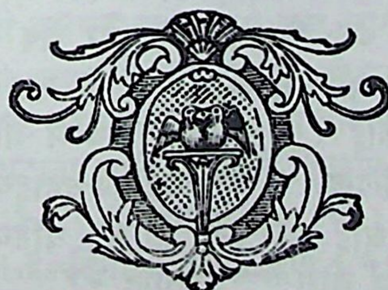
(१२) यहूदी महीनोंके नाम–(१) तीशरी (Tishri)। (२) मरेश्वान (Marheswan)। (३) किस लव (Kislev)। (४) तेबेत (Tebet)। (५) शेबात (Shebat)। (६) आदर (Adar) (७) निसान (Nisan)। (८) अय्यार (Iyar)। (९) सिवान (Sivan)। (१०) तम्मूज (Tammuz) (११) आब (Ab)। (१२) इल्लूल (Ellul)। सब महीने अमावस्या (New Moon) से चलते हैं। नया वर्ष सितम्बरके अन्त वा अक्तूबरके आदिमें वा उसी के आस-पासमें प्रारम्भ होता है। अतः प्रत्येक ईसवी सन्में दो यहूदी सन् निकालने पड़ते हैं, एक उसमें ३७६० जोड़कर और दूसरा उसमें

३७६१ जोड़कर; जैसे ईसवी सन् १९२५ में १९२५+३७६०=५६८५ और १९२५+३७६१=५६८६ ये दो यहूदी सन् आए । इनमेंसे पहला जनवरी से लेकर सितंबर तक और दूसरा अक्तूबरसे लेकर दिसम्बर तक चलता है । सितम्बरके अन्त और अक्तूबरके आदिके समीप जो अमावस्या पडती है उसी अमावस्याको नया यहूदी सन् प्रारम्भ होता है । वह अमावस्या आश्विनकी होती है ।

(१३) पारसी जंत्री (Parsee Calendar) । प्रत्येक ईसवी सन्‌में दो पारसी सन् भी निकालने पड़ते हैं, एक उसमेंसे ६३२ और दूसरा उसमेंसे ६३१ घटाकर; जैसे ईसवी सन् १९३६ में १९३६-६३२=१३०४ और १९३६-६३१=१३०५ ये दो पारसी सन् आए। पहला वर्त्तमान कालमें प्रायः भाद्रपदतक और दूसरा उसके बादसे चलता है । अंगरेजी महीने अगस्त और सितम्बर पडते हैं ।

(१४) पारसी महीनोंके नाम । पारसी महीने भी १२ होते हैं, जिनके नाम क्रमानुसार ये हैं-(१) फरवर्दिन । (२) आर्दिवेहस्त । (३) खोरदाद । (४) तिर । (५) अमरदाद । (६) शरेखर । (७) मेहर । (८) आबान (९) आदर । (१०) देह । (११) वहमन । (१२) आस्पंदाद । ये सब ३० दिनके होते हैं और पीछे ५ दिन की गाथा होती है ।

इति श्रीरजनीकान्तशास्त्रिकृतौ ज्योति-र्गणित-कौमुद्यां
" मुसल्मानी जंत्री " नाम एकादशपरिच्छेदः ॥



परिशिष्ट ।



(१) दिनादि (दिन, घटी, पल और विपल) चार अवयवोंसे सम्पन्न राशियों (Expressions) का जोड़ना। सर्वदा अन्तिम अवयवोंसे क्रिया प्रारम्भ करनी चाहिये। विपलोंकी इकाइयों को जोड योगफलकी इकाईको रेखाके नीचे विपलकी जगह लिख, उसकी दहाई आदिको विपलोंकी दहाइयोंमें जोड, इस दूसरे योगफलमें, यदि वह ६ से अधिक हो तो ६ का भाग दे, शेषको रेखाके नीचे विपलकी जगह लिखी हुई पूर्वोक्त इकाईकी बाईं ओर रख देवे और लब्धिको पलोंकी इकाइयोंमें जोड, इस तीसरे योग-फलकी इकाईको रेखाके नीचे पलकी जगह लिख, उसकी दहाई आदिको पलोंकी दहाइयोंमें जोड इस चौथे योगफलमें यादि वह ६ से अधिक हो तो ६ का भाग दे शेषको रेखाके नीचे पलकी जगह लिखी हुई पूर्वोक्त इकाईकी बाईं ओर लिख देवे और लब्धिको घटियोंकी इकाइयोंमें जोड कर शेष क्रिया पूर्ववत् करता चला जाये जब तक दिन संख्यायें न जोड ली जायें। यदि पूर्वोक्त दहाइयोंके योगफलोंमेंसे कोई ६ से कम हो तो उसे ज्योंका त्यों यथास्थान लिख आगे की क्रिया करनी चाहिये और यदि ६ हो तो वहां लब्धि १ और शेष शून्य मानकर क्रियाको आगे बढ़ाना चाहिये।

उदाहरण। निम्न-लिखित उदाहरणमें विपलोंकी इकाई ५ +५+ १ + ३ = १४। ४ को रेखाके नीचे लिख, १ को विपलोंकी दहाई ४ + ३ में जोड़ा तो ८ हुआ। ८÷६= लब्धि १ और शेष २। इस २ को रेखाके नीचे ४ की बाईं ओर रखा तो २४ विपल हुए और लब्धि १ को पलोंकी इकाई ३+१ + ९ में जोड़ा तो फिर १४ हुआ। इसके ४ को रेखाके नीचे रख, १ को पलोंकी दहाई २ + ३ + २ में जोड़ा तो ८ हुआ। ८÷ ६=लब्धि १ और शेष २। पुनः इस २ को रेखाके नीचे दूसरे ४ की बाईं ओर रखा तो २४ पल हुए और लब्धि १ को घटियोंकी इकाई ६ + ५ + ४ + ७ में जोड़ा तो २३ हुआ। ३ को रेखाके नीचे लिख, २ को घटीकी-दहाइयोंमें जोड़ा तो ५ हुआ। जिसे ३ की बाईं ओर रखा तो ५३ घटियां हुईं। इस प्रकार क्रिया करते-करते हमें योग-फल दिनादि २१।०।५३।२४।२४ मिला।

दि.	घ.	प.	वि.
११४	१६	२३	४९
४३	१९	३१	९
२७	१४	२०	३१
२९	७	९	३
२१३	९३	२४	२४

नोट। यदि जोड़ी जानेवाली राशियां राश्यादि (राशि, अंश, कला और विकला) हों तो उन्हें भी जोड़नेमें पूर्वोक्त ही क्रिया करनी चाहिये। अन्तर केवल इतना ही है कि अंशोंकी दहाइयोंके योग-फलमें ६ का भाग न दे ३ का भाग देना चाहिये। और यदि प्रथमावयवकी संख्या निश्चित हो तो योग-फलके प्रथमावयवकी संख्यामें, यदि वह निश्चित संख्यासे अधिक हो तो, निश्चित संख्याका भाग दे शेषको ही ग्रहण करना चाहिये। जैसे किसी राश्यादि योग-फलमें राशि-संख्या १७ हो तो वहां १७÷१२=शेष राशि ५ ही ग्रहण करे, कारण कि राशियोंकी संख्या १२ निश्चित है।

(२) किसी बड़ी दिनादि सावयव राशिमेंसे तज्जातीय छोटी सावयव राशिको घटाना। बड़ी राशि वही है जिसका कमसे कम प्रथमावयव दूसरी राशिके प्रथमावयवसे बड़ा हो। यदि बडी राशिके सभी अवयव छोटी राशिके सभी अवयवोंसे बडे हों तो उनका अपना अपना अन्तर साधारण रीतिसे बडेमेंसे छोटेको घटाकर ले लेनेसे दोनों राशियोंका अन्तर निकल आता है; जैसे दिनादि ४७। १३। १२। १०—दिनादि ३७। १०। ८। ५=शेष दिनादि १०। ३। ४। ५ हुआ। यदि बडी राशिके प्रथमावयवके अतिरिक्त अन्य सभी अवयव, वा उनमेंसे कुछ, छोटी राशिके स्वजातीय अवयवों वा अवयवसे कम हों वा हो तो बडी राशिके पूर्व-पूर्वके अवयवोंको एकोन तथा पश्चात्-पश्चात्के अवयवोंको षष्ट्य (६०) धिक कर छोटी राशिको घटाना चाहिए; जैसे दिनादि ५१।१०। ७। ४—दिनादि ३५। १२।१०। ६=दिनादि ५०।६९। ६६। ६४—दिनादि ३५। १२। १०। ६=दिनादि १५। ५७। ५६। ५८ शेष।

नोट-यदि प्रथमावयवकी संख्या निश्चित हो और बडी राशिका प्रथमावयव छोटी राशिके प्रथमावयवसे छोटा हो तो उसमें निश्चित संख्या मिलाकर उसे बडा कर लेना चाहिए; जैसे राश्यादि ३ । १९ । २१ । ३-राश्यादि १० । १९ । २५ । ४०=रा. १५ । १९ । २१ । ३-रा. १० । १९ । २५ । ४० । यहाँ एक और भी बात ध्यान देने योग्य है । बड़ी राशिके प्रथमावयवको एकोन कर पश्चात्‌के अवयवको त्रिशद-(३०) धिक करना चाहिए । अभिप्राय यह कि ऊनाधिक करते समय यह देख लेना चाहिए कि, पूर्व-पूर्वके अवयवके प्रत्येक न्यूनतमपूर्ण खण्ड (Unit) में पश्चात्-पश्चात् अवयवके कितने न्यूनतम पूर्ण खण्ड निरवशेष रहते हैं; जैसे यहाँ देखा गया कि प्रत्येक राशिमें ३० अंश रहते हैं । अब हिसाब किया रा. १९ । १९ । २१ । ३-रा. १० । १९ । २५ । ४०=रा. १४ । ४४ । ८० । ६३-रा. १० । १९ । २५ । ४०=रा. ४ । २९ । ५५ । २३ शेष ।

(३) किसी दिनादि सावयव राशिको किसी निरवयव छोटे गुणकसे गुणना । गुणकसे विपलोंकी इकाईको गुण, गुणन-फलकी इकाईको रेखाके नीचे विपलकी जगह लिख, उसके दहाई आदिको हाथमें रखे । फिर गुणकसे विपलोंकी दहाईको गुण, गुणन-फलमें हाथकी संख्या जोड़, योग-फलमें ६ का भाग दे शेषको रेखाके नीचे उक्त विपल-संख्याकी बाईं ओर लिख, लब्धिको हाथमें रखे । फिर गुणकसे पलोंकी इकाईको गुण, गुणन-फलमें हाथकी उक्त लब्धिको जोड़, योग-फलकी इकाईको रेखाके नीचे पलकी जगह लिखे और उसके दहाई-आदिको हाथमें रखे । फिर गुणकसे पलोंकी दहाई-को गुण, गुणन-फलमें हाथकी संख्या जोड़, योग-फलमें ६ का भाग दे, शेषको रेखाके नीचे पलकी इकाईकी बाईं ओर लिख, लब्धिको हाथमें रखे । इस प्रकार क्रिया करते चला जाए जबतक गुणकसे दिन-संख्या गुण, गुणन-फलमें हाथकी पूर्वागत दिनात्मक लब्धि न जोड़ दीजाए।

उदाहरण । दिनादि २७ । १९ । १७ । ५८ को १३ से गुणना

है तो १३×८=१०४ । ४ को रेखाके नीचे और १० को हाथमें रखा ।

दि. २७ । १९ । १७ । ९८
× १३
दि. ३५९ । १० । ५३ । ३४

फिर १३×५=६५ । ६५+१०=७५ । ७५÷६=ल. १२ शे. ३ । शेष ३ को रेखाके नीचे ४ के बाएं रखा तो ३४ विपल हुए और लब्धि १२ को हाथमें रखा । फिर १३×७+१२=१०३ । इसके ३ को रेखाके नीचे पलकी जगह और १० को हाथमें रखा । फिर १३×१+१०=२३।२३÷६=ल. ३ शेष ५ । शेष५ को रेखाके नीचे पल ३ के बाएं रखा तो ५३ पल हुए और लब्धि ३ हाथमें रही । फिर १३×९+३=१२० । इसके ० को रेखाके नीचे घटीकी जगह और १२ को हाथमें रखा । फिर १३×१+१२=२५ । २५÷६ = ल. ४ शे. १ । शेष १ को रखाके नीचे घटी ० के बाएं रखा तो १० घटियां हुईं और लब्धि ४ हाथमें रही । फिर १३×२७+४=दिन ३५५ हुए । अतः गुणन-फल दिनादि ३५५ । १० । ५३ । ३४ हुआ ।

नोट-यदि गुण्य राश्यादि हो तो गुणक से अंशोंकी दहाईको गुण, गुणन-फलमें हस्त-गत संख्या जोड़ योग-फलमें ३ का भाग दे शेष क्रिया पूर्ववत् करनी चाहिये ।

(४) यदि निरवयव गुणक कोई बड़ी संख्या हो तो उसे उसके अपवर्त्तकोंमें तोड़कर गुण्यको किसी एक अपवर्त्तकसे गुणा करे; फिर जो गुणन-फल प्राप्त हो उसे किसी दूसरे अपवर्त्तकसे, फिर जो गुणन-फल प्राप्त हो उसे किसी तीसरे अपवर्त्तकसे गुणा करे और इसी प्रकार गुणा करते चला जाए जब तक एक-एक-कर सभी अपवर्त्तकोंसे गुणा करना समाप्त न हो जाए । जैसे दिनादि २७ । १९ । १७ । ५८ को ४५ से गुणा करना है तो ४५=९×५ । उक्त गुण्य × ९=दिनादि २४५ । ५३ । ४१ । ४२ । फिर इस गु. फ. को ५ से गुणा किया तो इष्ट गुणन-फल दिनादि १२२९ । २८ । २८ । ३० हुआ ।

(५) यदि निरवयव गुणक कोई ऐसी बड़ी संख्या हो जिसके अपवर्तक न होते हों तो उसे ऐसे खण्डोंमें तोड़ना चाहिये जिनके योग-फलसे वह बनता हो । फिर गुण्यको प्रत्येक खण्डसे अलग-

अलग गुणकर कुल गुणन फलोंको जोड़ देनेसे इष्ट गुणन-फल निकल आता है । जैसे उक्त दिनादि २७ । १९ । १७ । ५८ को १७ से गुणना है तो १७ = ९+८ । फिर उक्त गुण्य × ९=दिनादि २४५ । ५३ । ४१ । ४२ । फिर उक्त गुण्य × ८ = दि. २१८।३४।२३।४४। दोनोंका योग-फल दि. ४६४ । २८ । ५ । २६ = इष्ट गुणन-फल ।

नोट—गणक-गण चाहें तो किसी बड़े निरवयव गुणकके ऊपर नियम (४) और (५) दोनोंको एक साथ लागू कर सकते हैं; जैसे गुणक ४७=९×५+२ । ऐसी दशामें दोनों नियमोंके द्वारा अलग-अलग निकाले हुए गुणन-फलोंको जोड़कर इष्ट गुणन-फल निकाल लेना चाहिये । यदि वे चाहें तो गुणकका ऋणात्मकखण्ड भी लाकर वे क्रिया कर सकते हैं; जैसे गुणक ४७=१०×५−३ । ऐसी दशामें १०×५ सम्बन्धी गुणन-फलमेंसे ३ सम्बन्धी गुणन-फलको घटाकर इष्ट गु. फ. लाना चाहिये ।

(६) व्यावहारिक गुणन-विधि । इसमें गुण्यके ही खण्ड किये जाते हैं और उन्हें स्वपूर्व अवयवके न्यूनतम पूर्ण खण्ड (Unit) के भिन्न-रूपमें रख, उन्हें गुणकसे अलग-अलग गुणकर, कुल गुणन-फलोंको जोड़ देते हैं । उदाहरण—दिनादि ३६५ । १५ । ३१ । ३० को १७ से गुणा करना है तो—

३६५×१७=		दि. ६२०५	०	०	०
घ. १५ = दि. $\frac{१}{४}$ ∴	१७×$\frac{१}{४}$=	४	१५	०	०
प. ३०=घ. $\frac{१}{२}$ ∴	१७×$\frac{१}{२}$=	०	८	३०	०
प. १ × १७	=	०	०	१७	०
वि. ३० = प. $\frac{१}{२}$ ∴	१७×$\frac{१}{२}$=	०	०	८	३०
योग-फल (इष्ट गुणन-फल) =		६२०९	२३	५५	३०

(७) किसी सावयव गुण्यको किसी सावयव गुणकसे गुणा करना । ज्योतिःशास्त्रमें सबसे अधिक जरूरत इसी प्रकारकी गुणन-क्रियाकी पड़ती है । जहाँ गुण्य और गुणक दोनोंके पूर्व-पूर्व अवयवका प्रत्येक न्यूनतम पूर्ण खण्ड उत्तरोत्तर अवयवके प्रत्येक न्यूनतम पूर्ण खण्डका साठ (६०) गुणा हो वहाँ ही इसका प्रयोग

करना चाहिए। गुण्यके प्रत्येक अवयवको गुणकके प्रत्येक अवयवसे गुण, गुणकके प्रत्येक अवयव-सम्बन्धी गुणन-फलको इस प्रकार नीचे ऊपर रखना चाहिए कि उसके प्रथम अवयव सम्बन्धी गुणन-फल के दूसरे अवयवके नीचे, उसके दूसरे अवयवसम्बन्धी गुणन-फलका प्रथम अवयव रहे; पुनः दूसरे अवयवके गुणन-फलके दूसरे अवयवके नीचे तीसरे अवयवके गुणन-फलका प्रथम अवयव रहे इत्यादि। इस प्रकार सबोंको रखकर जोड़ देवे। फिर योग-फलके अन्तिम अवयवमें ६० का भाग दे शेषको अलग रखे और लब्धिको पूर्वके अवयवमें जोड़, योग-फलमें फिर ६० का भाग दे शेषको अलग रख लब्धिको पूर्वके अवयवमें जोड़, योग-फलमें पुनः ६० का भाग देवे। इस प्रकार क्रिया करता चला जाए जबतक गुणन फलोंका पूर्वोक्त योग-फल स्पष्ट न हो जाए। मान लिया कि कलादि १।१।२३ को घट्यादि १७।३९ से गुणना है तो गुण्यको ऊपर और गुणकको नीचे रख इस प्रकार क्रिया की—

	क. १ । १ । २३
	× घ. १७ । ३९
१७ × १ । १ । २३ =	१७ । १७ । ३९१
३९ × १ । १ । २३ =	३९ । ३९ । ८९७
योग-फल =	१७ । ५६ । ४३० । ८९७

पुनः ८९७ ÷ ६० = ल. १४ शे. ५७। ४३०+१४=४४४। ४४४÷ ६०=ल. ७ शे. २४।५६+७ = ६३।६३ ÷६०=ल. १. शे. ३।१७+ १=१८। इस १८ पर उक्त शेषोंको क्रमानुसार अवयवोंके रूपमें रखा तो स्पष्ट गुणन-फल कलादि १८।३। २४। ५७ हुआ।

(८) किसी सावयव भाज्यमें किसी निरवयव भाजकका भाग देना। भाज्यके प्रथमावयवमें भाजकका भाग दे लब्धिको अलग रखे और शेषको यदि भाज्य राश्यादि हो तो ३० से अन्यथा ६० से गुण, गुणन-फलमें भाज्यके दूसरे अवयवको जोड़, योग-फलमें फिर भाजकका भाग देवे। लब्धिको अलग रख, शेषको पुनः ६० से गुण, गुणन-फलमें तीसरे अवयवको जोड़, योग-फलमें पुनः भाजकका भाग देवे और इसी प्रकार क्रिया करता चला जाए जब तक कि भाज्यके अन्तिम

अवयवमें भाग न लग जाए । इस प्रकार क्रिया समाप्त हो जानेपर कुल लब्धियोंको एक राशिमें यथास्थान रख देनेसे इष्ट लब्धि मिल जाती है ।

उदाहरण । कलादि २७।१०।४६ में ९ का भाग देना है तो २७÷९=ल. ९. शे. २।६०×२+१०=१३०।१३० ÷ ९ =ल. २६ शे ०।० ×६०+४६=४६ । ४६ ÷ ९ = ल. ९ शे. १ । कुल लब्धियोंको यथास्थान एक राशिमें रख देनेसे इष्ट लब्धि कलादि ९ । २६।९ मिली ।

(९) किसी सावयव भाज्यमें किसी सावयव भाजकका भाग देना । भाजकके प्रथमावयवसे भाज्यके प्रथमावयवमें भाग देनेसे स्थूल लब्धि आती है । स्थूल लब्धिको गुणन क्रियार्थ–सुविधा-जनक तुल्य-खण्डोंमें, वा आवश्यकतानुसार अधिकतर तुल्य खण्डोंमें और शेष अतुल्य खण्डोंमें, तोडकर उसके प्रथम खण्डसे गुणित भाजकको भाज्यमेंसे घटा देवे । जो शेष प्राप्त हो उसमेंसे दूसरे खण्डसे गुणित भाजकको फिर घटा देवे । इस प्रकार क्रिया करते चला जाये जब तक अन्तिम खण्डसे गुणित भाजक अधिक होनेके कारण उपान्त्य शेषमेंसे न घट सके, तो उस खण्डको एकोन वा आवश्यकतानुसार उसमें भी कम कर, उससे गुणित भाजकको उपान्त्य शेषमेंसे घटा देवे । ऐसा करनेसे जो शेष मिलेगा वही अन्तिम शेष होगा । और जिन खण्डोंसे भाजकको गुणा किया गया है उनका योग-फल इष्ट लब्धि होगा।

उदाहरण। दिनादि १०७१।२६।४१।१२ में दिनादि २९।३१।५०।७ का भाग देना है तो १०७१÷२९=स्थूल लब्धि ३६=१२+१२+ १२।

भाजक		भाज्य	लब्धि
दि. २९ । ३१ । ५० । ७)	दि.	१०७१ । २६ । ४१ । १२ (	१२ + १२ + १२ = ३६
भाजक×१२=	गु. फ.	३५४ । २२ । १ । २४ घटाया	
	शेष	७१७ । ४ । ३९ । ४८	
भाजक×१२=	गु. फ.	३५४ । २२ । १ । २४ घटाया	
	शेष	३६२ । ४२ । ३८ । २४	
भाजक×१२=	गु. फ.	३५४ । २२ । १ । २४ घटाया	
	अं. शे.	८ । २० । ३७ । ०	

नोट। स्थू. ल. को तु. खं. में तोड़नेसे यह लाभ है कि एकही गु. फ. से कई वार काम निकलता है ।

(१०) किसी सावयव राशिका वर्ग-मूल निकालना । राशिके प्रथम अवयवका वर्ग-मूल साधारण रीतिसे निकाल लेनेसे वह इष्ट वर्ग-मूलका प्रथमावयव होता है । फिर राशिके प्रथमावयवका वर्ग-मूल निकाल लेने पर जो उसका शेष बच जाता है उसे यदि वह अंश, कला, अंगुल वा इसी प्रकारका कोई अन्य परिमाण हो तो, ६० से गुण गुणन-फलमें राशिके दूसरे अवयवको जोड़, योग-फलमें उक्त वर्ग-मूलके दूनेसे भाग देनेपर इष्ट वर्ग मूलका दूसरा अवयव आता है ।

उदाहरण । अंगुलादि ३८२ । ४० का वर्ग-मूल निकालना है तों ३८२ का वर्ग-मूल १९ हुआ । यह इष्ट वर्ग-मूलका अंगुल हुआ । शेष २१×६०+४०=१३०० । इसमें द्विगुणित वर्ग-मूल १९ अर्थात् ३८ का भाग दिया तो इष्ट वर्ग-मूलका व्यंगुल ३४ मिला । अतः इष्ट वर्ग-मूल अङ्गुलादि १९ । ३४ आया—

भाजक	अङ्गुलादि भाज्य	वर्ग-मूल
१	३८२ । ४०	१९ । ३४
	१	
द्विगुणित १ पर ९=२९	२८२	
	२६१	
	२१×६०+४०=	
द्विगुणित १९ = ३८	१३००	
	११४	
	१६०	
	१५२	
	८ छोड दिया	

(११) परमभुज ३ राशियों (९० अंशों) का होता है । चतुर्थ परिच्छेदके नियम २७ में भुज ज्यायें और स्पर्श रेखायें छः छः अंशोंके अन्तर पर दी गई हैं जिससे भुज-ज्याओंमें तो वैसे नहीं, पर स्पर्श रेखाओंमें स्थूलता आ जानेकी संभावना है; अतः सूक्ष्मतार्थी निम्न-लिखित चक्रोंसे प्रत्यंशकी ज्या और स्प. रे. से कामलें ॥

(क) प्रत्यंश ज्या चक्र ।

भुजांश	ज्या	भुजांश	ज्या	भुजांश	ज्या	भुजांश	ज्या	भुजांश	ज्या	भुजांश	ज्या
१	१७	१६	२७६	३१	५१५	४६	७१९	६१	८७५	७६	९७०
२	३५	१७	२९२	३२	५३०	४७	७३१	६२	८८३	७७	९७४
३	५२	१८	३०९	३३	५४५	४८	७४३	६३	८९१	७८	९७८
४	७०	१९	३२६	३४	५५९	४९	७५५	६४	८९९	७९	९८२
५	८७	२०	३४२	३५	५७४	५०	७६६	६५	९०६	८०	९८५
६	१०४	२१	३५८	३६	५८८	५१	७७७	६६	९१४	८१	९८८
७	१२२	२२	३७५	३७	६०२	५२	७८८	६७	९२०	८२	९९०
८	१३९	२३	३९१	३८	६१६	५३	७९९	६८	९२७	८३	९९३
९	१५६	२४	४०७	३९	६२९	५४	८०९	६९	९३४	८४	९९४
१०	१७४	२५	४२३	४०	६४३	५५	८१९	७०	९४०	८५	९९६
११	१९१	२६	४३८	४१	६५६	५६	८२९	७१	९४५	८६	९९८
१२	२०८	२७	४५४	४२	६६९	५७	८३९	७२	९५१	८७	९९९
१३	२२५	२८	४६९	४३	६८२	५८	८४८	७३	९५६	८८	९९९
१४	२४२	२९	४८५	४४	६९५	५९	८५७	७४	९६१	८९	१०००
१५	२५९	३०	५००	४५	७०७	६०	८६६	७५	९६६	९०	१०००

(ख) प्रत्यंश स्प. रे. चक्र ।

भुजांश	स्प. रे.	भुजांश	स्प. रे.	भुजांश	स्प. रे.	भुजांश	स्प. रे.	भुजांश	स्प. रे.	भुजांश	स्प. रे.
१	१७	१६	२८७	३१	६०१	४६	१०३६	६१	१८०४	७६	४०११
२	३५	१७	३०६	३२	६२५	४७	१०७२	६२	१८८१	७७	४३३१
३	५२	१८	३२५	३३	६४९	४८	११११	६३	१९६३	७८	४७०५
४	७०	१९	३४४	३४	६७५	४९	११५०	६४	२०५०	७९	५१४५
५	८७	२०	३६४	३५	७००	५०	११९२	६५	२१४५	८०	५६७१
६	१०५	२१	३८४	३६	७२७	५१	१२३५	६६	२२४६	८१	६३१४
७	१२३	२२	४०४	३७	७५४	५२	१२८०	६७	२३५६	८२	७११५
८	१४१	२३	४२४	३८	७८१	५३	१३२७	६८	२४७५	८३	८१४४
९	१५८	२४	४४५	३९	८१०	५४	१३७६	६९	२६०५	८४	९५१२
१०	१७६	२५	४६६	४०	८३९	५५	१४२८	७०	२७४७	८५	११४३०
११	१९४	२६	४८८	४१	८६९	५६	१४८३	७१	२९०४	८६	१४३००
१२	२१३	२७	५१०	४२	९००	५७	१५४०	७२	३०७८	८७	१९०८१
१३	२३१	२८	५३२	४३	९३३	५८	१६००	७३	३२७१	८८	२८६३६
१४	२४९	२९	५५४	४४	९६६	५९	१६६४	७४	३४८७	८९	५७२९०
१५	२६८	३०	५७७	४५	१०००	६०	१७३२	७५	३७३२	९०	∞

(१२) भारतके कतिपय प्रसिद्ध नगरोंके अक्षांश, देशान्तर और पलभा ।

नगर	अक्षांश	देशान्तर	पलभा	नगर	अक्षांश	देशान्तर	पलभा
अजमेर	२६।२७ उ	१।२३ प	५।५८	छपरा	२५।४६ उ	०।१७ पू	५।४८
अमरावती	२०।५४ उ	०।५२ प	४।३५	जगन्नाथपुरी	१९।४८ उ	०।२८ पू	४।१९
अमृतसर	३१।३९ उ	१।२१ प	७।२३	जब्बलपुर	२३।१० उ	०।३० प	५।८
अलीगंज	२६।१२ उ	०।१४ पू	५।५४	जम्बू	३२।४४ उ	१।२१ प	७।४३
अयोध्या	२६।४८ उ	०।८ प	६।४	जयपुर	२६।५५ उ	१।११ प	६।६
अल्वर	२७।३२ उ	१।४ प	६।१६	जनकपुर	२३।४३ उ	०।१२ पू	५।१६
अलमोडा	२९।३५ उ	०।३३ प	६।४९	जोधपुर	२६।१८ उ	१।३९ प	५।५६
अर्लगढ	२७।५२ उ	०।४९ प	६।२१	जौनपुर	२५।४५ उ	०।३ प	५।४७
अहमदनगर	१९।६ उ	१।२२ प	४।९	जलपाईगूरी	२६।३२ उ	०।५७ पू	५।५९
अहमदाबाद	२३।१ उ	१।४४ प	५।६	झांसी	२५।२७ उ	०।४४ प	५।४३
आजमगढ़	२६।४ उ	०।२ प	५।५२	टेकारी	२४।५८ उ	०।१७ पू	५।३५
आगरा	२७।१२ उ	०।४९ प	६।१०	टोंक	२६।११ उ	१।१२ प	५।५४
आंसंसोल	२३।४३ उ	०।४० पू	५।१६	डुमराँव	२५।३२ उ	०।१२ पू	५।४४
आरा	२५।३४ उ	०।१६ पू	५।४४	ढाका	२३।४३ उ	१।१४ पू	५।१६
इटावा	२६।४६ उ	०।३९ प	६।३	त्रिविन्दरम्	८।२९ उ	१।० प	१।७
इन्दौर	२२।४४ उ	१।१२ पू	५।२	दरभंगा	२६।१० उ	०।२९ पू	५।५४
उज्जयिनी	२३।१० उ	१।९ प	५।८	दार्जिलिंग	२७।३ उ	०।५३ पू	६।८
उदयपुर	२४।३५ उ	१।३३ प	५।२९	दिनाजपुर	२५।३७ उ	०।५६ पू	५।४५
कलकत्ता	२२।३३ उ	०।५३ पू	४।५९	दिल्ली	२८।३८ उ	०।५७ प	६।३३
कटक	२०।२९ उ	०।२९ पू	४।२९	द्वारका	२२।१४ उ	२।२० प	४।५४
कराँची	२४।५१ उ	२।३९ प	५।३३	धवलपुर	२६।४२ उ	०।५१ प	६।२
कानपुर	२६।२८ उ	०।२७ प	५।५८	नागपुर	२१।९ उ	०।३८ प	४।३९
काठमांडू	२७।४५ उ	०।२२ पू	६।१९	नासिक	१९।५९ उ	१।३२ प	४।२२
काशी	२५।१८ उ	०।० ०	५।४०	नैनीताल	२९।२३ उ	०।३४ प	६।४५
काश्मीर	३४।६ उ	१।२२ प	८।७	पटना	२५।३६ उ	०।२२ पू	५।४५
कासगंज	२७।४७ उ	०।४३ प	६।१९	प्रयाग	२५।२८ उ	०।१२ प	५।४३
कुरुक्षेत्र	२९।५५ उ	१।९ प	६।५४	पुर्निया	२५।४६ उ	०।४५ पू	५।४८
कूचविहार	२६।२० उ	१।४ पू	५।५६	पूना	१८।३० उ	१।३१ प	४।१
गया	२४।४९ उ	०।२० पू	५।३	पेशावर	३४।२ उ	१।५४ प	८।३
गाजीपुर	२५।३५ उ	०।६ पू	५।४५	पोरबन्दर	२१।३९ उ	२।१४ प	४।४६
गोरखपुर	२६।४७ उ	०।३ पू	६।३	बडौदा	२२।१८ उ	१।३७ प	४।५५
ग्वालपाडा	२६।११ उ	१।१६ पू	५।५४	बंबई	१८।५८ उ	१।४१ प	४।७
ग्वालियर	२६।१२ उ	०।४८ प	५।२४	बक्सर	२५।३३ उ	०।१० पू	५।४४
गिद्धौर	२४।५१ उ	०।३३ पू	५।३३	भागलपुर	२५।१४ उ	०।४० पू	५।४०
गौहाटी	२६।११ उ	१।२७ पू	५।५४	मथुरा	२७।३१ उ	०।५३ प	६।१५
चित्रकूट	२५।१२ उ	१।२१ प	५।३९	मद्रास	१३।४ उ	०।२८ प	२।४७
चुनार	२५।७ उ	०।१ प	५।३८	हैदराबाद (निजाम)	१७।२३ उ	०।४५ प	३।४५

अक्षांशकी दिशा (उत्तर) पाश्चात्य प्रथानुसार है। भारतीय प्रथानुसार वह दक्षिण है । देशान्तर काशीसे घटचादि है । अन्य स्थानोंके लिए काशीका कोई बडा तिथि-पत्र देखिए । प=पश्चिम, पू=पूर्व ॥

(१३) सन्ध्या-काल (Twilight) और ऊषा-काल (Dawn) का मान निकालना । सूर्यास्त होते ही पूर्ण अन्धकार नहीं छा जाता; बल्कि एक हल्कीसी रोशनी कुछ समय तक दिखाई देती रहती है । इसी प्रकार पूर्ण अन्धकार सूर्योदय तक न रहकर वह सूर्योदयके कुछ समय पहले ही समाप्त हो जाता है और उसकी जगह फिर एक हल्कीसी रोशनी प्रारंभ होकर सूर्योदय होने तक दिखाई पड़ती है। पहले समयको सन्ध्या-काल और दूसरे समयको ऊषा-काल कहते हैं । विद्वानोंने अनुभव द्वारा पता लगाया है कि सन्ध्या-काल सूर्यास्तके साथ प्रारंभ होकर तबतक भोग करता है जबतक सूर्य पश्चिम क्षितिजके नीचे १८ अंशोंकी लम्बात्मक दूरीको पार नहीं कर जाता; और ऊषा-काल तबसे प्रारंभ होता है जब सूर्य पूर्व क्षितिजके नीचे उतनेही अंशोंकी लम्बात्मक दूरी पर पहुँच जाता है । निरक्षपर सूर्यका अहोरात्र वृत्त पूर्वापर क्षितिजोंको लम्ब भावसे काटता है; अतः उसको क्षितिजके नीचे १८ अंशोंकी लम्बात्मक दूरी पर पहुंचनेमें सीधा चलनेके कारण अल्पतम समय अर्थात् केवल $१८^\circ \times ४$ मिनिट=७२ मिनिट=३ घटी लगती हैं । यही सन्ध्या-काल किम्बा ऊषा-कालका न्यूनतम मान है जो निरक्षपर होता है। पर साक्ष देशोंमें सूर्यका अहोरात्र वृत्त पूर्वापर क्षितिजोंको तिरछे भावसे काटता है; अतः उसको क्षितिजके नीचे १८ अंशोंकी लम्बात्मक दूरी पर पहुंचनेमें तिरछा (कर्ण-भावसे) चलनेके कारण अधिक समय लगता है जो इष्ट देशके अंक्षाश तथा इष्ट दिनकी सूर्य-क्रान्ति पर निर्भर है । इस समयका मान निकालना ही सन्ध्या-काल किम्वा ऊषा-कालका मान निकालना है । दोनोंके लिए एक ही नियम है । और जो नियम

उत्तर क्रान्तिका है वही दक्षिण क्रान्तिका भी है; पर संध्याके लिए अस्त-कालीन और ऊषाके लिए उदय-कालीन क्रान्ति लेनी चाहिए ।

(१४) इस कार्यके लिए हमें ऐसे दो कोणोंका अन्तर निकालना पड़ता है जिनकी कोटि ज्या ज्ञानार्थ सूत्र दिए रहते हैं फिर इस अन्तरमें ६ का भाग देनेसे घट्यादिमें सन्ध्या-काल किम्वा ऊषा-कालका मान निकल आता है । इन कोणोंमेंसे एकका नाम ∠ अ और दूसरेका ∠ ब रखकर इनकी कोटिज्या जाननेके लिए निम्न-लिखित सूत्रोंका प्रयोग कीजिए—

$$\text{कोज्या } \angle\text{ अ} = \frac{\text{ज्या } १८^\circ + \text{ज्या अक्षांश} \times \text{ज्या क्रान्ति}}{\text{कोज्या अक्षांश} \times \text{कोज्या क्रान्ति}}$$

कोज्या ∠ ब = स्पर्श-रेखा अक्षांश × स्पर्श-रेखा क्रान्ति

इन्हीं कोटि ज्याओंके धनुही इष्ट कोणोंके मान होंगे ।

उदाहरण—मान लिया कि बक्सरके सन्ध्या-कालका पान निकालना है जिस दिन सूर्यकी अस्त-कालीन उत्तर क्रान्ति २३° । २७' है । तो बक्सरका अक्षांश २९° । ३३' होनेसे

$$\text{कोज्या } \angle\text{ अ} = \frac{\text{ज्या } १८^\circ + \text{ज्या } २५^\circ । ३३' \times \text{ज्या } २३^\circ । २७'}{\text{कोज्या } २५^\circ । ३३' \times \text{कोज्या } २३^\circ । २७'}$$

$$= \frac{\cdot ३०९ + \cdot ४३१ \times \cdot ३९८ =}{\cdot ९०२ \times \cdot ९१७} \quad \frac{\cdot ४८१}{\cdot ८२७} = \cdot ५८२$$

$\therefore$ ∠ अ = ९४° । २९' । ४३" । पुनः

कोज्या ∠ ब = स्पर्श-रेखा २९° । ३३' × स्पर्श-रेखा २३° । २७

$$= \frac{\cdot ४३१}{\cdot ९०२} \times \frac{\cdot ३९८}{\cdot ९१७} = \frac{\cdot १७२}{\cdot ८२७} = \cdot २०८$$

$\therefore$ ∠ ब = ७८° । ०' । ०"

अतः संध्या-कालका घट्यादिमान = (७८° । ०' । ०" − ९४° । २५ । ' ४३") ÷ ६ = ३ । ९९ । ४३ ।

नोट—इस प्रसङ्गमें गणित-सुखार्थ १ की त्रिज्यापर की त्रैकोणमितिक-निष्पत्तियां ली गई हैं; अतः वे दशमलवके रूपमें हैं।

(१५) किसी इष्ट अक्षांश पर न्यूनतम संध्या-काल तथा ऊषा-काल मालूम करना। इसके लिए एक ऐसे धनुको निकालो जिसकी ज्या= $\frac{\text{ज्या ९}}{\text{कोज्या अक्षांश}}$ । फिर इस धनुमें ३ का भाग देनेसे घटचादिमें न्यूनतम संध्या-काल एवं ऊषा-काल निकल आते हैं।

उदाहरण—बक्सरका न्यूनतम सन्ध्या-काल मालूम करना है तो इष्ट धनुकी ज्या= $\frac{\text{ज्या ९}^\circ}{\text{कोज्या २५}^\circ \text{। ३३}'}$ = $\frac{\cdot\text{१५६}}{\cdot\text{९०२}}$ =·१७३ जिसका धनु=९° । ५६'। ४०"। अब न्यूनतम सन्ध्या-काल=(९° । ५६'। ४०" ।) ÷३=घटचादि ३ । १८ । ५३ ।

(१६) न्यूनतम सन्ध्या-काल निकालनेमें रविक्रान्तिका ज्ञान अनावश्यक है। जैसा कि ऊपरके नियममें देखा गया है। पर यदि रविक्रान्ति मालूम होजाय तो वर्षके वे दिन भी मालूम हो जायेंगे जब न्यूनतम संध्या-काल एवं ऊषा-काल होंगे। इष्ट क्रान्ति जाननेके लिए यह सूत्र है—ज्या इष्ट क्रान्ति = ज्या अक्षांश × स्प. रे. ९°।

उदाहरण—ज्या इष्ट क्रान्ति=ज्या २५°। ३३' (बक्सर) × स्प. रे. ९°=· ४३१ × ·१५८ = ०६८ जिसका धनु ३।५३'।२०" इष्ट क्रान्ति हुई। सूर्यकी यह क्रान्ति क्रान्ति-पातोंकी तारीखों (२१ मार्च और २३ सितम्बर) से प्रायः १० दिन पूर्व और पश्चात् अर्थात् वर्षमें चार वार होती है और उतने ही वार न्यूनतम संध्या-काल तथा ऊषा-काल भी होते हैं। यह नीचेके नियमसे साफ हो जायेगा।

(१७) क्रान्ति जानकर सायन सूर्यका सम्बन्धित भुजांश जानना। इसके लिए यह सूत्र है—भुजांशज्या= $\frac{\text{क्रान्तिज्या}}{\text{परमक्रान्तिज्या}}$ ।

इस सूत्रके अनुसार उक्त क्रान्ति ३°।५३'।२०" के सम्बन्धित भुजांश

की ज्या हुई $\frac{\text{ज्या } ३^\circ । ५३' । २०''}{\text{ज्या } २३^\circ । २७' ।} = \frac{.०६८}{३९८} = .१७१$ जिसका धनु ९° । ५०' इष्ट भुजांश हुआ । क्रान्ति-पातोंके आस-पास सूर्यकी स्पष्ट गति एक अंशसे कमही रहती है; अतः उसको उक्त भुजांशको तै करनेमें लग भग १० दिन लग जाते हैं । इस गणितसे हमें मालूम हो गया कि बक्सरमें ११ मार्च, ३१ मार्च, १३ सितम्बर और ३ अक्तूबरके आस-पास न्यूनतम संध्या-काल होता है ।

इति श्रीरजनीकान्तशास्त्रिकृतौ ज्योति--र्गणित--कौमुद्यां
परिशिष्टपरिच्छेदः

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

